प्रशिक्षण प्रवेशिका

सामलात–देह प्रबन्धन

संपादन : डॉ. गुरुदास अग्रवाल, जल पुरुष श्री राजेन्द्र सिंह

पुस्तक समर्पण

प्रो. जी. डी. अग्रवाल जी (स्वामी ज्ञानस्वरूप सानंद जी) की एक पहचान आई आई टी, कानपुर के सेवानिवृत प्रोफेसर, राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय के पूर्व सलाहकार, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के प्रथम सचिव और पानी–पर्यावरण इंजीनियरिंग के नामी पुरोधा के रूप में है, तो दूसरी पहचान गंगा के लिए अपने प्राणों को दांव पर लगा देने वाले संन्यासी की है।

माँ गंगाजी की भीषण दुर्दशा सुधारने के लिए उनकी अविरलता, निर्मलता एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करते हेतु विशेष कानून की माँग करते हुए अपने आमरण अनशन के 112वें दिन ब्रह्मलीन हुए। गंगापुत्र स्वामी ज्ञानस्वरूप सानंद को ज्ञान, विज्ञान एवं संकल्प के एक संगम की तरह सदैव याद किया जाता रहेगा।

यह पुस्तक माँ गंगाजी के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले डॉ. गुरुदास अग्रवाल (स्वामी ज्ञान स्वरूप सांनद) को सादर समर्पित है।

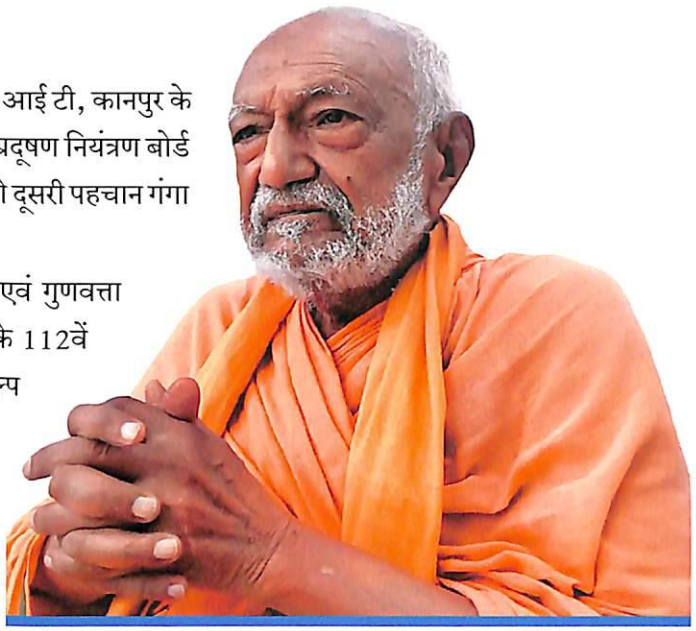

(20 जुलाई, 1932 – 11 अक्टूबर, 2018)
श्रद्धेय स्वामी श्री ज्ञान स्वरूप सानन्द (डॉ. जी.डी. अग्रवाल)
उपाध्यक्ष, तरुण भारत संघ, भीकमपुरा, अलवर, राजस्थान।

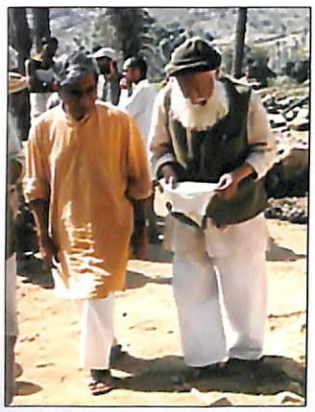

तरुण भारत संघ के तत्कालीन अध्यक्ष श्री अनुपम मिश्र एवं वर्तमान अध्यक्ष श्री राजेन्द्र सिंह के साथ श्रद्धेय डॉ. जी.डी. अग्रवाल जी

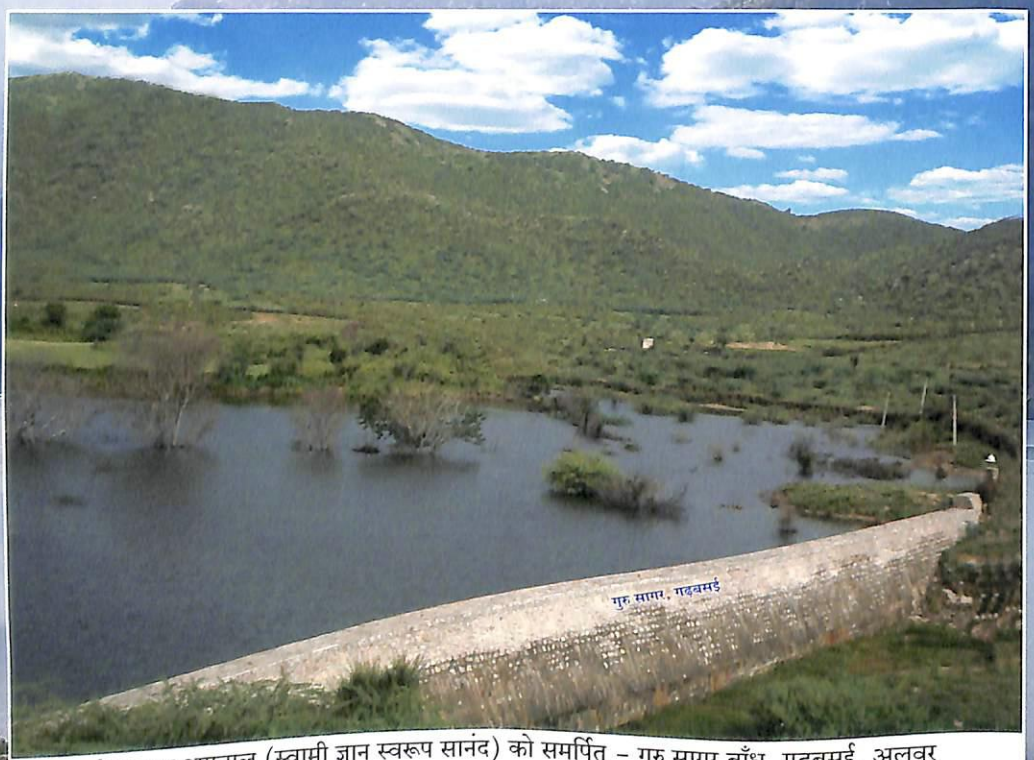

श्री गुरुदास अग्रवाल (स्वामी ज्ञान स्वरूप सानंद) को समर्पित – गुरु सागर बाँध, गढ़बसई, अलवर

विचार-बिन्दु

सामलात देह की अवधारणा निश्चय ही भारतीय जीवन शैली की आधारशिला रही है। ''ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं, यत्किंच जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'' के जीवन दर्शन से लेकर ''सहनो भवतु, सहनो भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै'' के प्रबन्ध तन्त्र तक हिन्दू संस्कृति निरन्तर व्यक्तिगत सम्पत्ति भाव के निराकरण और ''सामलात-देह''- भावना को परिपक्व करने पर बल देती है और हमारी संस्कृति में यह सब मात्र भावनाओं पर या शाब्दिक-शिक्षा पर नहीं छोड़ दिया गया। प्रकृति (ईश) के वरदान ''सामलात-देह'' के संरक्षण, दोहन, उपयोग और प्रबन्ध के लिए पूरा और एक प्रभावशाली तन्त्र था, जिसमें ''सामलात-देह'' के स्वरूप और उसके महत्त्व के प्रति सामान्य जनता की गंभीर जागरूकता भी थी और उसके महत्त्वपूर्ण प्रबन्धन पहलुओं पर निर्धारित व्यक्तियों के पास विशेषज्ञ ज्ञान भी। समाज में सभी ''सामलात-देह'' के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझते और ''निष्काम-भाव'' से पालन करते थे। सभी की आवश्यकता पूर्ति बिना लड़े-झगड़े, बिना लूट-पाट, सहज भाव से होती थी। ''सामलात-देह'' की प्रभावशाली प्रबन्ध व्यवस्था ही नींव थी, भारत के सहस्रों वर्ष तक सोने की चिड़िया बने रहने की।

पश्चिम से आये आक्रमणकारी, व्यक्तिवादी और तुरन्त सुख देने वाले (भले ही वह क्षणिक या अल्पजीवी हो) चिन्तन का मुकाबला हमारा संतोष और चिरंतन सुखापेक्षी चिंतन नहीं कर पाया, और युगों से सफलतापूर्वक चलती आई ''सामलात-देह'' प्रबन्धन पद्धति ध्वस्त हो गई। आज कुछ व्यक्ति भले ही समृद्ध हों या विकास-कार्यों द्वारा समृद्ध श्रेणी में पहुँचा दिये जायें पर समाज और राष्ट्र तो निरन्तर गरीबी, कर्जमन्दी और भिक्षा-वृत्ति के गर्त में ही धंसता जा रहा है। क्यों न हो, जब लक्ष्य ही व्यक्तिगत समृद्धि है, सामलात समृद्धि नहीं।

आक्रमणकारियों के बर्बरतम हमलों के बावजूद अभी भी देश के कई भागों के कई समुदायों में (विशेषकर उन समुदायों में जिन्हें हम कभी

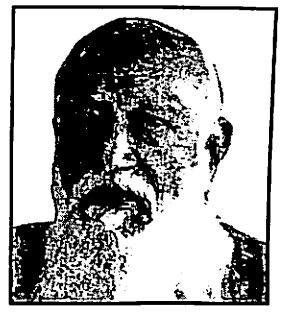

आदिवासी, कभी वनवासी, कभी जनजाति और कभी पिछड़ी जाति जैसे अवहेलनापूर्ण शब्दों से पुकारते रहे हैं) सामलात-देह की अवधारणा और उसके सर्वहित में प्रबन्ध की व्यवस्था, सम्पूर्ण नहीं तो कुछ अंशों में, जीवित है। नागा, खासी, मिजो, मिकिर आदि जीवन-शैलियाँ इसके उदाहरण हैं। ये सब कुछ बची रहीं; आक्रमण से अपेक्षाकृत दूर रहने से। पर गर्व की बात है कि राजस्थान, बुन्देलखण्ड जैसे कुछ संभागों में मीणा, भील और गोंड जैसे कुछ समुदायों में यह अवधारणा और व्यवस्था बची रही सदियों के बर्बरतम आक्रमण झेलकर, उनका सफलतापूर्वक मुकाबला कर। दुर्भाग्य है तो बस यह कि जो सदियों से आक्रमण झेल गई, वह स्वतन्त्रता के बाद का विकास नहीं झेल पा रही और तेजी से नष्ट होती जा रही है।

''जल, जंगल, जमीन'' सम्भवत: सामलात-देह के सम्पूर्ण क्षेत्र को नहीं तो अधिकांश को समाहित कर लेती है। उत्तर-पूर्वी राजस्थान में इनके समुचित सर्व-हिताय प्रबन्धन की स्वस्थ व्यवस्था थी जिसके कुछ अंश अब भी जीवित अवस्था में मिल जाते हैं और भग्नावशेष तो चारों ओर बिखरे पड़े हैं।

''तरुण-भारत संघ'' ने इस सामलात-देह प्रबन्ध व्यवस्था के पुन: जागरण का जो महान् कार्य हाथ में लिया है, उसके लिए वह बधाई ही नहीं वन्दना का पात्र है। यह पुस्तिका उसी प्रयास की एक कड़ी है। प्रयास की सफलताओं के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ. गुरुदास अग्रवाल
भू.पू. सचिव, केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड तथा
भू.पू. विभागाध्यक्ष, सिविल इंजीनियरिंग विभाग
आई.आई.टी. कानपुर (उ.प्र.)
(प्रथम संस्करण के दौरान)

प्राक्कथन

सामलात देह प्रबन्धन प्रवेशिका में हमारे कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण के दौरान आते रहे देश के जाने-माने विशेषज्ञ, वैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्ता जैसे- सर्वश्री डॉ. जी.डी. अग्रवाल, आनन्द कपूर, सिद्धराज ढड्ढा, सुन्दरलाल बहुगुणा, शुभू पटुवा, अनुपम मिश्र, एम.एल. झँवर, श्रीमती दमनसिंह, श्रीमती प्रीतिलाल, श्रीमती सायनी, श्रीमती कुसुम कार्णीक, निरंजन महावर, शान्तिस्वरूप डाटा, राजेन्द्र घुड़कर, अरुण तिवारी, राजीव बोरा, धर्मपाल जी, सोमपाल जी, अनिल अग्रवाल जी, राजीव धवन, डॉ. मैनपाल सिंह आदि महानुभावों द्वारा जो बातचीत हुई उसका भली प्रकार संकलन किया। इन सभी के अनुभव, संकलन एवं शोध पूर्ण लेखन के कारण ही यह एक व्यावहारिक पुस्तिका तैयार हो सकी है।

डॉ. जी. डी. अग्रवाल ने इस पुस्तिका (प्रथम संस्करण) का सम्पादन करके हम सबको अनुगृहीत किया है। हम सब उनके आभारी रहेंगे। विषय-वस्तु तय करने से लेकर इसका सम्पादन करने के साथ-साथ इनका पूरा मार्गदर्शन पाने का सौभाग्य हमें सहज रूप से मिला है। यह पुस्तक गाँव के सामलाती संसाधनों को समझने की पहल करती है। गाँव की साझी सम्पत्ति (जल, जंगल, जमीन) के प्रबन्धन की परम्परा का इसमें सविस्तार वर्णन किया गया है।

हमारे समाज की जीवन शैली का सामलात देह से क्या सम्बन्ध था, उसका भी खुलासा किया गया है। हमारे गोचर, गौरा, थाँईं धराड़ी, ये सब परम्पराएँ ऐसी थीं, जो हमारे समाज के सामलाती अभिक्रम को जन्म देने के साथ-साथ पुष्ट भी करती थीं। इन परम्पराओं को खोजकर इस पुस्तक में भली प्रकार स्थान दिया गया है।

रखत बनी, देव बनी, काँकड़ बनी, बीड़, वाल आदि सबके वर्णन से हमारे समाज के प्रबन्ध कौशल का सहज दर्शन हमें इस पुस्तिका में मिलता है। हमारा समाज अपने जंगल को भली प्रकार सहेजने हेतु सजग ही नहीं, पूरी लगन से जिम्मेदारी को पूरा करता था। इसलिए आज भी जहाँ तथाकथित विकास नहीं पहुँचा, वहाँ ही जंगल बचे हुए हैं। यह भी इस पुस्तिका को पढ़ने से समझ में आता है।

जल संरक्षण हेतु जोहड़/बाँध बनाने की विधियों का भली प्रकार वर्णन इस पुस्तिका में किया गया है। आज के पर्यावरणीय संकट को दूर करने की सभी विधियों का वर्णन इस पुस्तिका के पहले संस्करण में ही दिया हुआ है।

इस पुस्तिका के दूसरे संस्करण में भी प्रथम संस्करण की विषय-वस्तु को यथावत् रखा गया है, साथ ही इसमें प्रकृति के पोषण की परम्परागत विधियों को भी आधुनिक सरल विधियों से जोड़ा गया है।

यह पुस्तक हमारे समाज को बाढ़ व सुखाड़ से मुक्ति के उपाय सिखाती है। इस पुस्तक में सुझाई गई विधियों से किये गये कामों द्वारा ही हम राजस्थान में अब तक 8 नदियों को पुनर्जीवित कर पाये और 1200 गाँवों को पानीदार बना पाये। यह पुस्तक प्रकृति से लेना कम और अपनी मेहनत के द्वारा प्रकृति का पोषण करने का ज्ञान ज्यादा सिखाती है। यह परम्परागत ज्ञान को आधुनिक विधियों में भी उसका खरापन उभारती है। इस पुस्तक का यह दूसरा संस्करण इन पारम्परिक विधियों से जुड़े गोपाल सिंह की मेहनत से सम्भव हो रहा है। तरुण भारत संघ के उपाध्यक्ष 'स्वामी ज्ञानस्वरूप सानन्द' (प्रो. जी.डी. अग्रवाल) की प्रेरणा व आशीर्वाद से इसे पुनः प्रकाशित होने का अवसर मिला है। यह पुस्तक हमारी अगली पीढ़ी के लिए प्रकृति संरक्षण के प्राचीन ज्ञान से सिद्ध विधियों को व्यवहार में लाना सिखाने वाली पुस्तक है। इसे युवा वर्ग को अवश्य पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक को पुनः छपवाने के लिए तरुण भारत संघ के निदेशक ने बहुत परिश्रम किया है। संस्था के महामन्त्री श्री लक्ष्मण सिंह जी इस पुस्तक के पुनः प्रकाशन की जरूरत को काफी समय से महसूस कर रहे थे। इन सभी के प्रयासों से यह पुस्तक "(सामलात देह और उसका प्रबन्धन)" पुनः प्रकाशित हो सकी। इसकी सार्थकता आपके द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और प्रबन्धन पर ही निर्भर है।

राजेन्द्र सिंह
अध्यक्ष, तरुण भारत संघ

सामलात देह की प्रस्तावना, अवधारणा तथा वर्गीकरण

सामलात देह की प्रस्तावना :

सामलात-देह या ''शामलात-देह'' उर्दू भाषा का शब्द है। उर्दू में ''शामलात'' शब्द अरबी भाषा से आया है, जो कि शामल (शामिल) का बहुवचन है। जिसका अर्थ है, मिला-जुला या साझे का। इसी प्रकार ''देह'' शब्द उर्दू में फारसी भाषा से आया है, जिसका बहुवचन ''देहात'' होता है। ''देह'' का मतलब है ''गाँव'' तथा देहात का मतलब है ''बहुत से गाँव''। इस प्रकार ''शामलात देह'' का शब्दार्थ हुआ, किसी एक गाँव की साझी सम्पत्तियाँ/हिन्दी की बोलचाल में अब इसे 'सामलात देह' कहते हैं।

सार्वजनिक सम्पत्ति तथा साधनों को ही सामलात देह (कॉमन प्रोपर्टी रिसोर्स) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन्हें इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि ऐसे संसाधन जिन पर एक समुदाय या गाँव के लोगों का समान अधिकार हो, अर्थात् इनके रख-रखाव, प्रबन्धन, उपयोग, बचाव और निर्माण में उस समुदाय या गाँव के लोगों का बराबर का हक और दायित्व हो। भारतीय गाँवों के प्रसंग में इस तरह के संसाधनों के वर्ग में सामुदायिक वन, चरागाह, परती भूमियाँ, खलियान भूमियाँ, गौरा, जलधाराओं की नालियाँ, गाँव के जोहड़ व तालाब, बावड़ी, छोटे-छोटे बाँध, रास्ते, चौपाल, थाँईं, श्मशान, मन्दिर, धर्मशालाएं, पनघट के कुएं, नदी-नाले और उनके कगार व नदी तट आदि आते हैं। किसी कारणवश कानूनी तौर पर भले ही इनमें से किन्हीं पर किसी दूसरे का हक या मालिकाना हो गया हो, मगर वास्तव में तो ये पूरे ग्राम या समुदाय की सम्मिलित सम्पत्ति ही होती हैं। ऊपर बताये गये सार्वजनिक संसाधनों में से सामुदायिक वन, सामुदायिक चरागाह और परती भूमियां, तीनों का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत होने के कारण गाँव के लोगों के भरण-पोषण में इनकी अहम् भूमिका होने से ये पूरे गाँव या समुदाय के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। विकसित धनी देशों के विपरीत विकासशील देशों में वर्तमान में भी गाँव के लोगों के लिए, सामलात देह को भूमि-सम्पत्ति संसाधन के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारत के विभिन्न गर्म प्रदेशों के सूखे व अर्द्धसूखे क्षेत्रों में यह और भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सामलात देह अनेकों प्रकार से ग्रामीण समुदायों की उत्पादन और उपभोग की जरूरतों को पूरा करते हैं। उनके सकारात्मक योगदान के होते हुए भी सामलात देह को विभिन्न परिस्थितियों तथा कारणों से वर्तमान काल में गम्भीर समस्याओं व संकटों का सामना करना पड़ रहा है। निरन्तर इनका ह्रास होता जा रहा है, इन पर अतिक्रमण बढ़ता जा रहा है और इनका विस्तृत क्षेत्र सिकुड़ता जा रहा है। इनके प्रबन्धन की परम्परागत व्यवस्था को लोग भूलते जा रहे हैं। इनके स्वरूप, विकास, संरक्षण, उपभोग और प्रबन्धन पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से वर्तमान सन्दर्भ में विचार करने पर निम्न बातें सामने आती हैं :

1. सामूहिक संसाधनों अर्थात् सामलात देह का निर्माण भूमि, वन, जल, मिट्टी और कई प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों के मेल-जोल से होता है।
2. ये सामूहिक संसाधन स्थानीय लोगों की जीवन पद्धति का एक मुख्य भाग रहे हैं। इनका कृषि में, पशुओं के भरण-पोषण में तथा खाद्य पदार्थ प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।
3. समुदाय के सभी लोगों की इन संसाधनों तक पहुँच होती है। यद्यपि इस प्रकार की पहुँच का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि इस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।
4. गाँव के सामाजिक संगठन ही इनके प्रबन्धन, संरक्षण, पुनःउत्थान और उपयोग सम्बन्धी जिम्मेदारियाँ निभाने वाली सर्वोच्च इकाइयाँ हो सकती हैं।
5. लोगों की सोच व समझ यह है कि सामलात देह उन्हीं के द्वारा संवर्धित एवं उन्हीं के लिए है।

सामलात देह की अवधारणा का इतिहास :

मानव में सामलात देह को बचाने व बढ़ाने की भावना आज से हजारों वर्ष पहले पैदा हुई थी। इसे सबसे पहले आदि मानव ने महसूस किया। जब आदि मानव ने समूहों में रहना शुरू किया तब उसे खेती और पशुपालन के लिए जल और जंगल को बचाने की आवश्यकता पड़ी। यहीं से सामलात देह की अवधारणा शुरू हुई। जल और जंगल के संरक्षण के बाद धीरे-धीरे चरागाह और अन्य सामलाती संसाधनों को बचाने की प्रक्रिया शुरू हुई। जोहड़, बाँध, बावड़ी, कुएँ, काँकड़बनी, देवबनी, रखतबनी, देवओरण्य आदि अनेक सामलाती संसाधन मानव के विकास के साथ-साथ ही अस्तित्व में आये।

वास्तव में इस बारे में ठीक-ठीक से कहना तो कठिन है कि पहले वनों की रक्षा शुरू हुई या किसी अन्य सामलात देह की। पर

चूंकि वन किसी भी समुदाय के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन या सामलात देह हैं, इसलिए हो सकता है सामलात देह की अवधारणा वनों की रक्षा से ही विकसित हुई हो। फिर धीरे-धीरे गोचर, तालाब, पोखर, जोहड़, कुएं और देवबनी, काँकड़बनी जैसी विभिन्न तरह की सामलात देह की दृष्टि बनी हो। सामूहिक संसाधन या सामलात देह भारतीय ग्रामीण व्यवस्था का आधारभूत ढाँचा रहे हैं। इनसे पूरे गाँव की गर्भनाल जुड़ी होती है। इनके रख-रखाव से गाँव के अमीर-गरीब सबका भला होता है। लेकिन इनके नष्ट होने का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव गरीबों पर ही होता है। सामलात देह, अकाल व बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के खिलाफ गाँववासियों के लिए कवच का काम भी करता है और उनके सामाजिक व आर्थिक जीवन की धुरी भी है।

दुर्भाग्यवश, आर्थिक विकास, वन कानूनों, भूमि सुधार कानूनों और खेती के आधुनिकीकरण के साथ सामलात देह नष्ट हो रही है। उन्हें या तो सरकार हड़प रही है या निजी सम्पत्ति बढ़ाने की लालसा में गाँव के दबंग लोग। एक तरफ सामलात देह का विनाश कानूनी तरीके से हो रहा है, दूसरी तरफ गैर कानूनी तरीके से। अगर थोड़ी बहुत सामलात देह बची भी है तो सामुदायिकता की भावना का ह्रास होने के नाते वह भी रख-रखाव की मोहताज है।

आज सरकार चलाने वाले नेता और बड़े अधिकारी, बड़े ही सहज भाव से कह देते हैं कि गाँव वाले अपने गोचर, जंगल आदि नहीं बचा सके, इसीलिए हमने विभाग बनाकर गाँव की सामलात देह की रक्षा का काम संभाल लिया है। पर उनके संभाल लेने पर भी ये बचे तो नहीं। ऐसा क्यों हुआ?

यह पूछने पर उत्तर मिलता है कि जनसंख्या वृद्धि के कारण गाँव के गोचर, जोहड़, जंगल सभी समाप्त होते जा रहे हैं। फिर आपकी क्या भूमिका रही है? तो अधिकारी और नेता या तो चुप हो जाते हैं या उनका जवाब होता है कि अब इन चीजों की मालिक सरकार है, हम क्या करें? उनकी बर्बादी की आज कोई जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता है। वैसे तो सरकार और लोग एक ही हैं, फिर भी अलग-अलग भूमिकाओं के कारण स्पष्टतया अलग-अलग हैं। ये दोनों ही अपनी-अपनी जिम्मेदारियों से बच रहे हैं। ऐसी स्थिति क्यों बन गई है। इसके विश्लेषण के लिए हमें कई सौ वर्ष पूर्व भूतकाल में जाकर देखना होगा। जब "सबै भूमि गोपाल की" मान्यता के साथ, जंगलों की उपज पर किसी प्रकार का एकाधिकार या कोई कर लागू नहीं था। वन उपज को सब लोग अपना मानकर उपयोग करते थे। अपना मानते थे, इसलिए लोग जंगलों को नष्ट नहीं करते थे। बल्कि जंगलों को ये अपने जीवन का आधार मानकर उनके संरक्षण व पोषण का काम करते रहते थे।

भारत में जल, जंगल, जमीन, हवा, सूर्य, आकाश सभी भगवान की दी हुई (साझी) सम्पत्ति मानी जाती थी। इसमें राज्य कहीं बीच में नहीं आता था। इसलिए सभी लोग सहजता से इनका मर्यादित उपयोग करते थे। जन दबाव बढ़ने के बाद भी जल, जंगल, जमीन सभी की जरूरतों की पूर्ति करते थे। भविष्य के लिए संग्रह करने की परम्परा हमारे यहाँ नहीं थी, राजा भी निजी उपयोग हेतु अनुशासित रूप में ही प्रकृति से लेता था। प्रकृति से जितना लिया, उतना ही प्रकृति को वापस देने का प्रयास भी रहता था। इसलिए लम्बे समय तक सन्तुलन बना रहा। लेकिन पश्चिम से आये अंग्रेजों का जीवन दर्शन तो "सब कुछ इन्सान के लिए है" का था, जबकि भारतीय दर्शन में मनुष्य को प्रकृति का एक हिस्सा माना जाता था। इसलिए पहले जल, जंगल, जमीन पर राजाओं का प्रत्यक्ष नियन्त्रण अपने उपयोग के लिए नहीं था। अंग्रेज शासकों को यहाँ के राज में यह खल रहा था, अत: उन्होंने यूरोप की तरह यहाँ भी जंगल कानून बनाये। उन्हीं से राज्य व्यवस्था चलने लगी और वनों के विनाश की प्रक्रिया शुरू हो गयी।

"सामलात देह" की अवधारणा और इस शब्द विशेष का प्रयोग राजस्थान के अधिकांश क्षेत्रों में काफी प्रबलता से प्रचलित था। यह सम्पदा गाँव की मिली-जुली "देह" होती थी और फिर अपनी देह की रखवाली भला कौन नहीं करेगा। सामलात देह के प्रबन्ध हेतु कई अलिखित दस्तूरों का विधान होता था। इस विधान के अनुसार ही गाँव के गोचर, जंगल और जोहड़ों का प्रबन्ध कार्य चलता था। स्वानुशासनपूर्वक चलने वाली व्यवस्था में गलती करने वालों के लिए दण्ड और प्रायश्चित की व्यवस्था भी थी। अत: लोग सामलात देह की पूरी सुरक्षा करते थे। यह कोई भगवान या देवी-देवताओं का डर या अन्धविश्वास नहीं था, अपितु गलती करने वालों के मन पर एक नैतिक दबाव बना रहे, ऐसी एक सुदृढ़-सुसंस्कृत व्यवस्था थी।

लोग गाँव की सामलात देह से पेड़ या अन्य कोई आवश्यक उपज लने की तिथि निश्चित करते थे। यह तिथि पूरा गाँव बैठकर विचार-विमर्श करके ही निश्चित करता था। कांकड़बनी, रखतबनी, देवओरण्य, वाल आदि में पशुओं की चराई कब करनी है? कैसे करनी है? आदि सब मुद्दों पर खुलकर चर्चा होने के बाद ही यह निर्णय होता था। चूँकि सामलात देह का उपयोग करने वाले और उसके सन्दर्भ में निर्णय लेने वाले एक ही थे, इसलिए सभी निर्णय सब के हित में होते थे। आज निर्णय लेने वाले अलग हैं, जो सामलात देह के उपयोग एवं रख-रखाव से अनभिज्ञ हैं। दूसरी ओर जो इसका उपयोग करते हैं और इन्हीं में पलने के कारण इन्हें पूरी तरह समझते हैं, वह इसके विषय में कोई निर्णय नहीं ले सकते। वर्तमान कानून व्यवस्था ने इस पर से लोगों के हक छीन लिये हैं। अब लोगों की अपनी कोई व्यवस्था ही नहीं रही। अत: लोगों को जंगल बर्बाद करने का दोष देना ठीक नहीं है। लोगों की व्यवस्था समाप्त करने का दोष केवल पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव ही नहीं, बल्कि जीवन शैली में बढ़े भोगवाद और औद्योगीकरण की देन है। औद्योगीकरण के कारण पुराने गंवाई दस्तूर एवं भावनाएँ समाज से समाप्त होने लगे हैं, इनके स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थ बढ़ने लगे हैं, जिसके कारण लोगों ने सामलात देह का संरक्षण व देख-भाल छोड़ दी है। इसका फल अब हम लोग ही सूखे, अकाल, बाढ़ आदि के रूप में भुगत रहे हैं। ईंधन, चारे, लकड़ी का अभाव लोगों को अब खलने लगा है। वर्तमान व्यवस्था पर अब पुन: प्रश्नचिह्न लगने लगा है। लोग अब चिन्तित हैं। यदि अब कोई इन्हें इनकी पुरानी व्यवस्था बताकर हनुमान जी की तरह उनकी शक्ति का भान करा दे तो लोग पुन: अपनी सामलात देह को सामलाती भाव से संभाल सकते हैं।

शासन करने वालों का जनता में और जनता का शासन करने वालों में जब तक विश्वास था, तब तक हमारा देश आजाद व समृद्ध रहा। लेकिन राजा ने जब राज्य में गरीब व पिछड़े लोगों की भागीदारी करनी छोड़ दी और उस वर्ग को लगने लगा कि राज्य में हमारा कोई हिस्सा नहीं रहा तो राज्य पर हुए बाहरी आक्रमणों के समय लोगों ने शासन का साथ नहीं दिया और इस कारण हमारा देश गुलाम भी बन गया। आजादी के बाद बहुत अच्छे-अच्छे काम भी हुए, लेकिन सामलात देह-अवधारणा की बर्बादी जिस कदर हुई है, यह हमारे भविष्य को भयंकर अंधकार में धकेले जा रही है। अब भी समय है कि हम भविष्य के अन्धकार में गिरने से बच जायें तथा अपनी सामलात देह को अपना जीवन-आधार मानकर बचा लें।

सामलात देह संरक्षण के लिए विभिन्न विचारधाराएँ :

सामलात देह या सामूहिक संसाधनों की रक्षा के लिए आवश्यक नीति को लेकर गहरा विवाद है। एक दृष्टि इनकी रक्षा के लिए पश्चिम की राजनीति, विज्ञान और अर्थशास्त्र की ओर देखती है। परन्तु वास्तव में तो पश्चिमी समाज में पैदा हुए राज्य और बाजार ने ही तो सामलात देह का सर्वाधिक विनाश किया है। अब उन्हीं के बाजार उन्मुख परिपेक्ष्य में किये जाने वाले सामुदायिक कार्यों से सामलात देह को नहीं बचाया जा सकता। यों तो हार्डिन से लेकर मैनकर ओलसन जैसे सामलात देह के अध्येता भी निजी हितों के आधार पर इसकी रक्षा एवं संरक्षण के उपाय सुझाते हैं। पर उनके सुझावों का मूल तो बाजारउन्मुख पाश्चात्य दर्शन में ही है। भारतीयवादी दृष्टि का कहना है कि अगर हमें सामलात देह अवधारणा को बचाना है तो इसकी विधि की तलाश उस पारंपरिक भारतीय समाज में करनी होगी, जहां वन-पंचायत और पानी-पंचायत जैसी संस्थाएँ और पेड़ों की पूजा से लेकर उनके काटने को पाप समझी जाने वाली मान्यताएँ थीं। वैसे भारतीय परम्परा क्या रही, इस बारे में भी मतभेद हो जाते हैं। एक धारा ब्रिटिश काल के पहले की स्थिति को ठीक मानती है, दूसरी ऋषियों-महर्षियों के जमाने का आदर्श रखती है।

आधुनिकतावादी विचारधारा :

यह आधुनिक संस्थाओं और औद्योगिक विकास की प्रक्रिया के दौरान ही सामलात देह की रक्षा और उसके विकास की बात करती है तथा बाजार और राज्य से अन्तर्व्यवहार के साथ ही इस सामूहिक सम्पत्ति का हित देखती है। ओलसन कहते हैं कि साझा हित के बिना कोई समूह हो ही नहीं सकता। इसी समूह के पास उसकी हिफाजत करने तथा व्यक्तिगत और सामुदायिक हितों एवं आचरणों में सन्तुलन बिठाने का अधिकार होना चाहिए। लेकिन यह भागीदारी तब तक शुरू नहीं हो सकती जब तक इसके लिए कोई उत्प्रेरक (प्रेरित करने वाला) नहीं होता। वह उत्प्रेरक नेता हो सकता है या सबकी साझा जरूरत हो सकती है। इस प्रकार की व्यवस्था में एक खतरा अन्तर्राष्ट्रीय साझा संसाधन के नाम पर वनों के पेटेन्ट किये जाने का है। जिस प्रकार स्थानीय लोगों से देशी सरकारें सामुदायिक देह और वन छीन लेती हैं उसी प्रकार विकासशील देशों से विकसित देशों द्वारा छीन लेने (पेटेन्ट करने) का दबाव बढ़ रहा है। हालांकि सितम्बर 1993 के पहले सप्ताह में विकासशील देशों के वानिकी मंच के मन्त्री स्तरीय सम्मेलन में भारत ने वनों पर पेटेन्ट कानून लगाने से इन्कार कर दिया था।

लेकिन विकसित देश अपनी शर्तें मनवाने के लिए डांटने और पुचकारने दोनों की रणनीति अपनाते हैं। इसलिए भ्रष्ट और राजनैतिक वचनबद्धता से रहित विकासशील देशों की सरकारें उनके आगे कब झुक जायें कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐसे माहौल में, विकासशील देशों में अपनी सरकारों पर दबाव बनाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा का आन्दोलन होना अत्यन्त जरूरी है और यह आन्दोलन सीढ़ी दर सीढ़ी स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक होना परम आवश्यक है। यह काम विकासशील देशों की अपनी परम्परा व समाज से निकली दृष्टि से ज्यादा मजबूती से हो सकता है।

सामलात देह के संरक्षण में पंचायत :

ग्रामीणों की अपनी स्थानीय संस्था होने से ''सामुदायिक देह'' के संरक्षण में ग्राम पंचायत का महत्त्व और भूमिका सबसे अधिक हो जाती है। लेकिन सवाल उठता है कि क्या हम सामलात देह के रख-रखाव की जिम्मेदारी स्थानीय पंचायतों पर छोड़कर निश्चिन्त हो सकते हैं? क्या हम ब्रिटिश काल के पहले के पर्यावरणीय स्वर्ण युग में पहुंच सकते हैं? यह जानने के लिए हमें आज के युग में काम करने वाली ग्रामीण संस्थाओं का अध्ययन करना पड़ेगा। आज दो तरह की पंचायतें हैं। एक तो पंचायत राज अधिनियम के तहत बनने वाली ''वैधानिक'' ग्राम पंचायतें। ये पंचायतें इतनी भ्रष्ट हो चली हैं कि इनसे केवल सामलात देह के पट्टे बेचने की ही उम्मीद की जा सकती है, हिफाजत की नहीं। दूसरी तरफ बिरादरी या जाति की पंचायतें हैं। ये पंचायतें जाति विशेष की सघनता वाले इलाके में बेहद असरदार हैं। इन पंचायतों ने टिकैत जैसे किसान नेता व बड़े आन्दोलनों को भी जन्म दिया है। पर इन पंचायतों का भी पतन हो रहा है और वे अक्सर ग्रामीण ताकतवर समूहों के हितों की रक्षा और कमजोर लोगों पर जुल्म करती दिखती हैं। कभी किसी को गधे पर नंगा घुमाया जाता है तो कभी किसी का सर कलम कर दिया जाता है। क्या उन पंचायतों को फिर से मजबूत किया जाना चाहिए? ऐसी स्थिति में किससे उम्मीद की जाये?

इन समस्याओं के बावजूद आज यह धारणा बलवती होती जा रही है कि प्राकृतिक संसाधन, सामलात देह और पर्यावरण की सुरक्षा स्थानीय निवासी ही कर सकते हैं। रूमानी पर्यावरणवादी भले ही जंगलों से वनवासियों को खदेड़ने की बात करें, पर गहरी समझ वाले लोग उन्हें पर्यावरण का सबसे अच्छा दोस्त मानते हैं। यह बात तथ्यों से साबित की जा सकती है कि जहाँ सामलात देह का सरकार ने उपयोग करना शुरू कर दिया, वहाँ गरीबों की परेशानियाँ बढ़ी हैं और सामलात देह का विनाश हुआ है। दूसरी ओर आज के गाँव सामलात देह की रक्षा करने की पुरानी परम्परा व अवधारणा भूल चुके हैं और इस बारे में उनके सामने कोई नई दृष्टि जगाने या परम्परागत परम्पराओं की याद दिलाने के लिए किसी उत्प्रेरक की जरूरत है। यह उत्प्रेरक कोई सरकारी संस्था भी हो सकती है और गैरसरकारी संस्था भी। लेकिन जो भी हो यह काम करे तो पूरी ईमानदारी के साथ करे। क्योंकि इसके बिना न तो हम गाँव का टिकाऊ विकास कर सकते हैं और न ही प्राकृतिक संसाधनों को बचा सकते हैं। विकासशील देशों के वानिकी मंच ने जिस प्रकार दिल्ली घोषणा में वनों पर राष्ट्रीय अधिकार को सर्वोपरि बताया है, उससे साफ लगता है कि अगली सदी में वन सम्पदा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का महत्त्वपूर्ण आधार होगी। लेकिन अगर हमारे पास वन ही नहीं रहेंगे तो हम किस पर राष्ट्रीय अधिकार का दावा करेंगे? वैसे हमारी सरकार सबसे बड़ी उपभोक्तावादी संस्था है। समाज उसकी तुलना में बहुत पीछे है। पर होड़ उपभोक्तावादी बनने की नहीं संचय और संरक्षण की हो, तभी तो सामलात देह का संरक्षण-संवर्धन सम्भव है।

सामलात देह का वर्गीकरण :

सामलात देह को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है :

1. प्राकृतिक सामलात देह :

वह संसाधन जो प्रकृतिप्रदत्त हो या प्राकृतिक रूप से बना हो तथा उसी रूप में ज्यों का त्यों लोगों के समुदाय द्वारा उपयोग में लाया जा रहा हो। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तीन प्रकार के संसाधन आते हैं :

(अ) भू-संसाधन :

भूमि या जमीन के रूप में उपलब्ध सभी सामलात देह इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इनके प्रमुख उदाहरण निम्न हैं :

(1) गोचर : सभी ग्रामवासी सर्वसम्मति से गाँव की सीमा में जमीन का कुछ हिस्सा मवेशियों के चरने के लिए निश्चित कर लेते थे, जो गोचर के नाम से पुकारा जाता था। यह गाँव की किसी भी दिशा में सहूलियत अनुसार छोड़ दिया जाता था।

(2) बंजड़ : यह वह जमीन है, जो खेती योग्य नहीं होती। यह या तो सामूहिक होता था या इस पर गाँव के पटेल, जमींदार अथवा मुखिया का मालिकाना होता था। लेकिन सभी गाँव वालों के उपयोग में आया करता था और सभी के पशुओं के बैठने एवं चरने के काम आता था।

(3) गौरा : सर्वसम्मति से तय किया हुआ यह स्थान गाँव की आबादी से सटा हुआ होता था। यहाँ रात को पूरे गाँव के पशु आराम करते थे तथा यहीं पर दुधारू पशुओं का दूध निकाला जाता था।

(4) खलियान : वह भूमि, जहां गाँव के सभी लोग मिलकर, एक ही स्थान पर अपनी पक चुकी फसलों को काटकर एकत्र करते तथा अनाज निकालते थे।

(5) अन्य : गाँव के मध्य या निकट की कुछ परती भूमि जो पैंठ, बाजार, मेले व रामलीला जैसे सामुदायिक उपयोगों के लिए छोड़ दी गई हो।

(ब) वन संसाधन

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित सामलाती जंगल आते हैं।

(1) काँकड़बनी : जहाँ दो या दो से अधिक गाँवों की सीमाएँ आपस में मिलती हों, उस स्थान पर उगे जंगल को काँकड़बनी के नाम से जाना जाता था। राजस्थानी भाषा के काँकड़ शब्द का शब्दार्थ 'सीमा' ही होता है। दो या तीन गाँवों की सीमा (काँकड़) पर किसी देवता का स्थान भी स्थापित किया हुआ हो सकता है।

(2) देवबनी : गाँव की सीमा में किसी देवता के स्थान या साधक अथवा सिद्ध पुरुष की समाधि के नाम से सर्वसम्मति से छोड़ा गया जंगल ही देवबनी कहलाता था। इस जंगल को कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता था। अकाल या सूखा आदि के समय में भी इसका उपयोग नहीं किया जाता था। हाँ, धार्मिक कार्यों में भी सर्वसम्मति से ही इसकी सूखी लकड़ियाँ काम में ली जा सकती थीं।

(3) रखतबनी : सभी गाँव वालों की सहमति से अधिकतर गाँव के उत्तर-पूर्व या उत्तर-पश्चिम में छोड़े गये जंगल को रखतबनी कहा जाता था। इसका उपयोग सामान्य परिस्थितियों में न करके केवल अकाल व संकट के समय ही किया जाता था। (रखत का शब्दार्थ 'रक्षित' होता है।)

(4) देवओरण्य : देवता की सम्पत्ति मानकर उसके चारों तरफ गंगा जल और गौ दुग्ध मिलाकर फेरी लगाकर छोड़ा गया क्षेत्र व जंगल ही देवओरण्य कहलाता था। इसे भी लोग नुकसान नहीं पहुंचाते थे। केवल आपत्ति व संकट के समय सर्वसम्मति से ही इसका उपयोग किया जाता था। यह काफी बड़े क्षेत्र में स्थित होता था।

(5) वाल : गाँव के मन्दिर के गद्दीधारी पुजारी के नाम से छोड़ा गया जंगल जो केवल मन्दिर के ही काम लिया जाता था, वाल के नाम जाना जाता था। ये वाल केवल मन्दिर ही नहीं राजा व जागीरदार भी पशुओं के लिए प्रत्येक गाँव में रखते थे। दो पहाड़ियों के बीच का समतल मैदान भी वाल के नाम से जाना जाता था। कहीं-कहीं वाल क्षेत्र में खेती भी जाती थी। आपत्ति के समय ये सभी के काम आते थे।

(6) बीड़ : यह भी गाँव की सीमा में बहुत बड़ा सघन जंगल हुआ करता था। गाँव के सभी लोग अकाल, संकट आदि विपरीत परिस्थितियों में ही यहाँ पर मवेशियों को चराते तथा चारा, ईंधन व अन्य उपलब्ध जरूरत की चीजें लाया करते थे। ये अधिकतर निजी होते थे, पर एक सीमा तक सभी के उपयोग के लिए उपलब्ध हो जाते थे।

(7) रूँध : कुछ बीड़ क्षेत्र जिसमें खेती नहीं होती थी, उसे रूँध घोषित किया जाता था। इसमें राजा के घोड़े, गाय आदि चरते थे। सामान्य जनता कर (टेक्स) देकर यहाँ अपने पशु चरा सकती थी। आसपास के लोग इसे अपनी चरागाह ही समझते थे और सामलाती सम्पत्ति मानकर इसका मर्यादित उपयोग करते थे।

(स) जल संसाधन : जल सम्बन्धी प्राकृतिक सामलात देह के अन्तर्गत नदी-नाले, इनके किनारे तथा इनके मध्य में पड़ी भूमि (बेसिन) आते हैं। प्राकतिक कुन्ड, झील आदि भी इस श्रेणी के अन्तर्गत ही रखे जाते हैं।

(2) मनुष्य द्वारा निर्मित सामलात देह :

इसके अन्तर्गत वे सभी प्रकार की सामलात देह आती हैं जो मनुष्य द्वारा बनाई गई हों। इसमें निम्नलिखित दो प्रकार की सामलात देह आती हैं।

(अ) सामाजिक सामलात देह :

इसमें वे सभी सामलाती चीजें आती हैं जो समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा समाज के लिए बनाई गई हों। इस प्रकार की सामलात देह मुख्यत: निम्नवत् हैं :

(1) जोहड़/जोहड़ी/ताल/तलइया : सार्वजनिक जोहड़ों को इसके अन्तर्गत रखा जाता है। ये जल एकत्र करने वाली इकाइयां लोगों व पशुधन के लिए पीने व सिंचाई के पानी के लिए उपयोग में आती हैं।

(2) बावड़ी : बावड़ियों का प्रचलन पहले बहुत अधिक

था, लेकिन आज के आधुनिक युग में इनका निर्माण व उपयोग लगभग समाप्त हो गया है। आजकल पुरानी बावड़ियां भी उपयोग में बहुत कम ली जाती हैं।

(3) बाँध : वर्षा के बहते पानी को रोककर भूमिगत करने के लिए तथा सिंचाई व पीने के पानी के उपयोग के लिए और मिट्टी के कटाव को रोकने हेतु, छोटे-छोटे बाँधों का निर्माण लोगों द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता रहा है। ये बाँध सार्वजनिक उपयोग के कारण सामाजिक सामलात देह के अन्तर्गत ही रखे जाते थे।

(4) कुएँ एवं हैन्ड पम्प : विभिन्न गाँवों में सरकार या गाँव पंचायत या अन्य द्वारा बनाये गये कुएं या लगाये गए हैन्ड पम्प भी सामाजिक सामलात देह होते हैं। ये निजी भी हो सकते हैं, इस स्थिति में इनके उपयोग का अधिकार भी सीमित हो जाता है और रख-रखाव की जिम्मेदारी भी। लेकिन प्रत्येक गाँव में कुछ कुएँ या कम से एक कुआं जिसे "पनघट का कुआं" कहा जाता था, महत्त्वपूर्ण सामलात देह होते थे।

(5) चौपाल व तिबारी : ये सार्वजनिक या निजी दोनों प्रकार के होते हैं। लेकिन उपयोग की दृष्टि से, लोगों द्वारा संयुक्त रूप से उपयोग में लाने के कारण, लोग इन्हें सार्वजनिक सामलात देह ही मानते हैं।

(6) थाँईं : यह सार्वजनिक न्याय का स्थान होता था। यहाँ पर गाँव के लोग संयुक्त रूप से मिल-बैठकर आपसी विवादों का निपटारा किया करते थे। इस पर बैठने के बाद कोई भी पंच किसी की तरफदारी नहीं कर सकता था। वास्तविक न्याय ही करता था। थाँईं को सभी सिर झुकाते हैं।

(7) रास्ता : गाँव के छोटे-बड़े सभी रास्ते भी सामाजिक सामलात देह के अन्तर्गत ही रखे जाते हैं।

(8) विद्यालय : यह शिक्षा-दीक्षा का सार्वजनिक स्थान होता है, जहाँ बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। छोटे-बड़े सभी प्रकार के स्कूल भी सामाजिक सामलात देह के अन्तर्गत रखे जाते हैं।

(9) खेलने का मैदान : खेलने के सभी प्रकार के छोटे-बड़े मैदान सामाजिक सामलात देह के अन्तर्गत आते हैं।

(10) श्मशान : प्राय: सभी गाँवों में श्मशान घाट होते हैं जो ग्राम पंचायत की सम्पत्ति होते हैं। सार्वजनिक उपयोग के कारण इनको भी सामाजिक सामलात देह माना जाता है।

(11) बिजार/नारा/सांड : गायों के गर्भाधान हेतु छोड़ा गया नारा (बिजार) भी सामाजिक सामलात देह ही माना जाता है।

(ब) धार्मिक सामलात देह : धार्मिक कार्यों के उपयोग में आने वाले स्थान, धार्मिक सामलात देह के अन्तर्गत आते हैं। ये निम्नवत् हैं:

(1) मन्दिर या पूजा स्थल : पूजा करने के सभी स्थान व उनकी सम्पत्ति धार्मिक सामलात देह मानी जाती है।

(2) धर्मशाला : सार्वजनिक या निजी सभी प्रकार की धर्मशालाएँ, सर्वसाधारण के उपयोग के कारण धार्मिक सामलात देह के अन्तर्गत रखी जाती हैं।

★★★

सामलात देह

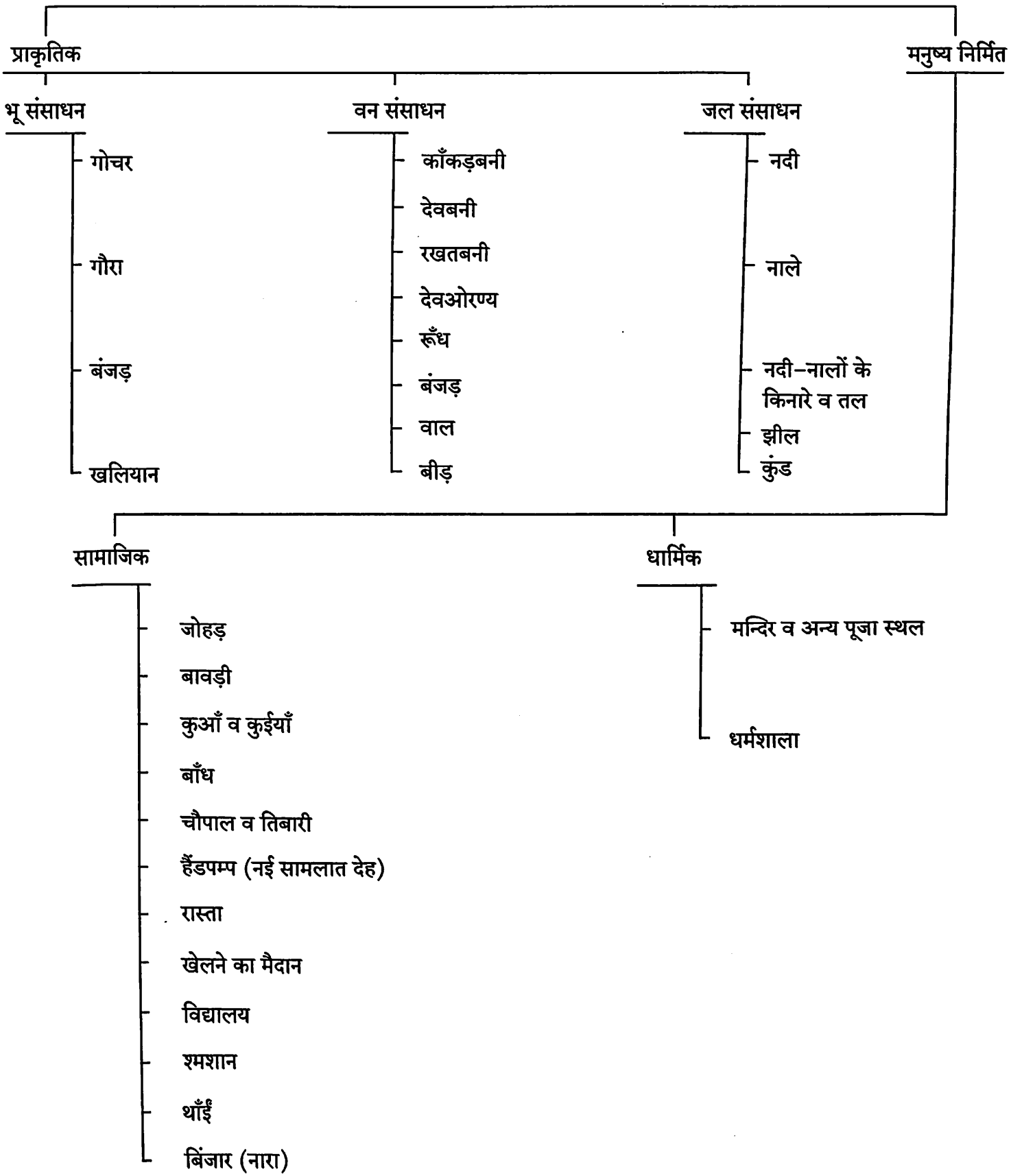
प्राकृतिक
मनुष्य निर्मित
भू संसाधन
वन संसाधन
जल संसाधन
गोचर
गौरा
बंजड़
खलियान
काँकड़बनी
देवबनी
रखतबनी
देवओरण्य
रूँध
बंजड़
वाल
बीड़
नदी
नाले
नदी–नालों के किनारे व तल
झील
कुंड
सामाजिक
धार्मिक
जोहड़
बावड़ी
कुआँ व कुईयाँ
बाँध
चौपाल व तिबारी
हैंडपम्प (नई सामलात देह)
रास्ता
खेलने का मैदान
विद्यालय
श्मशान
थाँईं
बिंजार (नारा)
मन्दिर व अन्य पूजा स्थल
धर्मशाला

भारत में सामलात देह बचाने हेतु हुए विभिन्न आंदोलन

सामूहिक संसाधनों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु भारत के विभिन्न हिस्सों में समय-समय पर विभिन्न रूपों में आंदोलन होते रहे हैं। इन आन्दोलनों का आकार-प्रकार, स्वरूप तथा कारण भले ही अलग-अलग रहे हों तथा उनका परिणाम भी चाहे सफलता या असफलता के रूप में सामने आया हो, मगर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आन्दोलनों में ग्रामीण समुदायों और प्रभावित लोगों ने खुलकर भाग लिया है। भारत में लोकतन्त्र की वापसी के साथ ही आम लोगों की सोच, समझ व ज्ञान में भी सकारात्मक रूप से बदलाव आया तथा उन्होंने अपने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की अनिवार्यता तथा उनके महत्त्व को समझा और स्वीकार किया। ग्रामीण समुदायों द्वारा इन संसाधनों (जल, जंगल व जमीन) के हो रहे ह्रास व विनाश को रोकने तथा सतत् संरक्षण एवं संवर्धन हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। आन्दोलनों को चलाने के लिए, कहीं-कहीं इन लोगों के मध्य से नेतृत्व उभर कर सामने आया तो कहीं-कहीं प्रभावित जन समुदाय से बाहर के प्रबुद्ध व समर्पित लोगों ने उत्प्रेरक का कार्य कर नेतृत्व की बागडोर सँभाली। सामूहिक संसाधनों के संरक्षण व विकास हेतु किये गये संघर्षों में लोगों ने शक्तिशाली वर्गों, व्यक्तियों तथा प्रादेशिक व केन्द्रीय सरकार और अनेक भारतीय एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विरुद्ध जमकर मोर्चाबन्दी की। अनेकों आन्दोलनों में लोगों की जीत हुई तो कई में असफलता भी मिली, जबकि अनेकों आज भी अनवरत रूप से जारी हैं। आन्दोलनों की असफलता का कारण प्रतिकूल परिस्थितियाँ, कमजोर संगठन, आपसी फूट व असक्षम नेतृत्व को माना जा सकता है।

सामूहिक संसाधनों से संबंधित भारत में हुए इस प्रकार के कुछ आन्दोलनों के विभिन्न पहलुओं व तथ्यों पर यहाँ संक्षिप्त रूप में विचार किया जा रहा है।

1. परिभाषा :

एक छोटे लेकिन भ्रष्ट, स्वार्थी, लालची, क्रूर एवं शक्तिशाली समुदाय, वर्ग या व्यक्ति द्वारा अनैतिक रूप से बड़े किन्तु सरल, निर्बल व असहाय जन समुदाय के अधिकारों का अतिक्रमण, बलात्कार व शोषण करने पर शोषित व पीड़ित वर्ग द्वारा किसी भी प्रकार के उत्प्रेरक की उपस्थिति में शोषक, अन्यायी तथा अत्याचारी के विरुद्ध, अपने उचित एवं न्यायसंगत अधिकारों की प्राप्ति हेतु किया जाने वाला संघर्ष ही आन्दोलन कहलाता है।

अन्याय का अहिंसक प्रतिकार करना जब शुरू होता है तब आन्दोलन की प्रक्रिया शुरू होती है। जन-जन में नकारात्मक या शोषण आधारित व्यवस्था को बदलकर सकारात्मक तथा शोषण मुक्त व्यवस्था बनाने हेतु हुआ, जन अभिक्रम भी आन्दोलन कहलाता है। समाज में बदलाव के लिए हुई हलचल भी आन्दोलन है। जल, जंगल, जमीन जैसे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, संवर्धन एवं विकास हेतु किये गये प्रयास भी आन्दोलन कहे जा सकते हैं। अपने उचित व न्यायसंगत अधिकारों की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले संघर्ष को भी आन्दोलन कहा जाता है। अपनी-अपनी दृष्टि तथा समझ के अनुसार ही बुद्धिजीवी वर्ग आन्दोलनों को सकारात्मक या नकारात्मक मानते रहे हैं।

2. आन्दोलन के कारण :

जब कोई शासक/सरकार या शक्तिशाली व प्रभावशाली व्यक्ति/ व्यक्तियों का समूह अपने निहित स्वार्थ, महत्त्वाकांक्षा या लालच के कारण, एक बड़े जन समुदाय के अधिकारों व हितों पर अथवा सामूहिक संसाधनों का भ्रष्ट व अनैतिक तरीकों से अतिक्रमण कर, प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन, शोषण और विनाश करता है, तब इन प्राकृतिक संसाधनों पर वास्तविक अधिकार रखने वाले सभी लोगों में शोषण व लूट करने वालों के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रबल होने लगती है तथा संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है। यह संघर्ष प्रक्रिया ही आन्दोलन का स्वरूप धारण कर लेती है। इस आन्दोलन प्रक्रिया में से कोई नेता निकल आता है, जो फिर अन्त तक लोगों को उनके सवालों के साथ जोड़े रखता है। आन्दोलन तब तक ही चलते हैं, जब तक लोग अपने सवालों को हल करने हेतु लालायित रहते हैं।

आन्दोलन की तीव्रता लोगों के मन में अपने सवालों के साथ जुड़ाव पर निर्भर करती है। जब लोगों का अपने सवालों से गहरा जुड़ाव होता है, तो आन्दोलन तेज व सफल हो जाता है।

उक्त संक्षिप्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भले ही विभिन्न आन्दोलनों के अन्य अनेक गौण कारण हों, परन्तु प्रमुख व मूल कारण किसी शक्तिशाली वर्ग/व्यक्ति या समुदाय का, वास्तविक अधिकार धारण करने वाले जन समुदाय के अधिकारों व

हितों को नकार कर, स्वयं सामूहिक संसाधनों का अतिदोहन व विनाश करना तथा अपनी या अपने निकट के अन्य समुदाय की (जिसका इन प्राकृतिक संसाधनों पर वास्तव में कोई अधिकार नहीं होता) आवश्यकताओं व स्वार्थ के अनुरूप, इन संसाधनों का शोषण करना होता है। आज 80 प्रतिशत संसाधन 20 प्रतिशत लोगों के अधिकार में हैं, जबकि 80 प्रतिशत जनता केवल 20 प्रतिशत संसाधनों से अपना गुजर-बसर कर रही है। इसीलिए अब जगह-जगह सामलात देह बचाने हेतु आन्दोलन खड़े हो रहे हैं।

3. आन्दोलन का नेतृत्व :

संघर्ष की स्थिति और भावना को उत्पन्न करने में कोई न कोई उत्प्रेरक अवश्य कार्य करता है। यह उत्प्रेरक कोई भयंकर व अमानवीय घटना होने पर, शोषित जन समुदाय के मध्य में से ही कोई अद्‌भुत नेतृत्व उभरकर सामने आता है। जो अन्याय व अत्याचार करने वालों के विरुद्ध दृढ़ निश्चय, ठोस निर्णय व ऊँचे इरादों के साथ लड़ाई की घोषणा कर देता है। पीड़ित व शोषित वर्ग भी इस नेतृत्व का साथ देता है तथा संगठित होकर अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु अथवा अपनी सामलात देह को बचाने के लिए संघर्ष में शामिल हो जाता है।

कई बार शोषित समुदाय से बाहर के व्यक्तियों या गैर सरकारी संगठनों को भी उत्प्रेरक का कार्य करते हुए देखा गया है। ये समर्पित व समाज सेवी व्यक्ति या संगठन, क्षेत्र विशेष में हो रहे सामलाती विनाश के प्रति प्रथम तो लोगों में चेतना अभियान चलाकर एक मजबूत जनसंगठन का निर्माण करते हैं। तत्पश्चात् सामूहिक संसाधनों के संरक्षण व संवर्धन हेतु संघर्ष की प्रक्रिया (आन्दोलन) का नेतृत्व करते हैं।

उक्त दोनों स्थितियों में यदि शोषित जनसमुदाय का संगठन बहुत मजबूत हो तथा नेतृत्व करने वाले व्यक्ति पूर्णतया समर्पित व ईमानदार हों, तो अन्त में जीत हमेशा इन्हीं लोगों की होती है।

4. आन्दोलन का स्वरूप :

विगत में हुए तथा वर्तमान में चल रहे आन्दोलनों के स्वरूप के बारे में संक्षिप्त विचार करना बहुत महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। अनेकों आन्दोलन, जहाँ एक ओर अहिंसक होते हैं, वहीं दूसरी ओर अन्य कई आन्दोलन हिंसक रूप भी धारण कर लेते हैं। गांधी के देश में हिंसक आन्दोलनों का होना बहुत शर्म की बात है। हिंसक आन्दोलन प्रायः असफल होते देखे गये हैं। यदि इन्हें सफलता मिलती भी है तो सफलता के बदले में बहुत अधिक जन-धन की हानि होती है, जिसकी भरपाई करना बहुत कठिन ही नहीं असंभव होता है। हिंसा की घटनाएँ प्रायः आन्दोलन करने वालों की तरफ से न होकर आन्दोलन दबाने वालों की तरफ से ही होती देखी गई हैं, जो शोषक वर्ग के अत्याचार, अन्याय तथा क्रूरता का स्पष्ट प्रमाण देती हैं। जहाँ शोषक वर्ग की तरफ से की गई हिंसा, आन्दोलन को और अधिक मजबूत व प्रभावी बनाती है, वहीं दूसरी तरफ शोषित वर्ग का अहिंसक आंदोलन अन्त में सफलता प्राप्त करके ही रहता है। पीड़ित या शोषित वर्ग की तरफ से किया गया हिंसक आंदोलन असफल होने के साथ-साथ नेतृत्व की अक्षमता और संगठन की कमी का सूचक होता है; जो प्रायः असफल ही होता है। कभी-कभी परिस्थितियाँ भी आन्दोलन के हिंसक और अहिंसक स्वरूप का निर्धारण करती हैं।

आन्दोलन का नेतृत्व असामाजिक तत्त्वों के हाथों में चले जाने पर, आन्दोलन का स्वरूप सामाजिक से असामाजिक तथा हिंसक हो जाता है। जब कोई आन्दोलन, पीड़ित समुदाय के कुछ लोगों का न होकर पूरे समुदाय का होता है, तभी इसकी सफलता की संभावनाएँ अधिक होती हैं। इसी प्रकार, आन्दोलन कर रहे जन समुदाय में मजबूत संगठन न होने पर भी आन्दोलन की असफलता की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

नेतृत्व का भी आंदोलन के स्वरूप पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि नेतृत्व करने वाला व्यक्ति दृढ़ निश्चयी, स्वाभिमानी, ईमानदार, समर्पित तथा मजबूत इरादों वाला है, तो आन्दोलन निश्चय ही सफलता की तरफ बढ़ता है। किन्तु अनेकों बार यह भी देखने में आया है कि नेतृत्व की कमान सँभालने वाले व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी, ढोंगी व स्वार्थी होते हैं और आन्दोलन को असफलता के अन्धकार की तरफ ले जाते हैं। कभी-कभी प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं विकास हेतु चलाये जा रहे आन्दोलनों में राजनैतिक लोग घुसकर अपने निहित स्वार्थों हेतु आन्दोलनों का राजनीतिकरण करने की कोशिश करते हैं, जिससे आन्दोलनों के उद्देश्यों की पूर्ति में बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः ऐसे लोगों से बड़ी सावधानी और बुद्धिमत्ता से निपटना चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामलात देह के संदर्भ में अहिंसक, अराजनैतिक, पूर्ण संगठित, सामाजिक, समर्पित नेतृत्व तथा पूरे समुदाय का आन्दोलन ही सदैव सफल होता है।

5. आन्दोलनों का परिणाम :

सामलात देह को बचाने हेतु भारत के विभिन्न हिस्सों में पाँचवें दशक से ही अनेकों आन्दोलन होते रहे हैं। इन आन्दोलनों में अनेकों सफल हुए हैं तो कुछेक असफल भी हुए हैं। कई आन्दोलन एक लंबे समय से अभी तक चल रहे हैं। आन्दोलनों की सफलता और असफलता विभिन्न कारणों पर निर्भर करती है। जिनमें आन्दोलन का कारण, नेतृत्व, स्वरूप, परिस्थितियाँ तथा आन्दोलन करने वाले समुदाय का संगठनात्मक स्तर आदि तत्त्व महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा आन्दोलन के अंतिम परिणाम को निश्चित करते हैं।

6. आन्दोलनों में मुख्य भूमिका :

स्थानीय समुदाय या वर्ग विशेष ही (जिससे संबंधित सामूहिक संसाधनों का विनाश एवं ह्रास किया गया हो या किया जा रहा हो) ऐसे आन्दोलनों में मुख्य भूमिका निभाते हैं। कई बार कुछ गैर सरकारी समाज सेवी संगठन तथा स्थानीय या बाहरी नेतृत्व भी इन आन्दोलनों में अहम् भूमिका निभाते देखे गये हैं। परन्तु शोषित व दलित वर्ग ही वास्तव में आन्दोलनों का प्राण व ऊर्जा होते हैं। नेतृत्व तो मात्र उत्प्रेरक और संचालन का कार्य करता है। जन संगठन ही किसी आन्दोलन का वाहक बनता है। स्वैच्छिक संस्थाएँ, प्रबुद्ध व्यक्ति एवं नेतृत्व तो केवल माध्यम बन सकता है। अन्ततः तो मुख्य भूमिका जन समुदाय की ही होती है।

7. सामलात देह बचाने हेतु हुए आंदोलनों के कुछ उदाहरण :

भारत में अनेकों आन्दोलन इस संबंध में हुए हैं। जिन सभी पर यहाँ विचार करना असंभव है। परन्तु कुछ प्रमुख आन्दोलनों के संबंध में बहुत संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दिया जा रहा है।

गंगा तपस्या 2018

भारत ने गंगापुत्र स्वामी ज्ञान स्वरूप सानंद (डॉ जी डी अग्रवाल) को 11 अक्टूबर को गंगा के संरक्षण व संवर्धन के लिए भारत सरकार से प्रभावी कार्रवाई की मांग के लिए उनके उपवास के 112 वें दिन खो दिया।

2007 में गंगोत्री में गंगा के मंदिर की यात्रा पर गए डॉ जी डी अग्रवाल मानेरी भाली 1 परियोजना के अलावा टिहरी के चार बाँधों की एक शृंखला बनाने की योजनाओं के बारे में पता चला। उन्होंने महसूस किया कि ये नए बाँध गंगा के एकमात्र बचे प्राकृतिक हिस्से को नष्ट कर देंगे। कई विकल्पों पर विचार करने के बाद डॉ जी डी ने उस साल जून के मध्य से आमरण अनशन करने के लिए 14 अप्रैल 2008 को अपने फैसले की घोषणा की जब तक गंगोत्री और मानेरी के बीच गंगा पर सभी बाँध निर्माण गतिविधियां स्थायी रूप से बंद नहीं हुईं। उनके पहले उपवास ने हाइड्रो पावर उत्पादन प्रवचन के केंद्र-स्थल में पर्यावरणीय प्रवाह का मुद्दा उठाया। इसने गंगा को भारत की राष्ट्रीय नदी के रूप में नामित किया। 2009 में उनके दूसरे उपवास ने राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन अथॉरिटी का गठन किया। 2010 में सरकार को गंगोत्री और उत्तरकाशी और भागीरथी ईको सेंसिटिव जोन की स्थापना के बीच तीनों नई परियोजनाओं को रद्द करने के लिए मजबूर किया।

फरवरी 2018 में उन्होंने भारत सरकार के समक्ष चार माँगें रखीं और लिखा कि यदि यह माँगे पूर्ण नहीं होती हैं तो वे 22 जून से आमरण अनशन करेंगे यदि वे पूरा नहीं हुए थे।

1) 2012 में गंगा महासाभा द्वारा तैयार किए गए मसौदे के आधार पर गंगा को प्रभावी रूप से संरक्षित और संरक्षित करने के लिए संसद में एक व्यापक विधेयक प्रस्तुत करना।

2)निर्माणाधीन सभी हाइड्रो इलेक्ट्रिक परियोजनाओं को रोकें या गंगा के ऊपरी भाग और इसके छह मुख्यधारा की सहायक नदियों में प्रस्तावित करेंगे।

3) गंगा के मुख्य तने में नदी के बिस्तर पर रेत खनन पर प्रतिबंध लगाएँ।

4) गंगा के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए सक्षम और प्रतिबद्ध व्यक्तियों का एक स्वायत्त निकाय बनाएँ।

प्रधान मंत्री ने कभी जवाब नहीं दिया, तो वे 22 जून 2018 से अन्नत्याग कर गंगा तपस्या पर बैठ गये। 9 सितंबर 2018 को स्वामी सानंद ने घोषणा की कि वह पेयजल भी छोड़ देंगे। सरकार की तरफ से कोई उत्तर नहीं आया और उन्होंने अपने कहे अनुसार प्राणों का बलिदान दे दिया।

(क) गंगा बचाओ (टिहरी बाँध) आन्दोलन :

टिहरी जैसे भूकम्प संवेदनशील क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार द्वारा गंगा नदी पर बनाया जाने वाला यह विशालकाय बाँध पिछले काफी समय से आंदोलन का कारण बना हुआ है। एक ओर जहाँ इस बाँध के भराव क्षेत्र (डूब क्षेत्र) में लाखों हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि आती है, वहीं दूसरी तरफ असंख्य परिवारों को इस बाँध के कारण विस्थापित होना पड़ रहा है। गंगा जैसी पवित्र एवं प्रसिद्ध नदी को इस बाँध के निर्माण द्वारा रोकने की योजना केन्द्रीय सरकार ने बनाई है। यदि दुर्भाग्यवश कभी यह बाँध टूट गया तो उत्तर प्रदेश में कितने जान-

माल की हानि होगी, यह सोचकर मन आतंकित हो उठता है। वर्तमान में इस बाँध को रोकने हेतु चलाये जा रहे आन्दोलन का नेतृत्व श्री सुन्दरलाल बहुगुणा कर रहे हैं, जो एक माध्यम हैं, लेकिन यहाँ का जनसमुदाय (वाहक) पूरी तीव्रता से इस आन्दोलन में नहीं जुड़ पाया है। फिर भी यह आन्दोलन श्री बहुगुणा जी के कारण आज भी जीवित है, चल रहा है।

(ख) चिपको आन्दोलन :

17वीं शताब्दी में जोधपुर राज्य के खेजड़ली गाँव में यह आंदोलन हुआ था। यहाँ का राजा भीमसिंह अपना महल बनवाने के लिए जंगल कटवाना चाहता था। यहाँ पर रहने वाले विश्नोई समाज के स्त्री-पुरुष जंगल के महत्त्व को भली-भाँति समझते थे। जंगल की कमी से लोक जीवन में आने वाले कष्टों को तथा होने वाले पर्यावरणीय दुष्प्रभावों एवं हानियों को यहाँ के लोग अच्छी प्रकार जानते थे। फलस्वरूप राजा के सैनिकों के जंगल काटने हेतु आने पर, यहाँ के लोगों (स्त्री-पुरुष एवं बच्चों) ने पेड़ों से चिपक कर जंगल बचाने का उपक्रम किया। मगर क्रूर भीमसिंह के आदेश पर उसके सैनिकों ने 368 लोगों की जानें ले ली। फिर भी गाँव वालों ने जंगल नहीं कटने दिया। अन्त में राजा को अपना आदेश वापिस लेना पड़ा और लोगों ने पेड़ों से चिपक कर, बलिदान देकर जंगल बचाया। अन्त में जनता की जीत हुई तथा वह जंगल बच गया। इस आन्दोलन के नेता सन्त श्री जाम्भो जी थे, जिन्होंने जनता के मन में पेड़ व प्रकृति का प्रेम भर दिया था।

उत्तराखण्ड (हिमालय) में भी इसी प्रकार सैकड़ों-हजारों महिलाओं व बच्चों ने पेड़ों से चिपक कर, पेड़ों को बचाने का अद्‌भुत तथा साहसपूर्ण कार्य किया और जंगल हमारा पीहर है ऐसा कहकर महिलाओं ने सरकार को जंगल काटने से रोक दिया। इस आन्दोलन के प्राण यहाँ की महिलाएँ रही हैं।

(ग) सरिस्का आन्दोलन (जंगल-पहाड़ बचाओ) :

राजस्थान के पूर्वोत्तर में स्थित सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान में वन विभाग के कर्मचारी एवं अधिकारी रक्षक के नाम पर भक्षक का कार्य कर रहे थे। वे चोरी से जंगल कटवाने के साथ-साथ जंगली जीवों का शिकार भी करते तथा करवाते थे। इस राष्ट्रीय उद्यान में बसने वाले अनेकों गाँवों से अधिकारीगण लाखों रुपये की घूस (रिश्वत) दूध, घी, व रुपयों के रूप में लेते थे। अकेले देवरी गाँव से 90,000 रुपयों की वार्षिक धन राशि विभिन्न अवैधानिक तरीकों से वनकर्मियों के पास जाती थी। यहाँ काम कर रही स्वैच्छिक संस्था तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने विभिन्न गाँवों में जाकर लोगों में चेतना जागरण और संगठन का कार्य करके, लोगों को जंगल व जंगली जीवों के महत्त्व के बारे में समझाया और जंगल बचाओ आन्दोलन (वन विभाग के कर्मचारियों और अधिकारियों को प्रेम से समझाकर नहीं मानने पर गाँव से बाहर खदेड़ कर जंगल बचाने हेतु अहिंसक संघर्ष) चलाया। अन्त में जीत गाँव वालों की हुई तथा वन विभाग को जंगल बचाने का पाठ भी देवरी, भाँवता तथा अन्य कई गाँवों के लोगों से सीखना पड़ा।

इसी क्षेत्र में चल रही 274 अवैध खानों को तरुण भारत संघ के महामंत्री श्री राजेन्द्रसिंह के नेतृत्व में यहाँ के जन संगठन ने उच्चतम न्यायालय की मदद से बन्द करवाया तथा पूरे अरावली पर्वत में पद यात्राओं द्वारा जन चेतना जाग्रत करके, 'पहाड़ बचाओ' आन्दोलन चलाया। यह आन्दोलन बढ़ते रेगिस्तान को रोकने तथा अरावली में हरियाली लाने हेतु जल, जंगल एवं जमीन के संरक्षण का कार्य कर रहा है। इस क्षेत्र में 1994 तक लगभग 3500 तालाब निर्मित किये, जिनकी संख्या अब 2018 में बढ़कर 11800 हो गई है।

(घ) नर्मदा बचाओ आन्दोलन :

मध्यप्रदेश, गुजरात व महाराष्ट्र राज्यों में महिला नेतृत्व में चलने वाला यह आन्दोलन, सरकार द्वारा नर्मदा नदी पर बनाये जाने वाले विशाल बाँध के निर्माण और इससे होने वाली तबाही को रोकने हेतु चलाया जा रहा है। यह आन्दोलन इस बाँध के भराव क्षेत्र में एक लाख से भी अधिक गाँवों के आने से, कृषि योग्य भूमि तथा जंगल को बचाने एवं 70 लाख से भी अधिक परिवारों के विस्थापन को रोकने हेतु चलाया जा रहा है। वर्तमान में, इस बाँध से प्रभावित अधिकतर जनता संगठित होकर, इस आन्दोलन में शामिल हो चुकी है। "नर्मदा हमारी माँ है, इसे बहने दो" इस नारे के साथ यहाँ की जनता आत्मसात् हो गयी है। इस आन्दोलन ने विकास की अवधारणा पर नई बहस शुरू करवाई है। इस आंदोलन का दुनिया भर में अभूतपूर्व प्रचार-प्रसार हुआ है। इस आन्दोलन में बड़ी संख्या में प्रबुद्ध नागरिक तथा आदिवासी महिलाएँ जुड़ी हैं।

(च) बरगी और तबा (नर्मदा की उपनदियाँ) का आंदोलन :

मध्यप्रदेश राज्य के होशंगाबाद जिले के इटारसी गाँव के आस-पास, यह आन्दोलन चल रहा है। इन उपनदियों पर बाँध बन जाने से बहुत बड़े क्षेत्र में बढ़ती दलदल, सरकार द्वारा बनाई गई फायरिंग रेंज तथा बोरी जंगल को अभयारण्य घोषित करने के फलस्वरूप विस्थापितों की दयनीय स्थिति एवं सैकड़ों गाँवों की

बरबादी को लेकर यह आन्दोलन चलाया जा रहा है।

(छ) मछुआरों का आंदोलन :

भारत के समुद्र तटीय क्षेत्रों में, सरकार द्वारा मछली पकड़ने व मछली उत्पादन के ठेके बहुराष्ट्रीय व बड़ी कंपनियों को दिये जाने के कारण, इन क्षेत्रों के परंपरागत तरीकों से मछली पकड़ने वाले समुदायों में विद्रोह, विद्वेष, असंतोष व विरोध बढ़ने से यह आंदोलन सामने आया है। जो गरीब लोग मछली पकड़ने का धंधा करते थे, उनके हक छिनते जा रहे थे। अत: उन्होंने संगठित होकर अपने हकों के लिए लड़ाई लड़ी, परन्तु मछुआरों में संगठनात्मक शक्ति की कमी के कारण यह आंदोलन उचित प्रकार से आगे नहीं बढ़ पा रहा।

(ज) साइलेन्ट वैली आन्दोलन :

केरल राज्य में स्थित इस घाटी में बहुत पुराना व घना जंगल है। श्रीमती इन्दिरा गांधी के शासनकाल में, यहाँ पर बाँध बनाने की परियोजना बनाई गई थी, जिसके डूब क्षेत्र में इस जंगल (पर्यटनीय स्थल) के आने के कारण इसके नष्ट होने की संभावना थी। मगर लोगों विशेषकर धनिक वर्ग ने इन्दिरा गांधी को असंख्य पत्र लिखे। परिणामस्वरूप बिना संगठन एवं संघर्ष, यहाँ पर बनने वाले बाँध का निर्माण कार्य रुक गया।

(झ) बहुराष्ट्रीय व बड़ी कम्पनियों के विरुद्ध आन्दोलन :

अनेकों स्थानों पर ऐनरॉन, स्टारलाइट, ड्यूपोन्ड तथा बिरला व थापर एवं अन्य अनेक कम्पनियों के विरुद्ध महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, उड़ीसा व अन्य राज्यों में पर्यावरणीय संतुलन बनाने तथा जल प्रदूषण को रोकने हेतु स्थानीय लोगों द्वारा आंदोलन चलाये जा रहे हैं। जहाँ एक ओर ये कंपनियाँ अपनी इकाइयाँ स्थापित करके पर्यावरण व जल प्रदूषण करेंगी, वहीं दूसरी तरफ स्थानीय लोगों की सामलात देह (जल, जंगल व जमीन) का बहुत अधिक विनाश होगा।

★★★

सामलात देह की वर्तमान स्थिति

यद्यपि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए सामलात देह का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है, फिर भी देश के लिए बनायी जाने वाली विकास योजनाओं में उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जाता और ये उपेक्षित कर दिये जाते हैं। फलस्वरूप उत्पादकता और क्षेत्रफल दोनों ही दृष्टियों से उनका ह्रास हो रहा है। सामलात देह के क्षेत्रफल में आती कमी तो गाँवों के भूमि उपयोग के मौखिक व लिखित दस्तावेजों (रिकॉर्ड) के द्वारा आसानी से पता चल जाती है, मगर सामलात देह में होने वाले उत्पादनों की कमी का ब्यौरा बतलाना बहुत कठिन है, क्योंकि उनके उत्पादनों का पहले कभी कोई रिकॉर्ड ही नहीं रखा गया। फिर भी गाँव वाले इस कमी को बहुत अधिक महसूस करते हैं।

सामलात देह में होने वाले ह्रास के अनेकों कारण हैं। ह्रास की यह प्रक्रिया तो अंग्रेजों के भारत में आगमन के साथ ही शुरू हो गयी थी। 1872 में बनाये गये वन अधिनियम ने इस प्रक्रिया को और अधिक तीव्र किया। मगर आज सामलात देह की वर्तमान स्थिति बहुत ही सोचनीय है। आजादी के समय भारत में वनों का क्षेत्रफल 30 प्रतिशत से भी अधिक था। मगर आज यह 8 से 10 प्रतिशत के स्तर पर आ गया है। राजस्थान का ही आँकड़ा लें तो यहाँ वन क्षेत्र 15 प्रतिशत था, जो आज मात्र 3 प्रतिशत रह गया है। जब जंगलों का यह हाल है, तब सामलात देह के अन्य संसाधनों का क्या हाल होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। एक मोटे से अनुमान के मुताबिक यहाँ राजस्थान में मात्र पिछले 10 वर्षों में 3,000 जोहड़ गायब हो गये हैं अर्थात् उनका विनाश हो चुका है। इन आंकड़ों से सामलात देह के ह्रास की तीव्र गति को सहज ही जाना जा सकता है। विभिन्न गाँवों में किये गये परीक्षणों और विश्लेषणों से यह बात सामने आयी है कि सामुदायिक चरागाहों, ग्राम वनों, परती भूमियों तथा अन्य छोटे 'सामलात देह' जैसे-सामुदायिक खलियान, गौरा, जल धाराओं और पोखरों के खाली छोड़े हुए क्षेत्रों के क्षेत्रफल में बहुत अधिक ह्रास हुआ है। 1950-52 में जब देश में व्यापक रूप से भूमि सुधार हुए तभी से सामलात देह में भी व्यापक परिवर्तन आने शुरू हो गये। 1982-84 में आई.सी.आर. आई.एस.ए.टी. द्वारा किये गये क्षेत्रीय कार्य की रिपोर्ट के अनुसार सामलात देह में 1950-52 की अवस्था की तुलना में 31 से 55 प्रतिशत कमी आयी। एक ओर तो ग्राम के सामलात क्षेत्र की भूमियों के क्षेत्रफल में भारी कमी हो गयी और दूसरी ओर इस सिकुड़ती सामलात भूमि पर आबादी का दबाव भी काफी बढ़ गया। देश के अनेक हिस्सों में कई अन्य परीक्षणों और जाँचों से भी पता चलता है कि पिछले 50 वर्षों में सामलात देह में बहुत अधिक कमी आ गयी।

क्षेत्रफल में कमी के साथ ही सामलात देह भूमियों में अधिकांश पेड़-पौधों का लोप होता जा रहा है। फलत: बहुत से दैनिक उपयोग के पदार्थ जो कि गाँव वाले 1950 के पहले सार्वजनिक जमीनों से जमा कर लेते थे, अब सामलात देह से उपलब्ध नहीं होते। अनेक भूमि खण्डों के स्थानीय नामों से पता चलता है कि पहले उनमें कौन सी खास किस्म की वनस्पति पैदा होती थी, लेकिन इस समय उन किस्मों में ही कठिनाई से कोई वनस्पति उन स्थानों पर उगती या पायी जाती है। इसी प्रकार अनेक ऐसे सामलाती भूमि खण्ड थे, जो पारंपरिक रूप से उत्तम तथा पशुओं जैसे-गाय, भैंस और बैल आदि की चराई के लिए उपयोग में लाये जाते थे, लेकिन आज ये भूमि खण्ड इतने समर्थ नहीं रहे कि इन जानवरों का भरण-पोषण कर सकें। अब उन भूमि खण्डों की अधिक चारा पैदा करने की संभावना कम हो गयी है और उनके वानस्पतिक संतुलन में परिवर्तन आ गये हैं। परिणामस्वरूप अब गाय, भैंसों के स्थान पर वहां भेड़ें और बकरियाँ ही चरती हैं। जल पीने के स्थानों की संख्या, जो कि सार्वजनिक चराई भूमियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, में भी भारी कमी हो गयी है।

आरक्षित, संरक्षित और सुरक्षित वनों पर होने वाली वनस्पतियों की किस्मों की संख्या से भी पता चल जाता है कि कितना वानस्पतिक ह्रास हुआ है और उनसे संबंधित साधनों का कितना विनाश हुआ है। कुछ विशिष्ट सामलाती क्षेत्र ऐसे हैं, जो अनेक धार्मिक आदेशों, विचारों और नियमों (जैसे-हरे और जीवित वृक्षों और पेड़-पौधों को नहीं काटना चाहिए) के अन्तर्गत आज भी सुरक्षित हैं। सामान्य सामलाती वनों की तुलना में इन भावनाओं द्वारा सुरक्षित सामलाती क्षेत्रों में पेड़-पौधों और झाड़ियों की प्रजाति संख्या तीन से आठ गुणा अधिक पायी गई है।

सामलाती क्षेत्रों के घटने और उनसे घटा हुआ उत्पादन प्राप्त होने का एक मुख्य परिणाम यह हुआ है कि पिछले दिनों की अपेक्षा आजकल उसी मात्रा में सामलाती उत्पादनों को एकत्र करने में अधिक समय लगता है और इसके लिए अधिक फासला भी तय करना पड़ता है। इस प्रकार जहाँ पिछले समय में सामलात देह का उपयोग पूरा ग्राम समुदाय करता था, अब केवल विशेष रूप से गरीब परिवारों के लोग, जिनकी अपनी कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं है, वे ही इन स्रोतों से प्राप्त किये गये थोड़े से उत्पादनों से अपनी रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

सामलाती क्षेत्रों के कम हो जाने और जनसंख्या वृद्धि के कारण इन पर जन दबाव बढ़ जाने तथा इनके उपयोग के कोई निश्चित नियम न होने के कारण भी इन भूमियों के अत्यधिक शोषण करने को प्रोत्साहन मिला है। स्वतंत्रता के बाद से सामलाती भूमियों का उपयोग करने वालों के लिए कोई निश्चित नियम बनाकर लागू नहीं किया जा सका। जैसे- चराई कर लगाना, खाईयाँ खोदने और बाड़ लगाने के लिए आवश्यक रूप से श्रमदान करना इत्यादि। इससे इन सामलाती भूमियों का रख-रखाव बहुत खराब रहा है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आज सामलात देह की स्थिति बहुत ही सोचनीय और दयनीय है। उसका बहुत अधिक ह्रास हो चुका है और ह्रास की यह प्रक्रिया निरंतर जारी है।

परंपरागत 'सामलात देह' और उसकी प्रबन्ध व्यवस्था के ह्रास के कारण

भारत में सदियों से 'सामलात देह' की अवधारणा और प्रचलन रहा है। अंग्रेजों से पूर्व यहाँ पर इन सामूहिक संसाधनों का एक बहुत ही मजबूत ढाँचा विद्यमान था। इसकी अपनी एक परंपरागत प्रबन्ध व्यवस्था थी, जिसके मुख्य लक्षण सामान्यत: इस प्रकार होते थे।

(क) इन संसाधनों का उपयोग इस व्यवस्था के अनुसार करने से प्रकृति चक्र में बहुत कम बदलाव आता था।

(ख) इस प्रबंधन व्यवस्था से संसाधन दोहन की उस सीमा-रेखा की तार्किक जानकारी मिलती थी, जिससे अधिक दोहन का संसाधनों पर दुष्प्रभाव पड़ सकता था।

(ग) बँटवारे में समानता की निश्चितता।

(घ) कार्य करने में सहकारिता का वातावरण बनाना।

(ङ) इनका उपयोग स्व-उपभोग के लिए किया जाता था, न कि व्यापार व बिक्री के लिए। सामलात देह के संरक्षण एवं संवर्धन में परंपरागत प्रबन्ध व्यवस्था की भूमिका इस प्रकार थी:

(1) इस व्यवस्था में, संसाधनों के उपयोग में सामुदायिक कानून-कायदों का पालन होता था।

(2) संसाधनों के उपयोग में संरक्षण के सिद्धांतों को अपनाया जाता था।

(3) संसाधनों के बँटवारे व संरक्षण को समानता के आधार पर तय किया जाता था।

परंपरागत प्रबन्ध व्यवस्था के चलते भारत के प्रत्येक गाँव, छोटे कस्बों तथा राज्यों की राजधानियों में सामूहिक संसाधन या सामलात देह इस अनुपात में विद्यमान थे कि प्रकृति चक्र को भली-भाँति चलाये रखना या पर्यावरण संतुलन को बनाये रखना ठीक प्रकार से हो रहा था। लेकिन अंग्रेजों के आगमन से हमारा सामाजिक ढाँचा ही अस्त-व्यस्त हो गया और लोगों की जीवन शैली ही बदल गई तथा उसने पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से प्रेरित होकर एक नया किन्तु अंधकारमय मोड़ ले लिया। फलस्वरूप सामलात देह पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा और इन सामूहिक संसाधनों की परंपरागत प्रबन्ध व्यवस्था एवं इन संसाधनों के ह्रास की प्रक्रिया शुरू हो गयी। परिणामस्वरूप प्रकृति चक्र टूट गया और पर्यावरण संतुलन बिगड़ गया।

भारत की ही भाँति अधिकांश विकासशील देशों में, जहाँ सामलात देह का योगदान आज भी महत्त्वपूर्ण है, इनके क्षेत्र, उत्पादकता और रख-रखाव तथा संरक्षण में कमी आ जाना एक सामान्य-सी बात हो गयी है। ये सारे बदलाव जनसंख्या-वृद्धि दबावों, बाजार संबंधी ताकतों, सरकारी नीतियों, तकनीकी परिवर्तनों और पर्यावरणीय दबावों यथा-सूखा, बाढ़ आदि के कारण होते हैं। ये घटक आपस में मिलकर या अलग-अलग रूप में सामलात देह के ह्रास के लिए उत्तरदायी बन जाते हैं। ये सभी घटक औपचारिक या अनौपचारिक रूप से उन नियमों व व्यवस्थाओं को प्रभावित करते हैं, जो सामलात देह में लोगों के सहज प्रवेश और उनके उपयोग के लिए निर्धारित हैं। इस प्रकार के मुख्य-मुख्य घटकों अर्थात् सामलात देह व उसकी परंपरागत प्रबन्ध व्यवस्था के ह्रास के कारणों की संक्षिप्त चर्चा नीचे की जा रही है:

(1) सरकारी नीतियाँ:

सामलात देह को प्रभावित करने वाली नीतियाँ और कार्यक्रम मुख्यत: तीन समूहों में रखे जा सकते हैं :

(अ) जो सामलात देह के क्षेत्रफल को प्रभावित करते हैं।

(ब) जो सामलात देह के उत्पादनों और उत्पादकता में बदलाव लाते हैं।

(स) जो सामलात देह की व्यवस्था, उपयोग और रख-रखाव को प्रभावित करते हैं।

ऐसे बहुत से सरकारी कार्यक्रम होते हैं, जो इनमें से एक से अधिक वर्गों में सम्मिलित किये जा सकते हैं। सामलाती क्षेत्रों को प्रभावित करने वाली नीतियों पर विचार करने से मालूम पड़ता है कि बड़े पैमाने पर सामलात देह को निजी भूमियाँ बना लेने के फलस्वरूप उनका विस्तार कम हो गया है। यह परिवर्तन सरकारी भूमि वितरण सम्बन्धी नीतियों से निकट रूप से जुड़ा है। ये परिवर्तन सन् 1950 के दशक के शुरूआती समय में आरम्भ किये गये भूमि सुधारों के बाद ही होने लगे थे और आज तक विभिन्न जनवादी कार्यकलापों के अन्तर्गत जारी हैं। इनके कारण सामलात देह के निजीकरण को प्रोत्साहन मिला है। व्यावहारिक रूप से उन सभी कार्यक्रमों का परिणाम सामलात देह भूमियों की काट-छाँट रहा है। लैण्ड सीलिंग (भूमि सीमन) कानूनों के द्वारा पुन: वितरण के लिए, भूमि प्राप्त करने में असफल रहने पर या भू-दान जैसे आन्दोलनों के अन्तर्गत स्वैच्छिक दान (निजी भूमि स्वामियों द्वारा अपनी इच्छा से भूमि दान) द्वारा भूमि प्राप्त न होने पर, सामलाती भूमियों में कटौती कर देना ही, इसके लिए सबसे सरल वैकल्पिक उपाय प्रतीत हुआ। भूमि निजीकरण के अन्तर्गत निम्नलिखित दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं :

(क) भिन्न-भिन्न कल्याणकारी और विकास योजनाओं के अन्तर्गत भूमिहीन और अन्य वर्गों में औपचारिक रूप से सामलाती भूमि का वितरण करना।

(ख) लोगों द्वारा गैरकानूनी रूप से सामलाती भूमियों पर कब्जा करने की कार्यवाही को कानूनी बना देना।

अक्सर गरीबों की सहायता करने के नाम पर सामलाती भूमियों का निजीकरण करने से, पहले से ही धनी परिवारों को और अधिक भूमि मिल गयी। परीक्षणों से प्राप्त जानकारी के अनुसार सामलाती भूमियाँ प्राप्त करने वाले कुल परिवारों में से गरीब परिवारों की संख्या का औसत तो अधिक था, मगर जिस अनुपात में उन्हें भूमि मिली वह उससे बहुत कम थी, जो अन्य सामाजिक वर्गों को मिली। गरीब परिवारों को जो भूमि मिली उसका औसत कठिनाई से एक हैक्टेयर से थोड़ा ही अधिक (प्रति परिवार) था। जबकि दूसरों को मिली भूमि का औसत दो से तीन हैक्टेयर प्रति परिवार था। विस्तृत रूप से पूछ-ताछ करने पर ज्ञात होता है कि कुछ क्षेत्रों को छोड़कर अधिकांश इलाकों में गरीब परिवारों को मिली जमीन में से 23 से 45 प्रतिशत तक के भूमि भाग से उन्हें पुन: वंचित कर दिया गया। इसका कारण यह बताया जाता है कि भूमि को उपयोग करने से इसका विकास करने के उचित साधन गरीब परिवारों के पास नहीं थे और वार्षिक फसलों को बनाये रखने के लिए जमीन की किस्म भी बहुत कमजोर थी आदि। इस प्रकार भूमि वितरण की सरकारी नीतियों से गरीबों को खास लाभ नहीं हुआ और सामलात देह को बहुत अधिक नुकसान हुआ।

सामलात देह की उत्पादकता प्रभावित करने वाली सरकारी नीतियों पर विचार करने से मालूम होता है कि 1950 के दशक के शुरूआती समय में सामलात देह की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अपनाई गई नीतियों और कार्यक्रमों का प्राय: उलटा प्रभाव हुआ। उदाहरण के लिए सामुदायिक वनों को पुन: स्थापित करने के कार्यक्रमों के संचालन में ग्राम समुदायों का सहयोग नहीं के बराबर लिया गया और इन कार्यक्रमों को राज्य द्वारा संचालित कार्यकलापों की तरह समझा गया। इसे प्रशासन द्वारा होने वाले कम कानूनी कार्यक्रमों की तरह लागू किया गया। ये सभी कार्यक्रम विफल रहे और इनका उल्टा प्रभाव हुआ। इन बातों का संक्षिप्त विवरण चैम्बर्स एट आल (1989) ने दिया है। दूसरे सामलात देह की उत्पादकता को बढ़ाने के कार्यक्रमों में अत्यन्त ऊँचे दर्जे की वैज्ञानिक तकनीक का उपयोग किया गया तथा गाँव के परंपरागत ज्ञान कौशल व जरूरत की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप ये कार्यक्रम प्रायोगिक परियोजनाएँ ही बनकर रह गईं। और लोगों के स्वभाव और महत्त्व पर ध्यान दिये बिना ही जो उत्पादन बढ़ाने वाले प्रयास किये गये, उनका एक गम्भीर परिणाम यह हुआ कि सामलाती भूमियाँ व्यापारिक उत्पादन की भूमियों में बदल गईं, जैसा कि अनेक वानिकी परियोजनाओं में देखा जाता है। इन सबसे आगे, अधिक उत्पादन वाले सामलाती क्षेत्र को सरकार प्राय: झपट लेने के प्रयत्न करती है। वह सीधे या ठेकेदारों के जरिये इन संसाधनों से प्राप्त उत्पादनों के संचय करने व बिक्री करने का एकाधिकार प्राप्त कर लेती है और सामलाती क्षेत्र के ह्रास की प्रक्रिया को जन्म देकर पुष्ट करती है। अनेक मामलों में गाँव वालों के विरोध लंबी अवधि की मुकद्दमेबाजी में ही समाप्त हो जाते हैं।

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि सामलात देह के सम्बन्ध में सरकारी नीतियाँ घोषित होने से, इस क्षेत्र की व्यवस्था के सम्बन्ध में पारम्परिक प्रणालियाँ अब बिल्कुल समाप्त हो चुकी हैं; यथा- उपयोग, संरक्षण और विकास के नियम और लोगों के कर्तव्य आदि। ग्राम पंचायत व्यवस्था के गलत रूप में लागू होने से गाँव के बड़े-बूढ़ों का पारम्परिक नेतृत्व समाप्त हो गया और उसके स्थान पर विभिन्न क्षेत्रों में सामन्ती जमींदारों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। ग्राम पंचायतों के पास कानूनी शक्तियाँ होते हुए भी, ये सामलाती क्षेत्र के विषय में कोई भी अधिनियम लागू करने में असमर्थ ही रहीं और सामुदायिक वोटों पर निर्भर रहने के कारण, उन्हें सामलाती भूमियों का अधिक उपयोग करने वालों तथा उन पर अनधिकृत कब्जा जमाने वाले प्रभावकारी लोगों के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करने पर मजबूर होना पड़ा। परिणामस्वरूप ये संस्थाएँ प्रभावहीन हो गईं, लेकिन सामलात देह के नाम पर सरकार से प्राप्त होने वाले किसी भी अनुदान को ये हाथ से नहीं निकलने देतीं। इसके अतिरिक्त सामलात देह के उपयोग और रख-रखाव से जुड़े विभिन्न पारंपरिक रीति-रिवाजों और सामाजिक नियमों का स्थान अब कानूनी और प्रशासनिक कार्यवाहियों ने ले लिया है। जिससे अब लोगों की स्वयं पहल करके काम करने की प्रवृत्ति सीमित हो गई है। सामलात देह के लिए स्थानीय साधनों का जो स्वयं संगठन किया जाता था, उसके बदले अब सरकारी अनुदानों और राहतों पर निर्भरता को और अधिक प्रोत्साहन मिलने से इस क्षेत्र का ह्रास हो रहा है।

(2) विकासीय कार्यक्रम :

ऊपर बतायी गई सरकारी नीतियों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों के लिए व्यापक विकास कार्यों के बहुत से घटक (भाग) भी अपने नकारात्मक प्रभावों द्वारा सामलात देह के ह्रास में अपनी भूमिका स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं। इसके लिए कुछ उदाहरणों पर दृष्टि

डाल सकते हैं। सरकार द्वारा सस्ते एवं रियायती दामों पर ट्रैक्टर देने की जो प्रक्रिया है उसके कारण सामलाती जमीनें तेज गति से फसलें उगाने वाली भूमियों में बदल गई हैं। इस विकासीय प्रक्रिया से ग्रामीण क्षेत्रों का मुद्रीकरण और व्यापारीकरण तेजी से बढ़ा है और सामलात देह के प्रति लोगों का रवैया बदल गया है। फलस्वरूप इस क्षेत्र पर बुरा प्रभाव पड़ने से इसके ह्रास को तेजी मिली है। इसी प्रकार समाज-वानिकी व अन्य विकास कार्यों का प्रतिकूल प्रभाव भी सामलात देह पर नजर आता है।

(3) सार्वजनिक नीतियाँ :

सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न नीतियों का भी सामलात देह पर ऋणात्मक प्रभाव ही पड़ा है। इन नीतियों से अमीर व प्रभावी लोगों को ही लाभ हुआ है और ग्रामीण गरीब समुदायों को तो इन नीतियों ने सामलात देह से दूर ही किया है। एक ओर तो इन नीतियों से सामलाती क्षेत्र को भारी नुकसान उठाना पड़ा है, वहीं दूसरी ओर गरीब लोगों की, इस क्षेत्र तक पहुँच को कठिन बनाया है।

(4) शिक्षा :

आज की हमारी शिक्षा प्रणाली कुछ इस प्रकार की है कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद यदि सरकारी नौकरी लग गई तो ठीक है, नहीं तो आदमी किसी भी काम का नहीं रहता, क्योंकि न तो उसमें व्यावसायिक शिक्षा का समावेश है और न ही प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, विकास और उपयोग की बातें। आज का नवयुवक अपने चारों तरफ के पर्यावरण से, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद भी अनभिज्ञ ही रहता है। आज की शिक्षा प्रणाली अंग्रेजों द्वारा भारत को गुलाम रखने की साजिश के तहत तैयार की गई प्रणाली है। जिसे हमारे नेताओं और नीति-निर्माताओं ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। फलस्वरूप आज का शिक्षित नवयुवक उस धोबी के कुत्ते की तरह है, जो "घर का रहा न घाट का"। इसके विपरीत पहले, व्यक्ति गुरु के आश्रम में शिक्षा के दौरान प्रकृति के बहुत नजदीक रहता था। शिक्षा से उसका चारित्रिक, सामाजिक, व्यावसायिक और नैतिक विकास होता था। वह अच्छी प्रकार समझता था कि सामलात देह के बिना मानव अस्तित्व को कितना बड़ा खतरा हो सकता है।

(5) समुदायों का बिखराव (संगठनों का अभाव) :

आज की नई आर्थिक, औद्योगिक एवं खासकर सरकारी नीतियों तथा बाजार व्यवस्था के कारण एक आदमी का दूसरे से कोई लेना-देना नहीं रहा है। "अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग" वाली कहावत आज के युग में चरितार्थ हो रही है। सामलाती क्षेत्र के संरक्षण और विकास के बारे में बातचीत करने की न तो व्यस्त और स्वार्थी बना दिये गये लोगों के पास फुर्सत है और न ही सोच। इस क्षेत्र के अधिकतम उपभोग और शोषण की तथा इस पर कब्जा करने की योजना बनाने के लिए तो लोगों के पास समय ही समय है। वोटों की राजनीति और निजीकरण की प्रक्रिया ने तो "सोने पे सुहागे" का काम किया है। लोगों के अपने स्वार्थ आपस में टकराते रहते हैं। गुटबन्दी तो लोगों की नस-नस में व्याप्त हो गयी है। परिणामस्वरूप व्यक्ति सामाजिक प्राणी होते हुए भी समाज और संगठन की आवश्यकता महसूस नहीं करता। इस प्रकार सामलात देह का ह्रास जारी है।

(6) सरकारी हस्तक्षेप :

सामलात देह की उपयोगिता और रख-रखाव की जिम्मेदारी पहले लोगों के अपने हाथों में थी। जिस कारण लोगों को इस क्षेत्र के प्रति विशेष लगाव और प्रेम था तथा लोग तन, मन व धन से सामलात देह के संरक्षण और विकास से जुड़े रहते थे। उनकी अपनी प्रबन्ध व्यवस्था थी और अपनी इच्छा से सामलाती व्यवस्था में परिवर्तन कर सकते थे, लेकिन वर्तमान में करीब-करीब सभी सामलाती क्षेत्रों को सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है, जिससे लोगों की सामलात देह के प्रति भावनाएँ बदल गई हैं।

अब लोग सोचने लगे हैं कि यह सम्पत्ति अपनी नहीं सरकार की है। अगर इसका विनाश हो जायेगा तो अपना क्या जायेगा, जो भी हानि होगी, सरकार की होगी। अत: लोगों की मानसिकता में आये इस बदलाव से सामलात देह का ह्रास तीव्र गति से हुआ है और निरन्तर हो रहा है।

(7) प्रौद्योगिकी परिवर्तन (औद्योगिकीकरण) :

आज के औद्योगिकीकरण के कारण जिसके पास उद्योग या कोई फैक्ट्री है, वह तो दिनों-दिन समृद्ध और अमीर होता जा रहा है तथा बेचारा मजदूर (गरीब) प्रतिदिन अधिक गरीब होता जा रहा है। गरीबों को गरीबी की रेखा से नीचे जीने को मजबूर होना पड़ रहा है। उनकी समृद्धता और विकास के रास्तों पर अमीर व समृद्ध लोगों ने पूर्ण रूप से कब्जा कर लिया है। दुनिया के समृद्ध लोगों के लिए, गरीबों की सामलात देहों पर सरकार द्वारा जगह-जगह अभयारण्य बना दिये गये हैं। वनों और जंगलों को आरक्षित और संरक्षित घोषित कर दिया गया है या फिर अन्य सामलाती भूमियों पर नये उद्योग खड़े कर दिये हैं और लगाये जा रहे हैं जिससे सामलात देह के ह्रास की प्रक्रिया निरंतर जारी है।

(8) जनसंख्या वृद्धि :

पिछले कुछ दशकों से हमारे देश की जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। फलस्वरूप गाँव, कस्बों एवं शहरों में आबादी की सघनता और परिवारों की संख्या बेतहाशा बढ़ी है, जिससे लोगों को प्रत्येक वस्तु की कमी महसूस हुई है और अतिदोहन का परिणाम सामलात देह के ह्रास के रूप में सामने आया है।

(9) पर्यावरणीय दबाव :

पर्यावरणीय तत्त्वों में सूखा, बाढ़, महामारी व अनेक आपदाएँ आती हैं, जिनका परिणाम सामलात देह के ह्रास को और सघन बना देता है। सामलात देह के अन्तर्गत रखी जाने वाली कम उपजाऊ, बजरी वाली, बालूई, ऊँची-नीची, लवण वाली और जलाक्रांत भूमियाँ पर्यावरणीय तत्त्वों से सीधे और पहले प्रभावित होती हैं। पर्यावरण में आये भयंकर बदलाव के प्रभाव सीधे सामलात देह को ह्रास की दिशा में ले जाते हैं।

(10) बाजार सम्बन्धी तत्त्व :

इनमें नगदी फसलों का औसत और कृषि उत्पादनों को बाजार में पहुँचाने से सम्बन्धित संचार व्यवस्था की सुविधाएँ आदि शामिल हैं। इनका सीधा प्रभाव सामलात देह पर पड़ता है। परीक्षणों और विश्लेषणों से यह बात सामने आती है कि बाजार से जुड़े हुए सभी तत्त्व प्राय: सामलाती क्षेत्र के ह्रास की प्रक्रिया में ही योगदान देते हैं।

(11) लोगों में सामलात देह से अनभिज्ञता :

इसे औद्योगिकीकरण का प्रभाव कहें या बाजार व्यवस्था का, आधुनिक शिक्षा प्रणाली की कमजोरी कहें या जनसंख्या वृद्धि को इसका दोषी मानें, मगर यह सत्य है कि आज के युग में अधिकांश लोगों को यह भी पता नहीं है कि हमारे गाँव या देश के सामलात देह कौन-कौन से हैं तथा उनके उपयोग क्या-क्या हैं। लोगों की न तो इस ओर रुचि ही है और न ही ऐसे संगठन, संस्थाएँ या व्यक्ति ही हैं जो लोगों को यह सब कुछ समझा और बता सकें। इस कारण भी सामलात देह का ह्रास हुआ है।

(12) सांस्कृतिक परिवर्तन :

आधुनिक शिक्षा प्रणाली और पाश्चात्य जीवन-शैली के प्रभाव के कारण धीरे-धीरे हमारी संस्कृति में भी परिवर्तन आ गया है। जैसे-पहले पेड़ों, पृथ्वी और पहाड़ों की देवता समझकर पूजा की जाती थी, मगर आज के वैज्ञानिक और आधुनिक कहे जाने वाले युग में यदि कोई ऐसा करे तो लोग उस पर हँसेंगे। राजस्थान और भारत के दूसरे हिस्सों में पहले "धराड़ी प्रथा" प्रचलित थी जिसके अन्तर्गत पेड़ों को देवता का निवास समझ कर पूजन किया जाता था। मगर आज ये सब बातें भूतकाल की होकर रह गई हैं। फलस्वरूप सामलात देह का तेजी से विनाश हुआ है।

(13) नैतिक पतन :

जो सम्पत्ति पहले गाँव की होती थी और जिसे सामुदायिक और सार्वजनिक सम्पत्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता था, आज गाँव की उस सामलात देह का सरकारी भ्रष्ट अधिकारियों और समाज के प्रभावशाली व्यक्तियों के नैतिक पतन के कारण, गिने-चुने लोगों द्वारा भ्रष्ट तरीकों से दोहन किया जा रहा है। परिणामस्वरूप सामलात देह का विनाश हुआ है।

★★★

सामलात देह की परंपरागत एवं वर्तमान स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

सामलात देह के संरक्षण और विकास की प्रक्रिया तो मानव सभ्यता के उद्‌भव के साथ-साथ ही शुरू हो गई थी। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही प्राकृतिक सामलात देह के विकास की प्रक्रिया भी जुड़ी हुई है। परन्तु दुर्भाग्यवश, इन संसाधनों पर लोगों के पूरी तरह से निर्भर होने के बावजूद भी विगत में इनका कोई लिखित रिकॉर्ड नहीं रखा गया। शायद इस प्रकार के लिखित रिकॉर्ड की कभी कोई आवश्यकता भी नहीं समझी गई। प्राचीन काल में सामलाती संसाधनों की इतनी प्रचुरता थी कि लोगों को कभी उसकी कीमत का सही अन्दाजा ही नहीं हुआ। इन संसाधनों की प्रचुरता के कारण, ये सब संसाधन लोगों के लिए सामान्य सी बात थी और सामान्य सी या बिना किसी खास महत्त्व वाली चीज या संसाधनों का लिखित रिकॉर्ड बनाना, लोग उचित नहीं समझते। सरकारी तंत्र के पास भी उचित और पर्याप्त रिकॉर्ड नहीं है। इसलिए इस प्रकार के संसाधनों का ब्योरेवार इतिहास जुटाना बहुत मुश्किल है। काफी प्रयासों के बावजूद भी हमें, एक भी पुस्तक ऐसी नहीं मिली, जिससे सामुदायिक संसाधनों का ब्योरेवार इतिहास मिलता हो। ऐसे प्रमाण बहुत मिलते हैं कि सामलाती संसाधनों की प्राचीन समय में बहुत अधिकता थी।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि इन संसाधनों के ह्रास की प्रक्रिया अंग्रेजों के आगमन के साथ ही शुरू हुई। अंग्रेजों ने अनेक साजिशों तथा कूटनीति का सहारा लेकर यहाँ के सामलाती संसाधनों विशेषकर जल, जंगल एवं जमीन पर सरकारी नियंत्रण लागू किया। अंग्रेजों के जाने के बाद यहाँ की लोकतांत्रिक सरकार ने इन संसाधनों के ह्रास की प्रक्रिया को और भी अधिक गति प्रदान की। सार्वजनिक संसाधनों के ह्रास का मुख्य कारण सरकारी नीतियाँ ही कही जा सकती हैं। हालांकि अनेक अन्य कारण भी इसमें भागीदार हैं। वर्तमान समय में सामलाती संसाधनों का ह्रास इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि अगर कुछ किया नहीं गया तो आने वाले कुछ ही वर्षों में ये बिल्कुल समाप्त हो जायेंगे। नीचे एक तालिका के रूप में इन संसाधनों की परंपरागत और वर्तमान स्थिति का आकलन किया गया है।

तालिका-1

क्र.सं.	सामलात देह की परंपरागत स्थिति	सामलात देह की वर्तमान स्थिति
क.	**प्राकृतिक सामलात देह**	
1.	**वन :** देवओरण्य, रखतबनी, देवबनी, काँकड़बनी आदि प्राचीन समय में पूर्ण रूप से विकसित थीं। इनमें घने जंगल थे। ग्रामीण इन्हें अपने वन समझकर इनकी रक्षा करते थे।	आज इन क्षेत्रों की स्थिति बहुत दयनीय है। जंगल बहुत विरल हो गये हैं। देवबनी आदि में इक्का-दुक्का पेड़ ही दिखाई पड़ते हैं तथा इन क्षेत्रों की भूमियों पर अतिक्रमण तेजी से हो रहा है। लोग इनके प्रति वफादारी को भूल चुके हैं।
2.	**रूँध, बीड़ व वाल :** आजादी के पहले तक ये क्षेत्र भी पूर्ण विकसित थे। यहाँ पेड़ों और घासों की बहुत अधिकता थी।	पूर्वोक्त वन क्षेत्रों की तरह ये भी विनाश के कगार पर हैं।
3.	**गोचर :** पहले प्रत्येक गाँव में प्रचुर मात्रा में गोचर होती थी। इसमें लोगों की आवश्यकता से भी अधिक चारे का उत्पादन होता था।	इनका क्षेत्रफल बहुत कम रह गया है। इन भूमियों पर प्रतिदिन अतिक्रमण बढ़ रहा है। इन भूमियों से लोगों की आवश्यकता का 35 प्रतिशत चारा भी मुश्किल से उपलब्ध होता है।
4.	**गोरा :** गायों व अन्य पशुधन के विश्राम का यह स्थान पहले प्रत्येक गाँव में होता था।	वर्तमान में यह कुछ गाँवों को छोड़कर पूरी तरह समाप्त हो गया है।
5.	**खलियान :** यह भी प्रत्येक गाँव में होता था, जहाँ ग्रामीण अपनी पकी हुई फसलों को एकत्र करते तथा फसलों से अनाज अलग करते थे।	आज सामलाती खलियान पूर्णरूपेण समाप्त हो चुके हैं। किसान अपनी निजी भूमि में ही निजी खलियान बनाते हैं।
6.	**नदी-नाले व उनके किनारे :** पहले ये अपनी पूरी चौड़ाई में बहते थे। इनके किनारों की जमीन काफी अधिक होती थी। जिसे लोग सामलाती तरीकों से प्रयोग में लाते थे।	आज इनकी चौड़ाई सिमटती जा रही है। इनके किनारों पर अतिक्रमण तेजी से हो रहे हैं।
7.	**झील और कुण्ड :** प्राकृतिक झील व कुण्डों की संख्या काफी थी। इनमें पानी प्रचुर मात्रा में रहता था।	इनकी संख्या में तो विशेष कमी नहीं आई, मगर इनके जल का अवैध रूप से प्रयोग होने के कारण इनमें जल की मात्रा में कमी हो गई है।

ख.	सामाजिक सामलात देह	
1.	**बाँध और जोहड़:** इनकी संख्या काफी थी तथा इनका उपयोग और रख-रखाव पूरी तरह सामलाती था। लोग अपनी जिम्मेदारियों को पूरी तरह समझते और निभाते थे।	इन पर अतिक्रमण तेजी से बढ़ रहा है। लोग अपनी सामलाती जिम्मेदारियों को भूल चुके हैं। गाद व मिट्टी भरने के कारण ये प्रयोग लायक नहीं रहे हैं। अधिकतर बाँध व जोहड़ विनाश के कगार पर हैं।
2.	**कुएं :** इनकी संख्या प्रचुर थी, सामलाती कुओं के प्रति लोग अपनी जिम्मेदारियों का पूर्ण रूप से निर्वाह करते थे।	इनके प्रति जिम्मेदारियाँ न निभाने के कारण अधिकतर सामलाती कुएं प्रयोग लायक नहीं रहे हैं।
3.	**बावड़ी :** इनकी संख्या अधिक तो नहीं फिर भी ठीक थी। लोग इनके रख-रखाव व सफाई की अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाते थे।	आज इनके रख-रखाव व सफाई की कमी के कारण तथा प्रचलन में न रहने के कारण भी ये उपयोग में नहीं लाई जातीं।
4.	**हैंड पम्प :** यह पहले नहीं होते थे। मगर आज प्रत्येक गाँव में सरकार द्वारा लगाये जा रहे हैं। यह नई सामलात देह है।	इनके रखरखाव के प्रति लोग अपनी जिम्मेदारियों का पालन नहीं करते। अत: ये अक्सर खराब हालत में ही रहते हैं।
5.	**विद्यालय :** प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति अलग तरह की थी। पहले अधिकतर गुरुकुल होते थे, जिनके प्रति लोग अपने दायित्वों का पूरी तरह पालन करते थे।	शिक्षा के लिए नई सामलात देह स्कूल हैं। मगर लोग इनके प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं करते।
6.	**खेलने का मैदान :** पहले लगभग प्रत्येक गाँव में क्रीड़ा स्थल होते थे जिनके रख-रखाव की पूरी जिम्मेदारी लोगों की होती थी।	अधिकतर क्रीड़ा स्थलों पर अतिक्रमण हो गये हैं। साधारणत: इनका कोई उपयोग नहीं रहा।
7.	**थाँई :** यह सार्वजनिक स्थान, प्राचीन समय में न्याय का प्रतीक था। यहाँ पर आपसी विवादों का सर्वसम्मति से निपटारा किया जाता था। इनके रख-रखाव का दायित्व भी लोगों पर था। ये प्रत्येक गाँव में होते थे।	इनके रख-रखाव की कमी के कारण इन स्थलों का विनाश हो रहा है।
8.	**तिबारी या चौपाल :** ये सार्वजनिक स्थान (मकान) संयुक्त रूप से सभा करने या अन्य ऐसे ही उपयोगों में लाये जाते थे। प्रत्येक गाँव में एक या दो तिबारी अवश्य सामलाती होती थी।	आज भोगवादी संस्कृति ने इन्हें विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है।
9.	**रास्ते :** पहले रास्ते खूब चौड़े होते थे।	इन पर अतिक्रमण दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है और ये संकरे होते जा रहे हैं।
10.	श्मशान प्रत्येक गाँव में होते थे।	आज भी मौजूद हैं। कहीं-कहीं पर अतिक्रमण से इनका क्षेत्रफल घट रहा है।
	ग. धार्मिक सामलात देह	
	1. मन्दिर: इनकी संख्या बहुत थी। मन्दिरों के नाम काफी भूमि और जंगल होते थे।	उचित रख-रखाव नहीं है, मन्दिरों की सम्पत्ति पर अतिक्रमण बढ़ता जा रहा है।
	2. धर्मशाला : ये भी काफी थी। इनके पास अन्य सम्पत्ति भी होती थी।	इनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। हां, रख-रखाव बहुधा ठीक नहीं रहता।

इस अध्याय में प्रस्तुत की गई तालिका का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान में सामलात देह का बहुत अधिक ह्रास हुआ और हो रहा है। ह्रास के विभिन्न कारणों पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। अगर यह कहें कि सामलात देह की परम्परागत और वर्तमान स्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। फिर भी जहाँ-तहाँ कुछ अपवाद भी मिलते हैं जैसे-

(i) छोटे और अलग-थलग पड़े गाँवों में, जहाँ परम्परागत नियमों को अब भी श्रद्धापूर्वक माना जाता है, वहाँ सामलात देह का विनाश कम हुआ है।

(ii) जो ग्रामीण क्षेत्र बाजारों से अधिक दूरी पर स्थित हैं, वहाँ पर परम्परागत मूल्यों का नाश करने में बाजार की शक्तियाँ प्रभावहीन रही हैं। अत: सामलात देह का संरक्षण अधिक रहा है।

(iii) ऐसे गाँवों में, जहाँ पर सामलात देह का विस्तार पहले से ही कम है तथा लोगों को अपने सार्वजनिक संसाधनों का ज्ञान है, वहाँ पर भी सामलात देह का संरक्षण भली प्रकार हुआ है।

(iv) जिन गाँवों में गुटबन्दी (दल-बन्दी) कम रही है, वहाँ भी इसका संरक्षण ठीक प्रकार से हुआ है।

सामलात देह का सर्वेक्षण : आँकड़े बनाना, समझना तथा प्रदर्शित करना

ामलात देह के सर्वेक्षण का तरीका :

सार्वजनिक संसाधनों की पहिचान, गणना, संरक्षण, संवर्धन और उपयोग आदि सभी क्रियाओं के लिए इन संसाधनों का सर्वेक्षण करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि सर्वेक्षण के अभाव में न तो हम सामलात देह (जल, जंगल और जमीन) की पहिचान कर सकते हैं और न ही उनके विकास का कोई कार्यक्रम ही बना सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में सामलात देह को बचाने की बात सोचना तो मूर्खता ही हो सकती है। अत: सामलात देह को बचाने के कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रथम कदम है, सामलात देह का सर्वेक्षण। प्रश्न उठता है कि सर्वेक्षण का तरीका क्या हो? सर्वेक्षण में कौन-कौन सी क्रियाएँ आती हैं और क्या-क्या करना होता है?

किसी भी बारे में सर्वेक्षण करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह होती है कि हमें मौके पर जाकर, सब कुछ अपनी आंखों से देख और समझकर तथा लोगों से वार्तालाप करके एक लिखित रिकॉर्ड तैयार करना होता है। सामलात देह के विषय में हमें गाँवों में जाना होगा। वहाँ सभी सामलाती क्षेत्रों के मुख्य बिन्दुओं पर जाकर अपनी आँखों से उन्हें देखना, परखना और समझना होगा। लोगों से बातचीत के माध्यम से इन संसाधनों के सम्बन्ध में पूर्व एवं वर्तमान की सभी जानकारियाँ हासिल करनी होंगी। अगर ग्राम सभा के किसी प्रतिष्ठित या इस क्षेत्र में रुचि रखने वाले व्यक्ति के पास लिखित में कुछ जानकारियाँ हैं तो उन्हें देखना, समझना और एकत्र करना होगा। इसमें यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि जो हम आँखों से देखेंगे वह तो इन संसाधनों का वर्तमान रूप होगा मगर उससे पहले के रूप, प्रबन्ध व्यवस्था, उपयोग आदि अनेक पहलुओं पर जानकारी प्राप्त करने के लिए लोगों से मौखिक वार्तालाप करना होगा। अत: मौखिक वार्तालाप को कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानना चाहिए। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये सभी कार्य हम तब सम्पन्न कर सकते हैं, जब हम अच्छे और प्रशिक्षित कार्यकर्ता हों, क्योंकि इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि केवल अच्छे कार्यकर्ता के गुणों वाला व्यक्ति ही इस सर्वेक्षण के कार्य को भली-भाँति पूर्ण कर सकता है। एक अच्छे कार्यकर्ता के गुण-धर्म, पहिचान और कार्यों के सम्बन्ध में अलग से बात न करके यहाँ केवल सर्वेक्षण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखेंगे। अत: सर्वेक्षण के लिए निम्न प्रकार कार्य करना होगा :

(1) सर्वेक्षण के लिए पूरी तैयारी।

(2) गाँव में जाकर, एक अच्छे कार्यकर्ता की तरह लोगों से मेल-जोल व व्यवहार करके उनका विश्वास प्राप्त करना।

(3) सामलात देह से सम्बन्धित क्षेत्रों, वस्तुओं, स्थानों आदि को अपनी आँखों से देखना, परखना और समझना।

(4) लोगों के साथ इन संसाधनों के भूतकाल के स्वरूप, परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था, उपयोग व संरक्षण के बारे में जानकारी प्राप्त करना तथा लोगों के सम्बन्ध में विचार व सुझावों को जानना अर्थात् मौखिक वार्तालाप करना।

(5) अगर किसी व्यक्ति या संगठन के पास इन संसाधनों से सम्बन्धित लिखित रिकॉर्ड हों तो उन्हें अच्छी प्रकार देखना और समझना।

(6) जहाँ आवश्यकता हो, वर्तमान स्थिति की स्वयं भी वैज्ञानिक विधियों से नाप-तौल करना।

(7) उपर्युक्त तरीकों से प्राप्त जानकारी को लिखित रूप देना।

ऊपर बतलाये गये तरीकों से प्राप्त जानकारियों एवं सूचनाओं को, हमें इस प्रकार से व्यवस्थित ढंग से एकत्र व प्रदर्शित करना होता है कि वे लम्बे समय तक हमारे लिए उपयोगी रह सकें। साथ ही साथ जब हमें आवश्यकता हो, तब अपने द्वारा तैयार किये गये लिखित रिकॉर्डों द्वारा कम से कम समय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें, ताकि हमारे कार्यक्रम सुचारु रूप से गति प्राप्त कर सकें। समय के साथ बदलते हुए सामलात देह के स्वरूप की जानकारी और सूचनाएँ आसानी से अपने द्वारा तैयार लिखित प्रपत्रों में जोड़ सकें। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम गाँव से प्राप्त जानकारी को निम्न तरह से लिखित रूप में व्यवस्थित कर सकते हैं :

1. मानचित्रों द्वारा जानकारी को दर्शाना :

वैसे तो मानचित्र (नक्शे) कितनी ही तरह के होते हैं, लेकिन सम्बन्धित विषय के उपयोग के अनुसार उन्हें दो प्रकार का रूप दिया जा सकता है।

(i) सामाजिक मानचित्र : सामाजिक नक्शों में नीचे बतलायी गई जानकारियों को विभिन्न चिह्नों या रंगों द्वारा आसानी से दर्शाया जा सकता है। यथा-

(क) बस्ती या गाँव की स्थिति और सीमाएँ

(ख) जनसंख्या घनत्व

(ग) विभिन्न जातियों या धर्मों के परिवार या व्यक्ति

(घ) भूमिहीन और भूमिधर परिवार या व्यक्ति

(ड़) पशुपालन करने वाले तथा पशुपालन न करने वाले परिवार या व्यक्ति
(च) शिक्षित और अशिक्षित लोग
(छ) किसी खास उम्र के बच्चों वाले परिवार
(ज) कच्चे और पक्के मकान
(झ) अपने कार्यक्रम के अनुसार अन्य जानकारियाँ

(ii) गाँव के सामलाती संसाधन: गाँव से एकत्र की गई विभिन्न संसाधनों सम्बन्धी और सामान्य जानकारी दर्शाई जाती है। यथा–

(क) वन या जंगल	(ख) गोचर	(ग) काँकड़बनी
(घ) देवबनी	(ङ) रखतबनी	(च) बीड़
(छ) देवआरण्य	(ज) वाल	(झ) रूँध
(ञ) पहाड़	(ट) नदी	(ठ) नाले
(ड) जोहड़	(ढ) बस्ती	(ण) कृषि भूमि
(त) बंजड़	(थ) सिंचित भूमि	(द) असिंचित भूमि
(ध) कुएँ	(न) स्कूल	(प) श्मशान
(फ) पम्प सैट	(ब) ग्राम सभा	(भ) थाँईं
(म) गौरा	(य) खलियान	(र) सिवाय चक
(ल) मन्दिर	(व) धर्मशाला	(श) अन्य जानकारी

2. ट्रांसएक्ट :

ट्रांसएक्ट एक खास तरह की तालिका है, जिसमें उस गाँव या क्षेत्र में उपस्थित या उपलब्ध प्राकृतिक अथवा सामाजिक संसाधनों एवं परिस्थितियों को उनकी स्थिति की तुलनात्मक भूतल–ऊँचाई के सन्दर्भ में दिखाया जाता है, क्योंकि जल सदा ऊँचे स्थानों से नीचे की ओर बहता है। अत: वर्षा, बाढ़, जल–उपलब्धता आदि के अध्ययन में ऐसी तालिका बहुत उपयोगी होती है। इसके लिए नीचे बताई गई जानकारियों का ठीक उसी क्रम में समावेश किया जाता है, जिस क्रम में वे ऊँचाई के स्तर पर गाँव में होती हैं। ट्रांसएक्ट बनाते समय किसी भी गाँव में सर्वाधिक ऊँचाई के बिन्दु से नीचे के बिन्दु की ओर चलते हैं, ताकि हमारी दृष्टि सम्पूर्ण गाँव की विविधता पर पड़ती रहे और गाँव की जमीनों के विविध उपयोगों का भी पता चलता रहे। यह तालिका हमेशा गाँव में जाकर ही बनाई जाती है या जिस क्षेत्र का ट्रांसएक्ट बनाना हो, वहीं पर जाकर इस तालिका को बनाया जाता है। सही ट्रांसएक्ट बनाने के लिए सम्पूर्ण गाँव में 4 या 5 सीधी कल्पित लाइनें (रेखाएँ) पूर्व–पश्चिम या उत्तर–दक्षिण, परिस्थिति व सहूलियत के अनुसार खासकर ऊँचाई से निचाई की तरफ खींच ली जाती हैं। फिर इन सीधी रेखाओं पर चलते हुए रास्ते में आने वाली सभी जानकारियों को क्रमानुसार लिखते जाते हैं। इस प्रकार सभी रेखाओं पर चल कर एकत्र की जाने वाली सभी जानकारियों को लिखित रूप में संग्रह करते हैं। अन्त में पांचों या सभी रेखाओं पर चलकर प्राप्त होने वाली जानकारियों को औसत के आधार पर एक रेखा पर चलकर प्राप्त होने वाली जानकारी का रूप दे देते हैं। इस तालिका में अपनी आवश्यकता व कार्यक्रम के अनुसार जानकारियाँ प्राप्त करके प्रदर्शित करते हैं। मुख्य रूप से निम्न जानकारियाँ ट्रांसएक्ट में प्रदर्शित करना उपयोगी होता है :

(क) भूमि ढलान, पहाड़, राड़ा, समतल आदि।
(ख) जमीन के विभिन्न उपयोग (जंगल, चरागाह, कृषि भूमि) आदि।
(ग) मिट्टी की विभिन्न किस्में।
(घ) वनस्पतियों के विभिन्न प्रकार (पौधे, झाड़ियाँ, पेड़) आदि।
(ड़) जंगली जानवर व पालतू पशु ।
(च) खेती या फसलों की विभिन्न किस्में (चना, सरसों, ज्वार) आदि।
(छ) कानूनी हक या मालिकाना।
(ज) विभिन्न जल स्रोत (कुएं, नदी, नाले, जोहड़ आदि)।
(झ) विभिन्न समस्याएँ, सम्भावनाएँ और समाधान।

3. अन्य लिखित प्रपत्र एवं तालिकाएँ :

आवश्यकता और सहूलियत के अनुसार अन्य प्रकार से भी जानकारियों को लिखित रूप दिया जा सकता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है कि जानकारियों को हमेशा ऐसे रूप में रखना चाहिए, जिससे आवश्यकता पड़ने पर कम से कम समय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके तथा जानकारी एकत्र करने वाले व उसे लिखित रूप देने वाले की अनुपस्थिति में भी अन्य कोई भी व्यक्ति या कार्यकर्ता उससे समग्र जानकारी समुचित रूप में ग्रहण कर सके। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है कि सामलात देह के संवर्धन के लिए जितना महत्त्वपूर्ण जानकारियों और सूचनाओं को एकत्र करना है, उतना ही महत्त्वपूर्ण उन सूचनाओं को ठीक से लिखित रूप देना एवं सुरक्षित रखना भी है।

सामलात देह को आँकड़ों में समझना व बदलना :

किसी भी समस्या को पूर्ण रूप से समझने के लिए उस समस्या को आँकड़ों के रूप में समझना नितान्त आवश्यक है। आँकड़ों का अभिप्राय समस्या के उस रूप से लिया जाता है, जिसमें उसके परिमाण की मात्राओं द्वारा तुलना की जा सके और गणित के माध्यम से समस्या को समझा, परखा एवं जाँचा जा सके। किसी भी समस्या को गणितीय रूप में समझने के लिए समस्या के परिणाम और परिमाण को अंकों (संख्या) के दृष्टिकोण से देखते व समझते

हैं। यहाँ पर बात सामलात देह की हो रही है, अत: सामलात देह को अंकों या संख्याओं के रूप में बदलकर गणित लगाना ही आँकड़ों के रूप में समझना कहलायेगा। सामलात देह के किसी भी क्षेत्र, जैसे- जल, जंगल या जमीन को संख्या या अंकों में परिवर्तित करके जब गणित लगाते हैं, तब ही हमें सामलात देह के तुलनात्मक स्वरूप की सही जानकारी मिलती है और तब ही हम इस क्षेत्र के पूर्व (भूतकाल) समय के स्वरूप, वर्तमान स्थिति और भविष्य के रूप की सही सूचनाएँ, मात्रा, प्रकार, उपयोग, संरक्षण और विकास आदि के बारे में निश्चित रूप से कह पाने की स्थिति में होते हैं। उदाहरण के लिए, हमें किसी सामलाती जंगल या चरागाह का निरीक्षण और विश्लेषण करना हो तो अंकों का सहारा लिये बिना हम उसकी वास्तविक स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं कह सकते। अगर कहेंगे भी तो वह दूसरों के लिए भैंस के आगे बीन बजाने के समान होगा, यथा-कहें कि उस गाँव का जंगल अमुक पहाड़ी से इस पहाड़ी तक है या पत्थर के उस स्तम्भ से रामभरोसे के मकान तक फैला हुआ है या फिर कहें कि इस गाँव का चरागाह नदी से लेकर मन्दिर तक और राड़ी से लेकर आबादी तक है। उपर्युक्त कथन से सिर्फ इतना ही आभास मिलता है कि जंगल है मगर कितना ? यदि अंकों या संख्याओं का सहारा लेते तो जंगल की मात्रा का परिमाण का ज्ञान हो जाता और पता चलता कि जंगल या चरागाह का कुल क्षेत्रफल इतने हैक्टेयर है। ऊपर लिये गये उदाहरण में अंकों के साथ-साथ दिशा बतलाना भी आवश्यक है और यह कहना कि इस गाँव का जंगल या चरागाह इतने हैक्टेयर या बीघे अमुक बिन्दु या आबादी से उत्तर-पश्चिम में है। तब ही जाकर सही-सही जानकारी मिलती है।

यदि हम सामलाती जंगल की बात करते हैं तो हमें जानकारी को आँकड़ों में रखना होगा, जैसे पेड़ों की कुल संख्या, विभिन्न पेड़ों की जातियों की अलग-अलग संख्या, उनके आधार पर वर्गीकरण, उनसे प्राप्त होने वाले विभिन्न उत्पाद, संरक्षण के लिए किये जाने वाले कार्यों की लागत व लाभ का पूरा लेखा-जोखा आदि को संख्याओं और अंकों में प्रस्तुत करना होगा। तभी जाकर संरक्षण, विकास और उपयोग की कार्ययोजना का निर्माण समुचित रूप से हो सकता है। इसी प्रकार किसी सामलाती चरागाह (गोचर) के संरक्षण, विकास और उपभोग के बारे में कार्यक्रम बनाने से पहले हमें सामलाती चरागाह से जुड़ी हुई सभी जानकारियों और सूचनाओं को आँकड़ों अर्थात् गणितीय रूप में समझना होता है। तभी गोचर सम्बन्धी कोई विकास योजना बनानी सम्भव है। गोचर के लिए हमें पता होना चाहिए कि गोचर का क्षेत्रफल बीघा, हैक्टेयर या अन्य किसी भी इकाई में कितना है? चरागाह में कौन-कौन सी वनस्पति कितने-कितने क्षेत्रफल में है? प्रत्येक वनस्पति का क्षेत्रफल के अनुपात में कितना उत्पादन है? गोचर में कितने और कौन-कौन सी प्रजातियों के पेड़ हैं तथा उनका सम्पूर्ण उत्पादन चारे-पत्ती के रूप में कितना है? गोचर में कितने पशु (गाय, भैंस, बकरी आदि) चरते हैं? नस्लवार प्रत्येक पशु की प्रतिदिन चारे की खपत कितनी है? प्रतिदिन चारे की कुल खपत कितनी है? प्रतिदिन गोचर से कितना उत्पादन मिल सकता है? गोचर के संरक्षण और विकास के लिए चरानबन्दी करने के वास्ते कितना क्षेत्रफल लिया जा सकता है? खाई खोदना, तार लगाना या कच्ची-पक्की बाड़ लगाना, घास और पेड़ लगाना, पानी देना आदि कार्यों पर कितनी लागत आयेगी तथा साथ ही साथ इन क्रियाओं से कितना लाभ मिलेगा? उसी के हिसाब से संरक्षण, विकास और उपयोग के सम्बन्ध में कार्यक्रम बनाया जा सकता है।

ऊपर लिए गये उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सामलात देह को आंकड़ों में परिवर्तित किये बगैर कोई भी कार्ययोजना न तो बन सकती है और न सफल हो सकती है। अगर उल्टा-सीधा करके बना भी दी जाये तो उस कार्यक्रम की सफलता की सम्भावना शून्य ही होगी।

सामलात देह से सम्बन्धित नये आँकड़े बनाना और गणना करना :

सामलात देह सम्बन्धित क्षेत्रों के लिए विकास योजनाएँ बनाने हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है। नये आँकड़े बनाने के लिए थोड़े से गणित के ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। ऐसा नहीं है कि इन आँकड़ों का निर्माण केवल गणित के विद्वान और पंडित लोग ही कर सकते हैं; गणित का साधारण-सा ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी इन आँकड़ों का निर्माण सफलतापूर्वक कर सकता है। बस आवश्यकता है थोड़ी-सी बुद्धि के उपयोग करने की और आँकड़ों के नव निर्माण की क्रियाविधि को समझने की। आँकड़ों में बदलने से तात्पर्य विभिन्न पहलुओं के परिमाण को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करने से है, एकदम से सही नाप-तौल या संख्याओं से नहीं। जब हम किसी भी सामलाती क्षेत्र (जल, जंगल और जमीन) की बात करते हैं तो सर्वप्रथम उसके सम्बन्ध में सभी उपलब्ध जानकारियाँ और सूचनाएँ एकत्र करनी होती हैं। तदुपरान्त उन्हीं के आधार पर नये आँकड़े बनाये जाते हैं। फिर उनका गणित लगाया जाता है और अन्त में उन आँकड़ों को अपनी कार्ययोजना में प्रयुक्त किया जाता है। आँकड़ों के नव निर्माण व गणना करने की बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ तीन उदाहरण दिये जा रहे हैं :

उदाहरण–1 : माना राजस्थान के सूखे से प्रभावित किसी क्षेत्र में जल की गम्भीर समस्या है और हम यह कार्यक्रम बना रहे हैं कि इस क्षेत्र में कोई सामलाती जल व्यवस्था की जाये। तब कार्य योजना बनाने से पूर्व हमें खुले दिमाग से यह सोचना होगा कि जल समस्या के समाधान के लिए कौन–कौन से सामलाती विकल्प हो सकते हैं, ताकि पीने व सिंचाई के लिए जल उपलब्ध हो सके। इन सब पर सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी दृष्टि से विचार करना होगा। यह देखना होगा कि हमारे द्वारा सोचे गये या लोगों द्वारा सुझाये गये सभी विकल्प सामाजिक दृष्टिकोण से उचित हैं या नहीं, आर्थिक पहलुओं से सम्भव है या नहीं और तकनीकी नजर से सफल हो सकेंगे या नहीं। तदुपरान्त प्रत्येक विकल्प पर लागत और लाभ को नजर में रखते हुए विचार करना होगा। अन्त में जो विकल्प सभी दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ हो, उसे ही अपनाया जाना चाहिए। यहाँ इस उदाहरण को एक तालिका द्वारा दिखाया गया है।

तालिका–2 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इसमें सुझाये गये कुछ विकल्प जैसे–बड़ा बाँध, नहर और ट्यूबवैल तो सामाजिक और आर्थिक नजरिये से उचित नहीं हैं। अन्य कुछ सिर्फ वर्षा के पानी को भूमिगत करने के लिए है, जैसे–मेंड़बन्दी। दूसरे कुछ केवल पीने के लिए जल उपलब्ध करा सकते हैं, जैसे– हैन्ड पम्प, कुण्ड या टाँका। केवल कुआं, जोहड़ और छोटे बाँध ही ऐसे विकल्प हैं, जो सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ हैं। अब इनको लाभ व लागत के दृष्टिकोण से देखने और जाँच करने की आवश्यकता है। जिस विकल्प में कम लागत और लाभ अधिक हो उसे ही अपनाना चाहिए। प्राप्त होने वाले लाभों को देखने और समझने के लिए यह देखना होगा कि इस विकल्प से हमें कितना पानी मिलेगा? कितने मनुष्यों और पशुओं के लिए औसतन कितने दिन तक पानी चलेगा? कितने क्षेत्रफल की सिंचाई हो सकेगी और जमीन की नमी पर भी कोई प्रभाव पड़ेगा या नहीं। भूमिगत जल स्तर पर क्या प्रभाव पड़ेगा? आदि–आदि? इसी प्रकार लागत पर विचार करते समय यह देखना होगा कि कितना श्रम, कितना समय, कितनी जमीन और रख–रखाव पर कितना खर्च आयेगा आदि? इन सभी बातों पर विचार करते समय, इन्हें आँकड़ों में बदलकर सम्पूर्ण लागत या लाभ को रुपयों में निकाल लेते हैं, जिसके आधार पर सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। यहाँ इस उदाहरण में जोहड़ और छोटे बाँध ही सर्वश्रेष्ठ विकल्प की श्रेणी में आते हैं।

तालिका–2 पीने व सिंचाई के लिए जल व्यवस्था के विभिन्न विकल्प व उनकी जाँच

क्र.सं.	विकल्प	सामाजिक दृष्टि	आर्थिक दृष्टि	तकनीकी दृष्टि	अन्य
1	बड़ा बाँध	–	–	–	.....
2	छोटा बाँध	+	+	+	×
3	कुआं	+	+	+	×
4	बावड़ी	+	+	–, +	× प्रचलन नहीं
5	हैंड पम्प	+	+	+	केवल पीने का पानी
6	ट्यूबवैल	–	–	–	.....
7	जोहड़	+	+	+	×
8	कुण्ड	+	+	+	केवल पीने का पानी
9	टाँका	+	+	+	पीने का पानी
10	पाइप लाइन	–	–	–	.....
11	नहर	–	–	–	.....
12	डाट लगाना	+	+	+	सिंचाई (वर्षा)
13	नाला रोकना	+	+	+	सिंचाई (वर्षा)
14	खपचियाँ लगाना	+	+	+	भूमिगत (वर्षा)
15	छोटी खाई खोदना	+	+	+	भूमिगत (वर्षा)
16	मेंड़बन्दी (कच्ची)	+	+	+	भूमिगत (वर्षा)
17	मेंड़बन्दी (पक्की)	+	+	+	भूमिगत (वर्षा)
18	वानस्पतिक मेंड़बन्दी	+	+	+	भूमिगत (वर्षा)

नोट: + = उचित है या सम्भव है, – = सम्भव नहीं है, × = सर्वश्रेष्ठ।

उदाहरण–2 : इस उदाहरण में गोचर के संरक्षण, लागत और लाभ पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है। गोचर या चरागाह के संरक्षण के विभिन्न उपाय निम्न हो सकते हैं :

(1) चारदीवारी करना, बाड़ लगाना, तार खींचना।
(2) नई घास लगाना।
(3) चारा–पत्ती के लिए पेड़ बचाना।
(4) घास की सुरक्षा करना (कुछ भाग पर चराई रोकना)।
(5) खेतों द्वारा चारा पैदा करना।
(6) चारा खरीदना।
(7) कुट्टी काटकर (चारे के छोटे–छोटे टुकड़े करके) पशुओं को खिलाना।
(8) खरपतवार निकालना।
(9) चारा एकत्र करना।

उक्त सभी विकल्पों में से जो विकल्प सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी दृष्टिकोण से उचित है, उन्हें अपनाया जा सकता है। मगर यह बात ध्यान देने की है कि इनमें से केवल वे ही विकल्प अपनाये जा सकते हैं, जिन पर लागत कम और लाभ अधिक हो। लाभ और लागत पर विचार निम्न बिन्दुओं के तहत किया जा सकता है :

लाभ	लागत
1. घास में वृद्धि	1. समय और श्रम
2. भूमि में नमी वृद्धि	2. रख–रखाव पर खर्च
3. नये पौधों में वृद्धि	3. घास खरीदने आदि पर अतिरिक्त खर्च
4. पुराने पेड़ों में बढ़ाव	4. औषधीय वनस्पति में कमी
5. नये पेड़ों की बढ़ोतरी	5. खरपतवार के लिए समय और श्रम
6. स्वच्छ वायु की उपलब्धता	6. जल अधिक चाहिए
7. औषधीय वनस्पति में वृद्धि	7. जानवरों की संख्या में कमी

उपर्युक्त पहलुओं का तुलनात्मक आकलन करें, प्रत्येक विकल्प की कुल लागत और उससे संभव कुल लाभ ज्ञात किये जायें और तब निर्णय लिये जायें।

उदाहरण–3: इस उदाहरण में पेड़ या जंगल संरक्षण के बारे में विचार किया जा रहा है। सामलाती जंगल के संरक्षण के विभिन्न उपाय इस प्रकार हो सकते हैं :

(1) वृक्षारोपण।
(2) पेड़ बचाना (सुरक्षा)।
(3) नई प्रजातियों को आवश्यकतानुसार लगाना।
(4) अवैध कटान रोकना।
(5) पुराने पेड़ों की छँगाई करना।
(6) ईंधन के नये विकल्प खोजना।

अन्य विविध उपाय परिस्थितियों और आवश्यकतानुसार सोचे जा सकते हैं। फिर सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यह विचार किया जा सकता है कि कौन से उपाय सही हो सकते हैं। तदुपरान्त लाभ और लागत के हिसाब से इन विकल्पों को जाँचा जा सकता है, जिसमें निम्न बिन्दु लिये जा सकते हैं :

क्र.स.	लाभ	लागत
1	वर्षा में वृद्धि	दीवार, बाड़ आदि लगाना
2	नमी में वृद्धि	चरान बन्दी
3	ऑक्सीजन में वृद्धि	चारा (हरा–सूखा) ईंधन, इमारती लकड़ी, औषधीय वनस्पति एवं अन्य वन उत्पाद आदि की अनुपलब्धता
4	भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि	श्रम, समय, सामग्री और रख–रखाव
5	पेड़ों की संख्या में वृद्धि	
6	भूमि कटाव में रोक	
7	नयी प्रजातियों में वृद्धि	
8	चारा–घास में वृद्धि	
9	औषधियों की अधिकता	
10	वन्य जीवों में वृद्धि	
11	अन्य वन उत्पादों में वृद्धि	

उपर्युक्त विवेचन पर ध्यानपूर्वक विचार करने से ही सही उपाय और विकल्प सामने आयेंगे। इन सब उपायों या विकल्पों को आँकड़ों (संख्याओं) में बदलकर उसकी कीमत को रुपयों या धन के रूप में आंकना होगा। इस प्रकार विभिन्न उपायों या विकल्पों को अंकों में बदलने पर नये आँकड़ों को सृजित कर उन्हें गणितीय रूप से जाँचना एवं परखना होगा। नये निर्मित आँकड़ों की गणना करने पर ही सही और गलत उपायों या विकल्पों का पता चल पायेगा और तभी हमारी कार्ययोजना ठीक से बनेगी। तभी जाकर हमारे कार्यक्रम सफल हो सकते हैं।

आँकड़ों को मानचित्रों एवं तालिकाओं द्वारा प्रदर्शित करना :

पिछले पृष्ठों में यह विचार किया गया था कि सामलात देह के सर्वेक्षण के कौन–कौन से सहज और सरल तरीके प्रयोग में लाये जा

सकते हैं। इन उपायों में दो प्रकार के मानचित्र, ट्रांसएक्ट तथा तालिकाएँ मुख्य रूप से प्रयोग में लाई जा सकती हैं। इन मानचित्रों एवं तालिकाओं की मुख्य विशेषता निम्न प्रकार है। इन्हीं विशेषताओं के कारण, इस क्षेत्र में इस प्रकार के तरीके प्रयुक्त होते हैं:

(1) कम स्थान में अधिक जानकारी एवं सूचनाओं को प्रदर्शित किया जा सकता है (अधिक सूचनाओं को संक्षिप्त रूप में दर्शाना)।

(2) इनके द्वारा कम समय में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(3) सामलात देह की वास्तविक स्थिति एवं सूचनाओं को इनके द्वारा शीघ्रता से दर्शाया जा सकता है।

(4) अधिक सूचनाओं के संक्षिप्त रूप में परिवर्तन के कारण रख-रखाव में सुलभता होती है।

(5) सामलात देह सम्बन्धी सूचनाएँ एवं जानकारियाँ मानचित्रों एवं तालिकाओं द्वारा ऐसे मानक रूप में परिवर्तित हो जाती हैं कि उन्हें एकत्र करने वाले या बनाने वाले की अनुपस्थिति में अन्य व्यक्ति भी कम समय में पूर्ण एवं सही जानकारी प्राप्त कर सकता है।

सामाजिक मानचित्र में किसी भी गाँव आदि की सामाजिक स्थिति को और संसाधन नक्शों में संसाधनों को विभिन्न प्रतीकों या रंगों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इन बातों पर पीछे विचार किया जा चुका है। अब हम यह देखेंगे कि सामलात देह सम्बन्धी सामाजिक और संसाधनों से जुड़ी हुई जानकारियाँ मानचित्रों पर किस प्रकार दर्शायी जाती हैं? इस हेतु सर्वप्रथम हमें उस गाँव या स्थान का बारीकी से अवलोकन करना होता है, ताकि अपनी आवश्यकतानुसार अर्थात् तैयार किये जाने वाले कार्यक्रमानुसार सभी जानकारियों को मानचित्रों पर दर्शाया जा सके।

जितने क्षेत्र का हमें मानचित्र बनाना होता है, उस क्षेत्र को पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण, अंदाज से (कदमों द्वारा या किसी अन्य तरीके से) माप लिया जाता है। बिल्कुल सही मानचित्र बनाने के लिए पूरे क्षेत्र को चार-चार सीधी रेखाओं (आवश्यकतानुसार रेखाएँ चार से अधिक भी ली जा सकती हैं) द्वारा पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण दिशाओं में बाँट दिया जाता है, जिसकी माप ले ली जाती है। इस प्रकार हमारे पास सम्पूर्ण क्षेत्र की माप एकत्र हो जाती है। अब हम इस स्थिति में आ जाते हैं कि यह बता सकें कि उस क्षेत्र का स्कूल, तिबारी, रखतबनी या कोई भी बिन्दु किसी भी निश्चित स्थान से इतनी दूरी पर स्थित है। ऐसी स्थिति आ जाने पर हम मानचित्र बनाने के लिए पूरी तरह से तैयार हो जाते हैं। कागज पर बनाने से पूर्व, गाँव वालों के मध्य किसी तिबारी या चौपाल में नीचे जमीन पर नक्शा बनाकर लोगों को दिखाना अच्छा रहता है। इस प्रकार के कार्य से ग्रामीणों के अनेक सुझाव प्राप्त होते हैं। इन सबके बाद हमें किसी ऐसे स्थान का चयन करना होता है, जहाँ से पूरा गाँव या वह स्थान जहाँ का नक्शा बनाना होता है, पूरी तरह से दृष्टिगोचर हो सके; ताकि सम्पूर्ण क्षेत्र की विविधता पर हमारी नजर रह सके। स्पष्ट है कि वह स्थान ऊँचाई पर स्थित होगा। इन सबके बाद मानचित्र बनाने की प्रक्रिया शुरू की जाती है।

मानचित्र बनाने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम जिस कागज पर मानचित्र बनाना होता है, उस पर दिशाएँ अंकित कर ली जाती हैं। वैसे तो हमेशा नक्शे को उत्तर दिशा से ही बनाना शुरू किया जाता है। मगर यह ऐसा कोई सिद्धान्त या नियम नहीं है कि मानचित्र को उत्तर दिशा से ही बनाना शुरू किया जाये। आवश्यकतानुसार इसे किसी भी दिशा से बनाना शुरू किया जा सकता है। अपने कागज के आकार के अनुसार पैमाना मानकर कागज पर 4-5 सरल रेखाएँ पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर-दक्षिण खींच ली जाती हैं। ये रेखाएं जमीन पर मापी गई रेखाओं के अनुसार और उसी अनुपात में होती हैं। पैमाना बनाते समय एक सेन्टीमीटर = 100 मीटर या 500 या 1000 मीटर अर्थात् अपनी आवश्यकतानुसार पैमाने को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। सर्वप्रथम कागज पर मुख्य-मुख्य बातें एवं दिशाएँ, पैमाने को ध्यान में रखकर दर्शायी जाती हैं। यथा-नदी, नाले, सड़क, स्कूल और मन्दिर आदि। तत्पश्चात् सामाजिक नक्शे पर बस्ती, जाति, भूमिहीन व भूमिधर किसान, कच्चे व पक्के मकान, पशुपालन करने वाले घर, शिक्षित व अशिक्षित व्यक्ति, बेरोजगारों की संख्या, खास उम्र के बच्चों वाले घर तथा अपने कार्यक्रमानुसार अन्य सभी जानकारियाँ दर्शायी जाती हैं। इसी प्रकार संसाधन मानचित्र पर भूमि ढलान, विभिन्न उपयोगों में आने वाली जमीन, मिट्टी के प्रकार, विभिन्न वनस्पतियाँ, जंगली जानवर व अन्य पशु, फसलें, विभिन्न जल स्रोत (बाँध, कुएं, जोहड़ आदि), वन, गोचर, रखतबनी, काँकड़बनी, देवबनी, बीड़, रूँध, वाल, पहाड़, सिंचित व असिंचित भूमि, श्मशान, ग्राम सभा और अन्य आवश्यक जानकारी विभिन्न संकेतों तथा रंगों की सहायता से दर्शायी जाती है।

यहाँ पर उदाहरण के लिए गाँव का संसाधन मानचित्र दिखाया गया है। यद्यपि इसमें कम जानकारियाँ ही दर्शायी गई हैं। मगर आवश्यकतानुसार अनेक अन्य जानकारियों को भी एक ही मानचित्र पर प्रदर्शित किया जा सकता है।

गाँव के संसाधनों का नक्शा (एक नमूना)

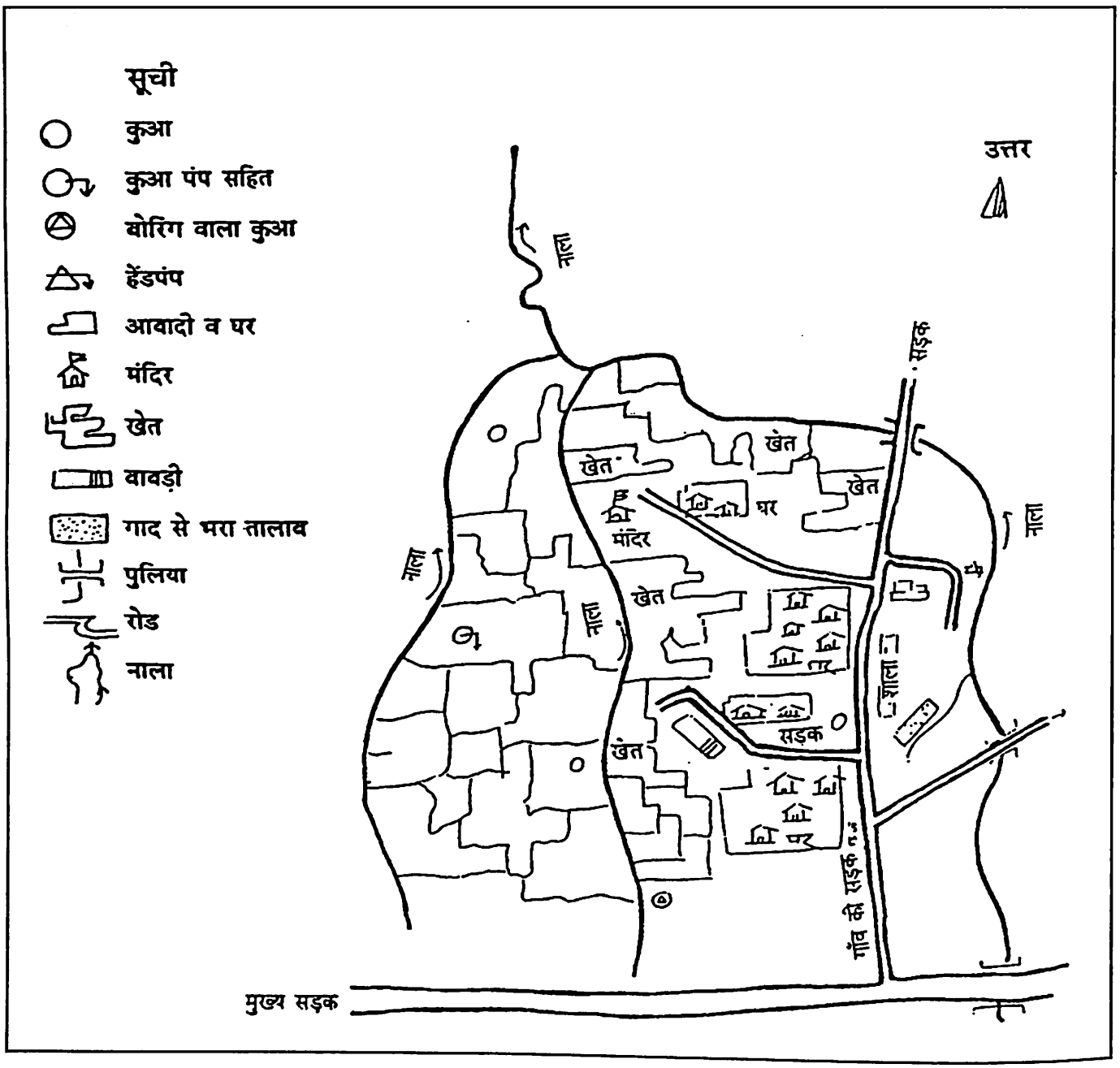

ट्रांसएक्ट : ट्रांसएक्ट बनाने का तरीका पीछे बतलाया जा चुका है। यह एक प्रकार की तालिका ही है, जिसमें किसी गाँव या क्षेत्र की विभिन्न सूचनाओं और जानकारियों को उनकी स्थिति की ऊँचाई के क्रम में बहुत छोटे रूप में लिखकर, सारणियों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इससे गाँव की विभिन्न समस्याओं और उनके समाधान की संभावनाओं को भी प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरण के लिए यहाँ पर एक गाँव का एक ट्रांसएक्ट दिया जा रहा है, जिसे ध्यानपूर्वक देखने से सभी बातें स्पष्ट हो जायेंगी।

चित्र–तालिका 1 : कालैड़ गाँव–आज
पश्चिम से पूर्व चलते हुए परिस्थिति (ट्रांसएक्ट)

विषय	पहाड़	घर	उपजाऊ जमीन	सड़क	घर	गोचर	नदी	गोचर	पहाड़
मिट्टी/जमीन	पथरीली	दोमट	दोमट	पथरीली	पथरीली	पथरीली +दोमट	दोमट,पत्थर,बालू	दोमट,पथरीली	पथरीली
पानी	–	थोड़ा	खूब	–	–	थोड़ा है।	पानी है।	थोड़ा है।	–
साधन	–	हैंडपम्प है।	कुएं हैं।	–	हैंडपम्प है।	जोहड़ है।	इंजन पम्प	जोहड़ हैं।	–
पेड़	धौक सालर डाँसर	नीम पीपल बड़	बबूल	बबूल	नीम,बड़ पीपल	डाँसर, रौंझ घास	डाँसर बबूल	डाँसर धौक घास	धौक सहजना सालर
अड़चनें	मिट्टी का कटाव	थोड़ी शराब	नाले पड़ते हैं जंगली जानवर	अधूरा काम	–	घास कम चराई ज्यादा कब्जा। पशु धन के पैरों से जमीन दबती है।	पुल नहीं है	घास कम	मिट्टी का कटाव जंगली जानवरों को पानी नहीं
उपाय	पेड़ लगाना, खंचिया (कंटूर ट्रैंच)	सदाचरण नैतिक शिक्षा	मेंड़बंदी परकोटा	संगठन जानकारी सरकारपर दबाव	–	जोहड़, घास लगाना, गोचर में समयानुसार क्षेत्र बदल कर चराई, कब्जा कम करने के प्रयास	संगठन और सरकार पर दबाव	जोहड़, घास लगाना	पेड़ लगाना, खंचिया

अन्य तालिकाएँ : किसी भी गाँव या क्षेत्र की जानकारियों और सूचनाओं को आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की तालिकाओं या सारणियों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि इन तालिकाओं की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनके द्वारा विस्तृत जानकारियों को संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। इन तालिकाओं का आकार–प्रकार आवश्यकतानुसार बनाया जा सकता है। यह सब सूचनाओं के प्रकार और बनाने वाले की बुद्धि पर निर्भर करता है। उन्हें वृत्ताकार, आयताकार, त्रिकोणीय या अन्य प्रकार की शक्लें भी दी जा सकती हैं। मगर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब भी तालिकाओं का निर्माण किया जाये, एक तो उन्हें संक्षिप्त बनाने की कोशिश रखनी चाहिए और दूसरे उनमें अधिक से अधिक जानकारी समाहित करने की गुंजाइश होनी चाहिए। यहाँ पर उदाहरण के लिए पाई चित्र, बार चित्र एवं कुछ अन्य प्रकार की तालिकाएँ दी जा रही हैं जिन्हें ध्यानपूर्वक देखने पर कई बातें स्पष्ट हो जायेंगी। ये सभी प्रकार की तालिकाएं आवश्यक जानकारी को आसानी से नजर आने वाले तुलनात्मक रूप में रखती हैं और इस प्रकार सही निर्णय लेने में सहायक रहती हैं।

तालिका–3 : माण्डलवास में जोहड़

स्थान निर्धारण →	जोहड़ (1) गाँववाला	जोहड़ (2) धाणकावाला	जोहड़ (3) नवाकुआंवाला	जोहड़ (4) सरसावाला	जोहड़ (5) लांबावाला
निर्माण वर्ष →	1987–89	1987–88	1989–90	1989–90	1987–88
प्रकार →	पुराना	पुराना	नया	नया	नया
निर्माण लागत (रु.)					
*त.भा.सं.	27,000	25,000	5,000	15,000	4,000
*गाँव	9,000	8,000	5,000	5,000	4,000
*योग	36,000	33,000	10,000	20,000	8,000
आकार (मीटर) →					
*लम्बाई	242.4	303.0	272.0	299.0	122.0
*ऊपर की चौड़ाई	1.5	1.5	1.5	1.2	1.2
*आधार की चौड़ाई	28.2	15.0	8.2	9.1	9.2
*ऊँचाई	5.0	3.6	2.4	2.0	2.1
जल भराव क्षेत्र (है.)	2.5	3.8	1.3	1.0	0.8
जल भराव क्षेत्र (है.)	–	8.8	27.5	6.3	3.7
फसल					
*खरीफ	–	मक्का, तम्बाकू बाजरा, ज्वार, सरसों	मक्का, बाजरा तम्बाकू, काला जीरी ज्वार, तिल, सरसों	मक्का, बाजरा	मक्का, बाजरा, ज्वार
*रबी	–		सरसों		
उपयोग करने वालों की संख्या	पूरा गाँव	8–10 परिवार	40 परिवार	5 परिवार	4 परिवार

तालिका–4 : गाँवों की 50 वर्ष पहले, आज तथा आज से 20 वर्ष बाद की विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण :

क्र.स.	आज से 50 वर्ष पहले	आज	आज से 20 वर्ष बाद
1	गाँव एक जगह थे	कई ढाणियों में बँट गये हैं	घर परिवार भी टूट जायेंगे
2	मालिकाना गाँव का	सरकार का	सरकार का
3	जंगल हरे–भरे थे	जंगल कम हैं	जंगल बिल्कुल कट जायेंगे
4	जंगल में वन्य जीव थे	कम है	नहीं रहेंगे
5	देवबनी अच्छी थी	कम है	नष्ट हो जायेंगी
6	जंगल की औषधियों का उपयोग अधिक था	उपयोग कम है	जंगल कम उपयोग कम
7	ईंधन गाँव के पास	दूर है	और दूर से या बाजार से
8	प्रति व्यक्ति उत्पादन/उपलब्धता अधिक	घटी है	और घटेगी
9	दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति गाँव से	बाजार व गाँव से	बाजार से
10	मुख्य व्यवसाय पशुपालन था	खेती है	खेती एवं उद्योग
11	आबादी कम थी	आबादी बढ़ी है	और बढ़ेगी
12	जोहड़ कम/पानी से भरे हुए	जोहड़ ज्यादा, पानी कम/सूखे हुए	नष्ट हो जायेंगे
13	कुएं कम थे/जल स्तर ऊपर था	कुछ ज्यादा है/नीचा है	बहुत होंगे/और नीचा होगा
14	वर्षा काल चार माह	डेढ़ माह	एक माह से भी कम
15	नदी फाल्गुन तक बहती थी	केवल वर्षा में	केवल वर्षा में मगर बाढ़ के रूप में
16	खेती कम/देशी खाद का प्रयोग/सिंचाई बैलों से	खेती अधिक/रासायनिक खाद/मशीनों से	खेती अधिक/रासायनिक खाद/मशीनों से
17	फसल में गन्ना/कपास/अनाज	सरसों, दाल/सब्जी/अनाज	सरसों/सब्जी/तम्बाकू/अनाज कम
18	गोचर अधिक था	कम है	खत्म हो जायेगा
19	रास्ते चौड़े थे	सँकरे हैं	और सँकरे होंगे
20	गाय/भैंस अधिक थीं	गाय/भैंस कम, बकरियाँ बढ़ीं	बकरियाँ और बढ़ेंगी
21	निरक्षर ज्यादा थे	साक्षर बढ़े हैं	साक्षर और ज्यादा बढ़ेंगे
22	न्याय गाँव में	न्याय गाँव एवं कोर्ट में	कोर्ट में
23	सुख ज्यादा था	कम है	और कम होगा
24	सन्तोष था	कम है	नहीं होगा
25	आवश्यकताएँ कम थीं	विलासिता ज्यादा है	और बढ़ेगी
26	आदमी की कीमत ज्यादा	पैसे की कीमत ज्यादा	पैसे की कीमत अधिक बढ़ेगी
27	दहेज में कन्या–कलश	टी.वी./स्कूटर/फ्रिज, कन्या का महत्त्व कम	टी.वी./कार/फ्रिज, कन्या का महत्त्व और कम
28	मनुष्य मर्यादाओं में बँधा था	काफी मर्यादाएँ तोड़ दी हैं	और तोड़ेगा

बार चित्र (नमूना)

तरुण भारत संघ के स्कूल में उपस्थित होने वाले बच्चों की संख्या

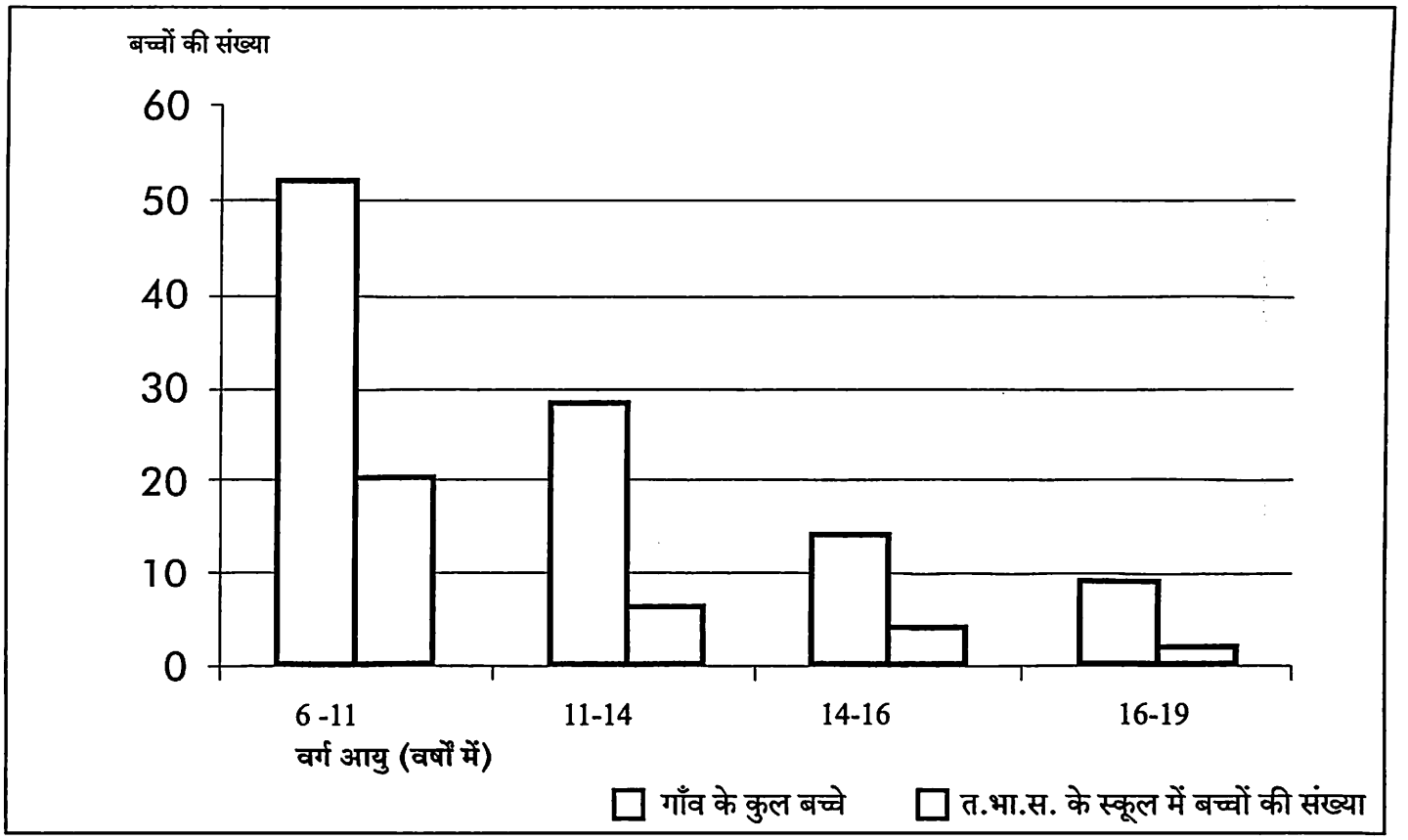

पाई चित्र (नमूना)

भूमि किस्म के अनुसार भौगौलिक क्षेत्र (हैक्टेयर)

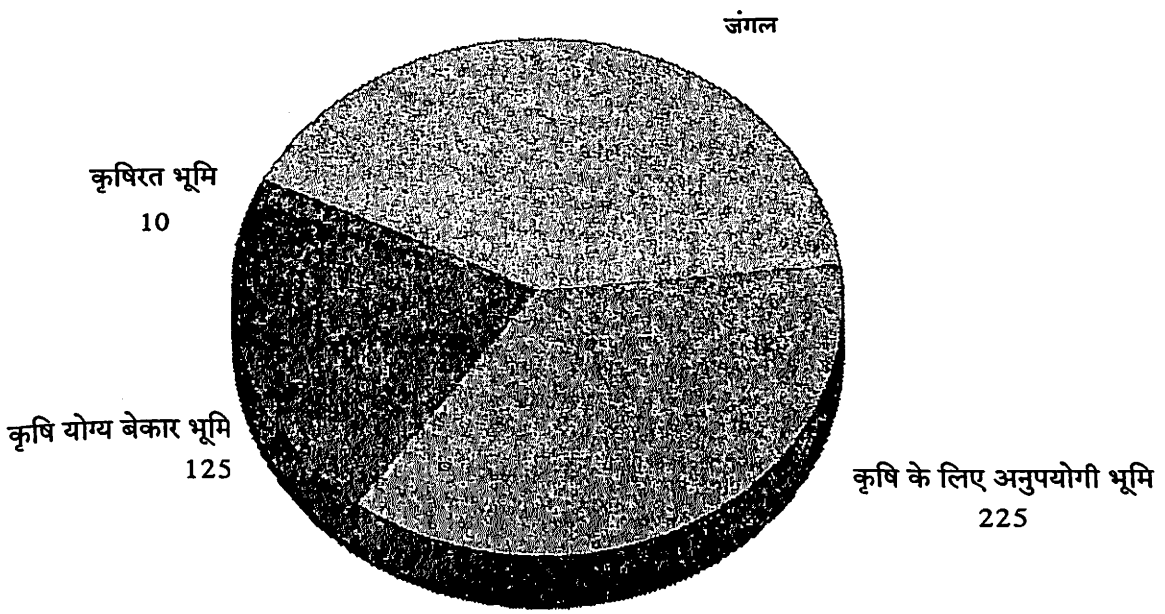

सर्वेक्षणकर्त्ता व सर्वेक्षण वर्ष.....

चित्र तालिका – 2 (I)

	ईंधन	खेती	असिंचित भूमि	फसल	उत्पादन (पैदावार) फूल	उत्पादन (पैदावार) प्रतिपूर्ति	दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति
50 साल पहले	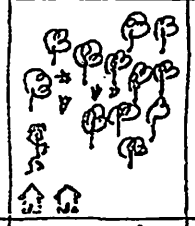			चावल, गन्ना, कपास, गेहूँ, मैथी, पटसन, जौं, मक्का, व बाजरा			गाँव से
आज	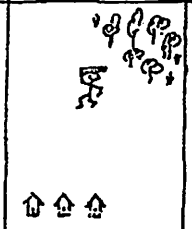	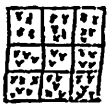		सरसों, तारामीरा, गेहूँ, मक्का, चना, बाजरा व सब्जी			गाँवों से व बाजार से
20 साल बाद	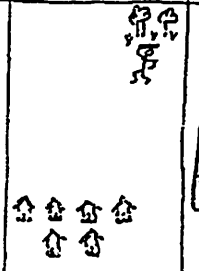	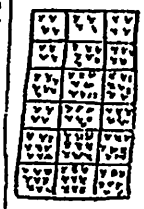		सरसों, सब्जी अनाज (कम)	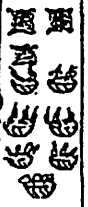		शहर के बाजार से

चित्र तालिका – 2 (II)

	गोचर	पशु	रास्ते	जंगल	देवबनी	पहाड़ के उपयोग
50 साल पहले	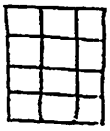		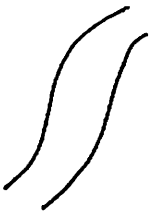			औषधियाँ, जड़ी-बूटियाँ, लकड़ी-ईंधन चारा, इमारतीलकड़
आज	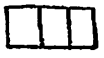		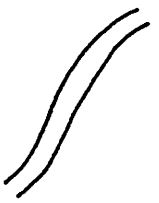		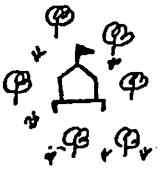	चारा लकड़ी
20 वर्ष बाद		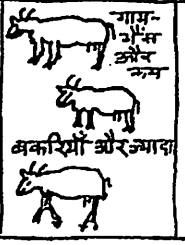			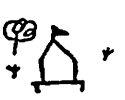	

चित्र तालिका – 2 (iii)

	शिक्षा	भूमिहीनों की संख्या	खेती की व्यवस्था	जोड़	कुएँ	वर्षा	बस्ती	मालिकाना	न्याय व्यवस्था	मनोरंजन
50 साल पहले	कम साक्षर		बैलों और आदमीयों से					गाँव का	गाँव में पंचायत द्वारा थाने पर	चौपाल कार्यक्रम से
आज	उससे अधिक साक्षर		आदमी और मशीनों से					सरकार का	कोर्ट में + गांव में	रेडियो टी.वी. चित्रों से
20 साल बाद	सभी साक्षर		मशीनी करण होगा	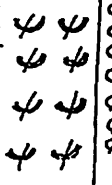	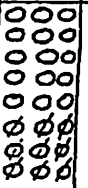			सरकार का	कोर्ट में	टी.वी. रेडियो

★★★

सामलात देह के सर्वेक्षण के लिए प्रपत्र तैयार करना

गाँव, कस्बों या शहरों में, सामलात देह तथा इसकी स्थिति और प्रबन्ध व्यवस्था (परम्परागत और वर्तमान) को भली-भाँति समझने के लिए, सभी सार्वजनिक संसाधनों के सम्बन्ध में प्राचीन और वर्तमान दोनों प्रकार की जानकारियों को एकत्र करके उनका विश्लेषण करना होता है। समूची और ठीक जानकारी के अभाव में संसाधनों को न तो पूर्णरूपेण समझा जा सकता है और न ही उनके संरक्षण, विकास और पुनरुद्धार के लिए भावी योजनाओं को उचित प्रकार से तैयार किया जा सकता है और साथ ही योजनाओं के समुचित और प्रभावी प्रभावों को प्राप्त किया जा सकता है। सम्पूर्ण जानकारी के अभाव में योजनाओं को बनाने, क्रियान्वयन करने तथा सफलता प्राप्त करने आदि बातों में अधूरापन ही रहता है। दूसरी तरफ सूचनाओं की सम्पूर्णता, प्राथमिकता और सत्यता सूचनाओं को एकत्र करने वाले तथा देने वाले दोनों के परस्पर व्यवहार सोच, समझ, ज्ञान, सामर्थ्य और विवेक आदि अनेक बातों पर निर्भर होती है। सूचनाओं को देने वाले से लेकर एकत्र करने वाले का तरीका और प्रलेखन आदि अनेक बातें, जानकारियों की सार्थकता और उनके वास्तविक स्वरूप को निर्धारित करते हैं। अत: सूचनाओं को एकत्र करते समय बहुत ही श्रद्धा, विवेक और सावधानी की आवश्यकता है ।

सूचनाएँ एकत्र करने का सामान्य, सरल और व्यावहारिक उपाय यह है कि जिस संबन्ध में और जिस प्रकार की सूचनाएँ इकट्ठी करनी होती हैं, उसी के अनुसार एक सामान्य सी प्रश्नावली और प्रपत्र तैयार किया जाये। प्रश्नावली तैयार करने में प्राप्त की जाने वाली सूचनाओं की प्रकृति, संख्या और प्रारूप को तो ध्यान में रखा ही जाता है साथ ही क्षेत्र और परिस्थिति तथा समय आदि को भी ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है। अपनी प्रश्नावली या प्रपत्र में लचीलापन रखना तथा उसमें बदलाव की गुंजाइश रखना भी जरूरी है। आवश्यकतानुसार प्रश्नों को घटाने-बढ़ाने के लिए स्थान रखना चाहिए। प्रश्नों को सदैव अपनी आवश्यकतानुसार बनाया जाता है। प्रश्नों की संख्या कम से कम तो रखनी ही चाहिए, साथ ही प्रश्न इस प्रकार के सामान्य और सरल होने चाहिए कि उत्तर संक्षिप्त आये तथा उत्तर देने वाले पर न तो प्रश्नों का गलत प्रभाव पड़े और न ही उसे किसी प्रकार की कठिनाई महसूस हो। अत: प्रश्न-उत्तर की संक्षिप्तता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। प्रपत्र तैयार करते समय क्षेत्र, परिस्थिति, लोगों की शिक्षा और रुचि का विशेष ध्यान रखना अति आवश्यक है।

सूचनाओं की सत्यता और सम्पूर्णता, प्रपत्रों को लेकर क्षेत्र में जाने वाले कार्यकर्ताओं की योग्यता, उनके गुण, निष्ठा और व्यवहार पर तो निर्भर करती ही है, साथ ही लोगों के दृष्टिकोण और उनकी समझ पर भी निर्भर करती है। कार्यकर्ताओं को सर्वप्रथम लोगों से व्यक्तिगत मेल-जोल बढ़ाकर उनके दु:ख-दर्द की बातें पूछकर लोगों में घुल-मिलकर उनका विश्वास प्राप्त करने के उपरान्त ही असली उद्देश्य पर आना चाहिए। मुस्कराते चेहरे और मीठी-मीठी बातों से लोगों के मन में गइराई तक उतरकर, उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हुए, लोगों का अपने में विश्वास बनाना चाहिए। लोगों से उनकी सुविधानुसार समय लेकर उनमें मिलना चाहिए। निश्चित प्रश्नावली या प्रपत्र की 3-4 कॉपियों को लेकर अलग-अलग योग्य कार्यकर्ताओं को एक ही समय में लोगों के मध्य जाकर उत्तर एकत्र करने के बाद सब उत्तरों को एक ही प्रपत्र में मिलान करते हुए अंकित करना चाहिए। यहाँ सामलात देह के सर्वेक्षण हेतु एक प्रपत्र को उदाहरण के लिए संलग्न किया जा रहा है जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके उपयोग में लिया जा सकता है।

गाँव की सामलात देह पर जानकारी हेतु प्रपत्र

(1) गाँव में कौन-कौन सी सामलात देह हैं।
   (क) वर्गीकरण
   (ख) क्षेत्रफल (प्रत्येक का अलग-अलग)

(2) प्राकृतिक सामलात देह
   (गाँव की सामलात देह पर जानकारी हेतु प्रपत्र अगले पृष्ठ पर)

(3) न्याय व्यवस्था
   (क) थाईं
   (1) व्यवस्था क्या थी?
   (2) कब बनी?
   (3) गाँव में उपस्थित है तो कहाँ पर?
   (4) फैसले कब से लेने शुरू हुए?
   (5) इस व्यवस्था में ह्रास कब से शुरू हुआ तथा कारण?
   (6) वर्तमान स्थिति?
   (7) परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था क्या थी?
   (8) इस व्यवस्था में फैसला करने का स्वरूप क्या था?

(4) सामाजिक सामलात देह
   (क) शिक्षा केन्द्र
   (ख) पंचायत घर

(ग) समाज की बैठक/तिबारी

(घ) धर्मशाला

नोट :- इन पर जानकारी करने के लिए उपरोक्त 3(क) में वर्णित प्रश्न पूछे जायें।

(5) धार्मिक :

(क) मन्दिर

(i) कब बना ?

(ii) किसने बनाया ?

(iii) परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था ?

(iv) लोगों की आस्था ?

(v) झाड़-फूंक करने वालों का प्रभाव घटा या बढ़ा ?

(6) आर्थिक :

(1) लोगों की, सामलात देह पर आर्थिक स्थिति किस तरह से निर्भर थी?

(2) आर्थिक स्थिति सुदृढ़ रखने के लिए आपसी आर्थिक व्यवस्था क्या थी?

(7) वन विभाग, अधिकृत वन क्षेत्रफल, स्थिति, वर्गीकरण, वर्तमान स्थिति, प्रमुख पेड़ प्रजातियाँ, घास-चारा, औषधि, गाँव वालों के अधिकारों की स्थिति आदि।

(8) कुल भूमि, सरकारी भूमि, बंजड़, परती व कृषि भूमि।

(9) कुल जनसंख्या, पुरुष, स्त्री व बच्चे।

(10) पशुधन (कुल नस्लवार संख्या)।

(11) व्यक्तिगत वृक्ष, चारा फसल एवं सामलात देह पर निर्भरता।

गाँव की सामलात देह पर जानकारी हेतु प्रपत्र

क्र.सं.	सामलात देह	कब बना	कहाँ पर स्थित है	क्षेत्रफल	पहिचान	किसने बनाया	परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था	वर्तमान स्थिति	यदि खत्म हो गये हैं, तो कैसे?	उपयोगिता	किसका अतिक्रमण है?	वर्तमान प्रभाव	कानून
क.	**जल सम्बन्धी**												
1	जोहड़/बाँध												
2	नदी/नाले/स्रोत												
3	कुएँ/हैंड पम्प												
ख.	**वन सम्बन्धी**												
1	गाँवई वन												
2	काँकड़बनी												
3	रखतबनी												
4	देवबनी												
5	वाल												
6	बीड़												
7	रूँध												
8	सामूहिक पेड़												
ग.	**भूमि सम्बन्धी**												
1	गोचर												
2	गोरा												
3	घाट												
4	खेल का मैदान												
5	श्मशान												
6	खलिहान												

समान तल निर्धारण के साधारण यन्त्र तथा कंटूर रेखा बनाना

जल व मिट्टी के संरक्षण के लिए उपयोग में लाई जाने वाली योजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु भूमि सतह पर स्थित विभिन्न बिन्दुओं की ऊँचाई और गहराई के सम्बन्ध में जानकारी और सूचनाओं का ठीक-ठीक अनुमान लगाना बहुत आवश्यक है। भूमि सतह पर समान तलों को ज्ञात करने (लेवलिंग) की प्रक्रिया उक्त कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का महत्त्वपूर्ण भाग है। लेवलिंग के उपयोगों में कंटूर लाइन ज्ञात करना, कंटूर खेती, विभिन्न लाइनों या पट्टियों में खेती करना, एक ही तल पर खपचियां, खाई या नाली बनाना, समान तल पर वानस्पतिक मेड़बन्दी, कंटूर बाँध, समान तलों के आधार पर भूमि की विभिन्न श्रेणी निश्चित करना, जोहड़/बाँध आदि के भराव क्षेत्र ज्ञात करना और नालों में ठोकर, खुर्रा या बेरियर लगाना आदि प्रमुख हैं।

कंटूर लाइन (समोच्च रेखा) : भूमि की सतह पर एक ही तल (स्तर) अर्थात् लेवल पर स्थित विभिन्न बिन्दुओं को मिलाने वाली कल्पित लाइन को ही कंटूर लाइन या समोच्च रेखा (समान ऊँचाई पर स्थित रेखा) कहा जाता है। टोपोग्राफिक नक्शों पर समान तलों को प्रदर्शित करने का कार्य कंटूर रेखाएँ ही करती हैं। कंटूर रेखा जल एवं भूमि संरक्षण की मौलिक विचारधारा के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके सम्बन्ध में कुछ प्रमुख तथ्य निम्नवत् हैं :

(1) कंटूर रेखा पर पड़ने वाले प्रत्येक बिन्दु एक ही धरातल पर अर्थात् समान ऊँचाई पर स्थित होते हैं।

(2) किसी मानचित्र या भूमि सतह पर पास-पास खींची गई कन्टूर लाइनें, खड़ी चट्टान या ढाल को प्रदर्शित करती हैं, जबकि दूर-दूर स्थित ये रेखाएं कम ढालू या समान सतह (समतल) को दर्शाती हैं।

(3) एक समान ढाल पर कंटूर लाइनें समान रूप से बिखरी रहती हैं।

(4) मानचित्र पर कंटूर लाइनों का पास-पास होने का क्रम, पर्वत शिखर (ऊँचा स्थान) या गहरा स्थान (गड्ढा) का प्रतीक होता है।

(5) कंटूर रेखाएँ कभी एक-दूसरे को नहीं काटतीं, हाँ बिलकुल खड़ी चट्टान या कगार की स्थिति में ये रेखाएँ एक-दूसरे से मिल अवश्य जाती हैं।

(6)ऊँचा स्थान प्रदर्शित करते समय कंटूर ए (A) की आकृति बनाती हैं, जिसमें उच्चमान (संख्या या आँकड़ा) घेरे के अन्दर की तरफ आता है। जबकि गहरे स्थान के प्रदर्शन में ये वी (V) शक्ल धारण करती हैं, जहाँ घेरे के अन्दर की तरफ सबसे कम मान आता है।

धरातल का लेवल निकालने के विभिन्न साधारण यन्त्र : इस कार्य में प्रयुक्त किये जाने वाले विभिन्न उपकरण निम्नवत् हैं :

कंटूर रेखाओं के गुणधर्म

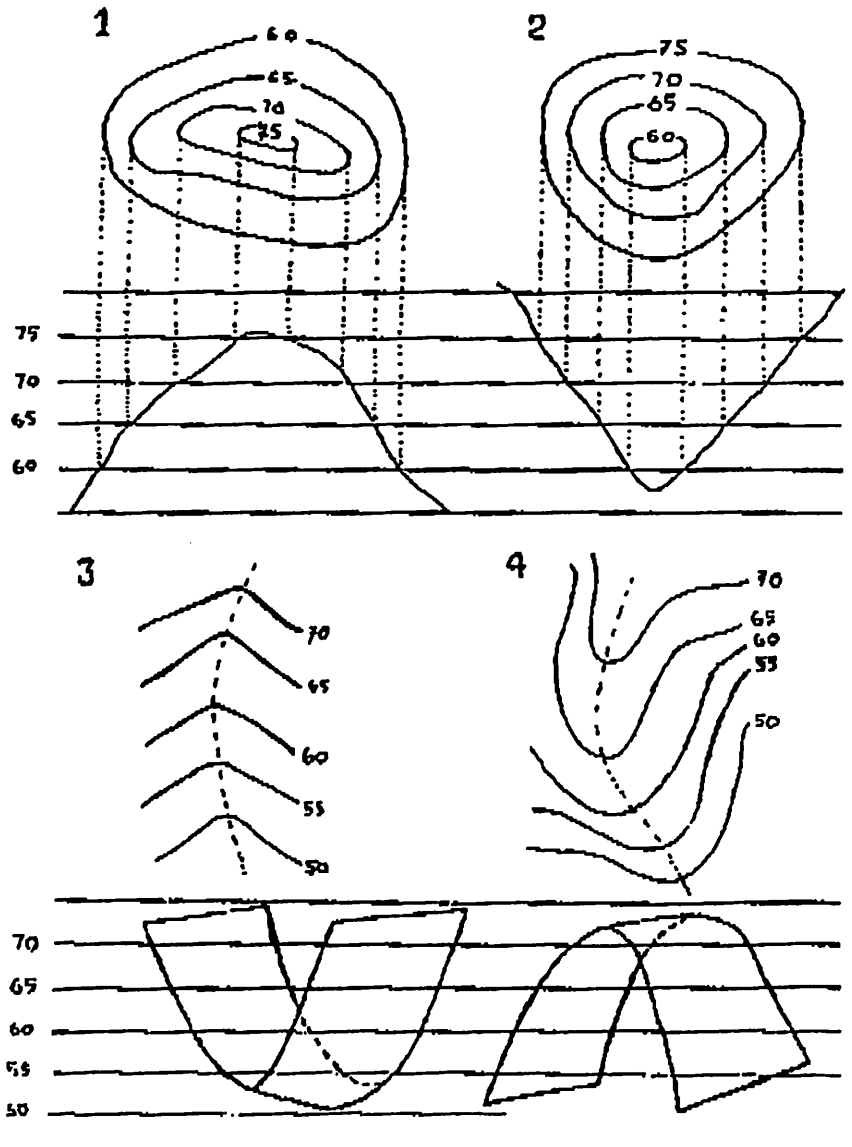

1. पहाड़ी घाटी
2. घाटी
3. पहाड़ी (ऊंचाई) को प्रदर्शित करने वाली रेखा
4. घाटी (गहराई) को प्रदर्शित करने वाली रेखा

हैण्ड लेवल : यह एक बहुत साधारण यन्त्र है। इसके उपयोग में एक व्यक्ति, जिस क्षेत्र या मैदान में कंटूर लाइन खींचनी होती है, उसके एक किनारे पर सीधा खड़ा होकर आई पीस की मदद से हैण्ड लेवल के बुलबुले को केन्द्र में रखते हुए सामने वाले व्यक्ति को आवश्यकतानुसार ऊपर-नीचे करता हुआ आगे देखता है। इस प्रकार थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद खूँटी या पत्थर से निशान लगाते हुए कंटूर लाइन बनाई जाती है।

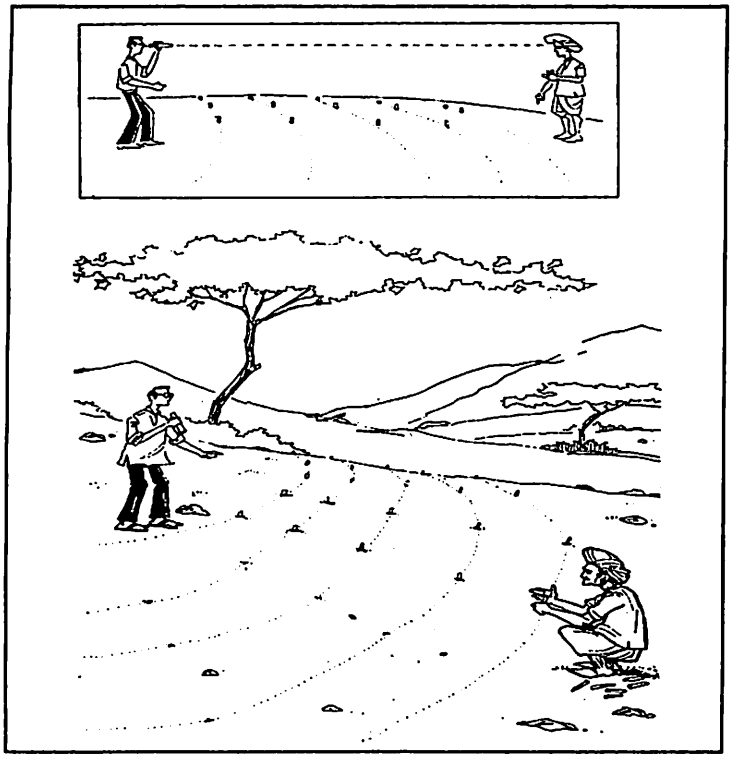

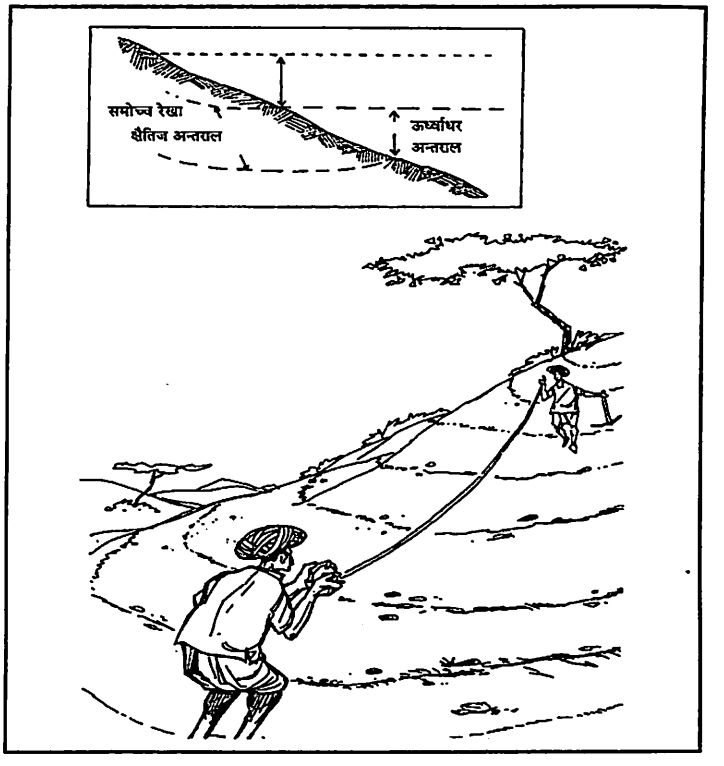

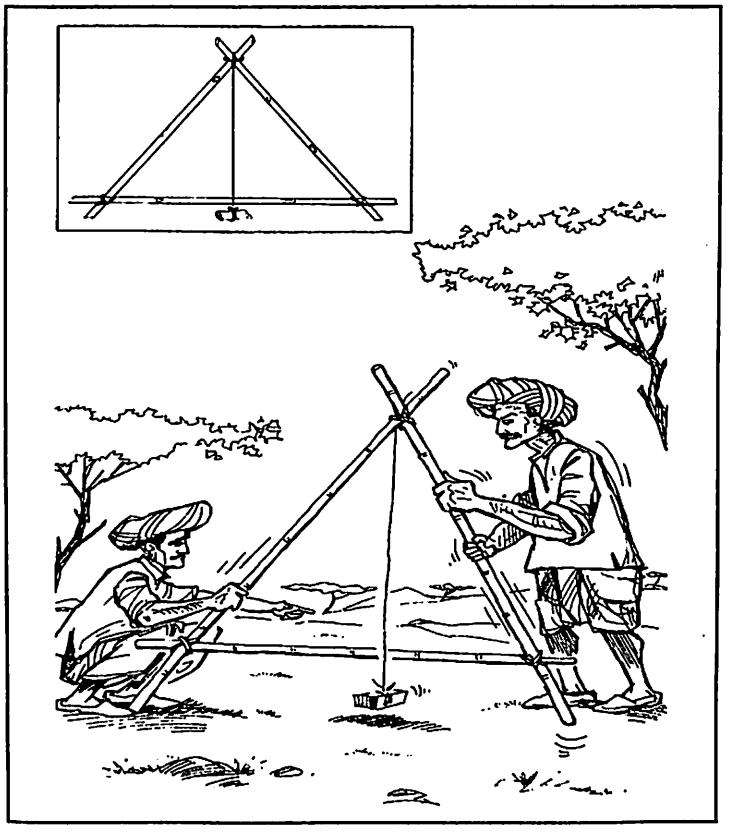

ए-फ्रेम : यह साधारण युक्ति या यन्त्र लेवलिंग फ्रेम या "ए फ्रेम" के नाम से जानी जाती है। इस उपकरण में केवल तीन लकड़ी के डण्डे या बाँस के टुकड़ों को त्रिभुजाकृति में रस्सी से बाँधकर तथा चित्रानुसार एक रस्सी से पत्थर का छोटा टुकड़ा बाँधकर उससे साहुल का काम लिया जाता है। (B) इसके उपयोग में सर्वप्रथम क्षैतिज बँधे डन्डे पर "ए फ्रेम" का केन्द्र निकालकर निशान लगा लेते हैं। इसके लिए किसी समतल स्थान पर ए फ्रेम को रखकर बीच में पत्थर से बँधी डोर के शान्त हो जाने पर क्षैतिज बांस पर निशान लगा लेते हैं। अब ए फ्रेम की दोनों खड़ी भुजाओं को आपस में बदलकर (180 अंश घुमाकर) क्षैतिज बाँस पर दुबारा रस्सी के शान्त हो जाने पर निशान लगा देते हैं। इस प्रकार प्राप्त दोनों निशानों का मध्य बिन्दु ही ए फ्रेम का केन्द्र होता है। (C) केन्द्र ज्ञात करने के बाद यन्त्र की मदद से कंटूर लाइन निकालना शुरू किया जाता है। इस प्रक्रिया में एक निश्चित बिन्दु पर 'ए फ्रेम' की एक भुजा को टिकाकर दूसरी भुजा को ऊपर-नीचे करते हुए ऐसे स्थान पर रखते हैं, जहाँ रखने से ए फ्रेम के मध्य में लटकी रस्सी, क्षैतिज बाँस पर लगाये गये केन्द्र बिन्दु पर रुक सके।

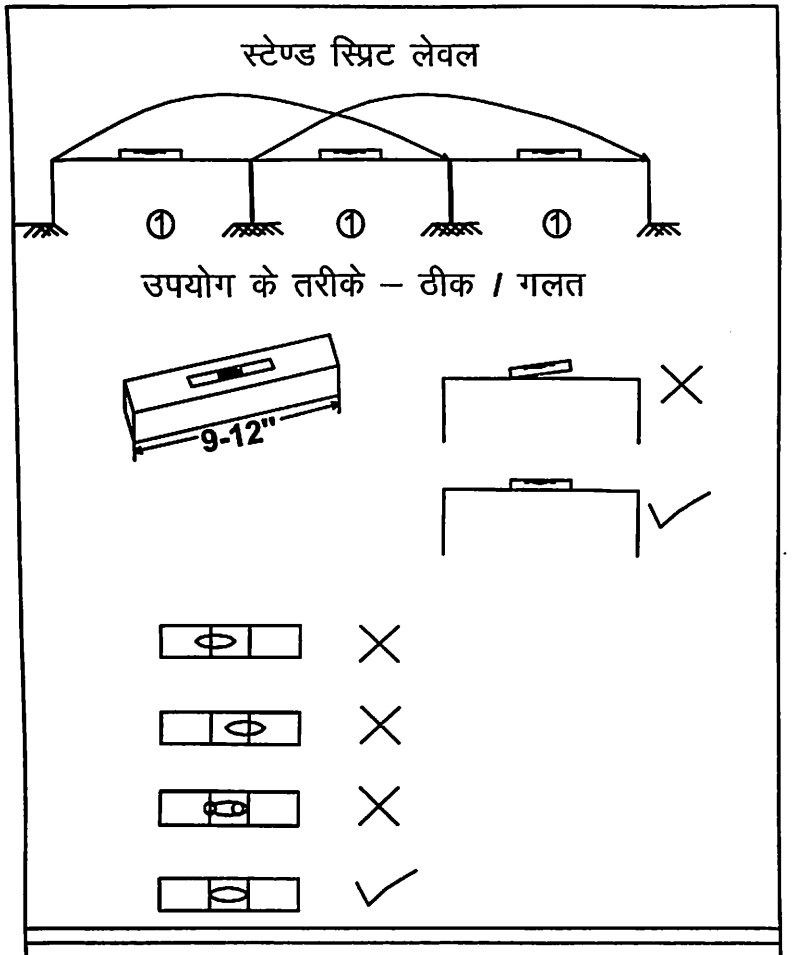

इसके बाद 'ए फ्रेम' की दूसरी भुजा को 180 अंश घुमाकर नया स्थान पूर्ववत् खोजते हैं। जहाँ निशान लगाकर इसी क्रम को दोहराते जाते हैं। इस प्रकार हमें कंटूर रेखा प्राप्त हो जाती है।

स्टैण्ड स्प्रिट लेवल (डोरी): इस साधारण-से यन्त्र की मदद से कंटूर लाइन आसानी से मालूम हो जाती है। जैसा कि चित्र में प्रदर्शित है। इसके उपयोग में स्प्रिट लेवल के बुलबुले को केन्द्र में रखते हुए इसके दोनों पैरों को ए फ्रेम की तरह से 180 अंश घुमाते जाते हैं तथा खूँटी या पत्थर से जमीन पर निशान बनाते जाते हैं, जिनको मिलाने से सही कंटूर लाइन प्राप्त होती है, चित्र देखें।

लाइन लेवल : इस विधि में दो बाँस के टुकड़े (डण्डे), स्प्रिट लेवल, डोरी और पैमाने की आवश्यकता होती है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। एक आदमी किसी निश्चित स्थान पर बांस को खड़ा करके डोरी के एक सिरे को बाँस पर लपेट कर खड़ा हो जाता है जबकि दूसरा व्यक्ति दूसरे बाँस को सीधा पकड़कर डोरी के दूसरे सिरे को बाँस में लपेट लेता है। अन्य तीसरा व्यक्ति स्प्रिट लेवल को डोरी के मध्य में लटकाकर इसके बुलबुले को देखता है। दूसरे व्यक्ति के बाँस पर लिपटी डोरी को ऊपर-नीचे खिसकाने से जब बुलबुला केन्द्र में आ जाता है, तब पहले बाँस पर ली गई माप की तुलना में दूसरे बाँस पर घटी या बढ़ी माप को नोट कर लेते हैं। अब दूसरे बाँस को उसी स्थान पर रखते हुए पहले बाँस को लगभग 180 अंश अथवा आवश्यकतानुसार घुमाकर अन्य स्थान पर रखा जाता है। जहाँ रखने के बाद पुन: उसी प्रक्रिया को दोहराया जाता है तथा पहले बाँस की अपेक्षा दूसरे बाँस पर घटी या बढ़ी लम्बाई को पैमाने से मापकर नोट कर लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त मापों का गणितीय रूप ध्यान में रखकर समान लेवल अथवा अभीष्ट लेवल ज्ञात कर लेते हैं। इस यन्त्र की मदद से किसी दिये गये बिन्दु के तल (लेवल) में अन्य बिन्दुओं को आसानी से खोजा जा सकता है। इस यन्त्र के उपयोग में निम्न बातों को ध्यान में रखना अतिआवश्यक है : (F)

1. इस युक्ति के प्रयोग के समय तेज हवा न चल रही हो, क्योंकि तेज हवा के झोंकों से डोरी हिलने के कारण बुलबुले के केन्द्र में आने की सही स्थिति का पता नहीं चल पाता।
2. बाँस या डण्डे हमेशा सीधे खड़े करने चाहिए।
3. स्प्रिट लेवल को सदैव डोरी के मध्य में लटकाना चाहिए।
4. डोरी की लम्बाई कम रखनी चाहिए।
5. आँख को स्प्रिट लेवल के केन्द्र की सीध में रखकर ही बुलबुले को देखना चाहिए।

पानी की ट्यूब लेवल: यह भी अति साधारण यन्त्र है, जिसमें दो सीधे बाँसों के अतिरिक्त पानी से भरी एक पारदर्शक नली और पैमाने की भी आवश्यकता होती है। चित्र में दर्शाये अनुसार पानी से भरी नली को दोनों बाँसों पर बाँधकर लेवल लिया जाता है।

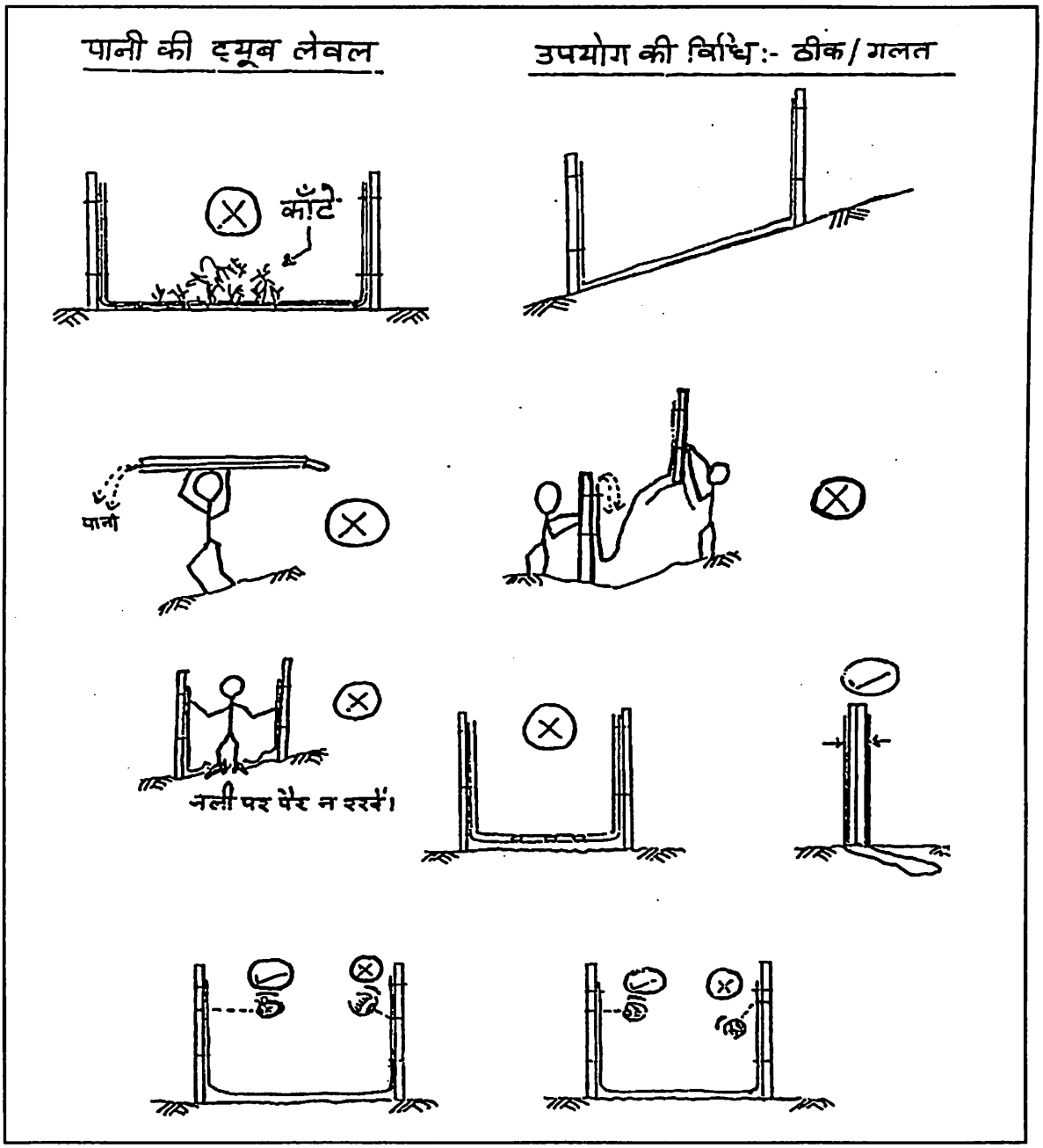

(G) निश्चित स्थान पर एक बाँस को रखकर दूसरे बाँस को दूसरे स्थान पर रखते हुए पानी का लेवल देखते हैं तथा पहले बाँस की अपेक्षा दूसरे बाँस पर घटी या बढ़ी माप को पैमाने से माप कर लिख लेते हैं। बाँसों को उक्त युक्तियों की ही तरह बदलकर मापों के गणितीय स्वरूप को ध्यान में रखकर दिये गये किसी बिन्दु के समान लेवल वाले बिन्दु को ज्ञात कर लेते हैं इस प्रक्रिया में भी निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. बाँस सीधे रहने चाहिए।
2. तेज धूप, यन्त्र उपयोग के समय न हो।
3. पानी का लेवल देखते समय आँख को पानी के लेवल की सीध में रखना आवश्यक है।
4. बाँसों को इस प्रकार न उठायें कि ट्यूब से पानी निकल जाये।
5. नली के दोनों सिरों पर पानी में कुछ बून्द स्याही या रंग की डालने से लेवल साफ दिखाई देता है। पर गहरा रंग न करें।
6. माप का देखना, पढ़ना, बोलना व लिखना सही होना चाहिए तथा गणना भी सही होनी चाहिए।

ऊपर वर्णित विधियों में हैंड लेवल, स्टैण्ड स्प्रिट लेवल तथा 'ए फ्रेम' कंटूर रेखा निकालने तथा लाइन लेवल एवं वाटर ट्यूब लेवल किसी दिये गये बिन्दु के लेवल या समान तल में दूसरे नये बिन्दु को खोजने में काम आते हैं। इन सभी यन्त्रों को तथा इनकी उपयोग की विधि को यहाँ चित्रों द्वारा भी समझाया गया है। इन यन्त्रों को एक बार देख लेने तथा थोड़े से अभ्यास से ही इनके उपयोग विधि में दक्षता प्राप्त की जा सकती है। आजकल उच्च टैक्नोलॉजी से निर्मित कई यन्त्र बाजार में उपलब्ध हैं, जो बहुत महंगे होने के साथ-साथ उन्हें उपयोग में लाना भी काफी कठिन है। मगर यहाँ वर्णित यन्त्र बहुत सस्ते होने के साथ-साथ परम्परागत और बहुत आसानी से उपयोग में लाये जा सकते हैं। इन यन्त्रों के उपयोग की विधि साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है।

ग्राम–प्रबन्धन में जल–प्रबन्धन का महत्त्व

जल जीवन का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवयव (अंग) है। जल के बिना जीवन संभव नहीं है। पंच महाभूत तत्त्वों (जल, वायु, ताप, धरती और आकाश) में जल का स्थान जीवन के लिए सर्वोपरि माना गया है। मानव जीवन ही क्या सभी प्राणियों में जल की मात्रा तीन–चौथाई से भी अधिक होती है। मानव के लिए जल के अनेकों उपयोग हैं, जिनमें जल के मुख्य उपयोग पीने और सिंचाई (अनाज पैदा करने के लिए फसलों में पानी देना) दो ही माने जाते हैं। शरीर की विभिन्न क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए जहाँ एक ओर जल की आवश्यकता है, वहीं शरीर को उर्जा प्रदान करने वाली विभिन्न तथा खाद्यान्न आदि को पैदा करने के लिए जल की आवश्यकता मानव को निरन्तर रहती है। 'जल के अभाव में पृथ्वी से जीवन ही समाप्त हो जाएगा।' ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। जल के महत्त्व पर तो कितने ही ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं।

जीव–जन्तुओं सभी के लिए जल का एकमात्र स्रोत वर्षा है। यह बात अलग है कि प्रकृति में जल–चक्र के दौरान जल के अनेकों रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं और जल के स्रोत भी अनेकों नजर आते हैं। मगर यथार्थ सत्य यही है कि अन्ततः वर्षा के जल का ही जीव–जन्तु उपभोग करते हैं। वर्षा का रूप लेते समय जल शुद्ध और श्रेष्ठ होता है तथा विश्व स्तर पर देखें तो सम्पूर्ण जीव–जगत की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह पर्याप्त होता है। वर्षा का पानी जब धरती पर पड़ता है तो लगभग एक–तिहाई भाग जमीन द्वारा सोख लिया जाता है। धरती द्वारा जल सोखने की दर मिट्टी की संरचना, वनस्पतियों की उपस्थिति, वर्षा की गति व अन्य अनेक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। वर्षा का कुछ भाग, लगभग तुरन्त ही या वर्षा के शीघ्र बाद ही वाष्पीकृत हो पुनः वायुमंडल में चला जाता है। जल की थोड़ी–सी मात्रा गड्ढों, जोहड़ों, तालाबों व झीलों में रुक जाती है। शेष जल नदी–नालों से बहता हुआ समुद्र में चला जाता है। इस प्रकार बह कर जाने वाले जल को रोक कर, अनेकों उपयोगों में लेने की व्यवस्था को ही जल प्रबन्धन कहा जाता है। जो जल भूमिगत हो जाता है, भले ही वह प्राकृतिक जल रिसाव के कारण हो या मानव द्वारा निर्मित जोहड़ों या बाँधों की मदद से हो, एक प्रकार से खजाने के रूप में भूमि में संगृहीत हो जाता है और मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार इस अमूल्य खजाने का उपयोग बारहों महीने करता रहता है।

वर्षा मापन : अन्ततः उपलब्ध जल का स्रोत वर्षा ही है। इसलिए किसी भी क्षेत्र के जल–संसाधन का हिसाब लगाने या जल–प्रबन्धन की योजना बनाने के लिए वर्षा की मात्रा का ज्ञात होना आवश्यक है। यदि वर्षा का पूरा जल, बिना किसी भी प्रकार से एक बूँद भी कम होने दिये, समतल भूमि सतह पर एकत्र किया जाए तो इस एकत्रित जल की जो गहराई होगी, वही वर्षा की मात्रा की माप मानी जाती है। यह भारत में मिलीमीटर (एक मीटर का एक हजारवाँ भाग) में दी जाती है। पहले यह इंच में दी जाती थी और एक इंच 25 मिलीमीटर होता है। एक मिलीमीटर वर्षा का अर्थ होगा एक लीटर जल प्रति वर्ग मीटर भूमि या 10 घन मीटर (10000 लीटर) जल प्रति हैक्टेयर भूमि। वर्षा की माप वर्षामापी (A) द्वारा की जाती है। यह एक धातु का 5–8 सेंटीमीटर व्यास का 40–50 सेंटीमीटर लम्बा सिलेन्डर होता है, जो एक स्टैण्ड की सहायता से किसी खुली छत पर या मैदान में सीधा खड़ा कर दिया जाता है। सिलेन्डर पर एक कीप रखी होती है, जिसमें वर्षा का जल गिरकर सिलेन्डर में एकत्र होता रहता है। एकत्र जल कीप के क्षेत्रफल (0.785 × व्यास का वर्ग) एवं वर्षा की मात्रा पर निर्भर करता है। इस एकत्र जल का आयतन नापकर उसे कीप के क्षेत्रफल से भाग देने पर वर्षा की मात्रा निकल आती है। सामान्यतया वर्षामापी यंत्र के साथ एक शीशे का नापित सिलेन्डर आता है। धातु–सिलेन्डर में एकत्र जल को इस नापित सिलेन्डर में डालने से वर्षा की मात्रा सीधे–सीधे मिलीमीटर में पढ़ी जा सकती है। कभी–कभी नापित सिलेन्डर के स्थान पर वर्षा मापी के साथ एक लकड़ी या प्लास्टिक का स्केल आता है जिस पर लगे निशान सीधे मिलीमीटर में वर्षा की मात्रा दे देते हैं। सामान्यतया प्रतिदिन प्रातः आठ बजे पिछले 24 घंटों में हुई वर्षा नाप ली जाती है और वर्षा मापी को खाली कर फिर अगले दिन के लिए रख दिया जाता है। इस प्रकार हर तारीख की वर्षा की मात्रा ज्ञात होती जाती है। इन्हें जोड़ कर महीने की वर्षा ऋतु की या पूरे वर्ष की वर्षा निकाल ली जाती है। स्पष्ट है कि किसी वर्ष वर्षा कम होती है और किसी वर्ष अधिक। कई वर्षों की वर्षा के आँकड़ों से औसत वार्षिक वर्षा अधिकतम वार्षिक वर्षा, एक दिन में हुई अधिकतम वर्षा, वर्षा का अलग–अलग महीनों में सामान्य विवरण आदि निकाल लिये जाते हैं। भारत का मौसम विभाग बड़े–बड़े नगरों में वर्षा नियमित रूप से नापता है। कई सरकारी विभाग (कलेक्टरेट, सिंचाई विभाग, लोक निर्माण विभाग, वन विभाग आदि) भी अपने कार्यालयों पर वर्षा नापते हैं। उनसे वर्षा के आँकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं। अलग–अलग स्रोत से मिले आंकड़ों में अन्तर हो तो औसत ले लिया जाता है।

वर्षा गति मापी या रेन रिकॉर्डर – सामान्य वर्षामापी से हमें एक दिन की वर्षा मिल जाती है। परन्तु तीव्र वर्षा के समय प्रति मिनट वर्षा की गति क्या थी? यह पता नहीं चलता, जो अधिकतम प्रवाह या बाढ़ के समय का प्रवाह निकालने के लिए आवश्यक होता है। इसके लिए रेन रिकॉर्डर नामक यंत्र का उपयोग किया जाता है, जो ग्राफ पेपर पर अलग–अलग समय होने वाली वर्षा को समय के विरुद्ध चित्रित करता जाता है, जिससे वर्षा की गति और वर्षा के बारे में समस्त जानकारी प्राप्त हो जाती है। यह बहुत उपयोगी यंत्र है, महंगा भी नहीं है, पर अपने देश में बहुत कम उपयोग किया जाता है।

वॉटर-शैड (पणढाल) की समझ और पहिचान

जल सदैव ऊँचे बिन्दुओं से नीचे के बिन्दुओं की ओर बहता है अर्थात् ढाल के साथ। जब किसी क्षेत्र पर वर्षा होती है तो वर्षा का जल धीरे-धीरे बह कर ढाल की दिशा में नीचे की ओर चल पड़ता है। शुरू में यह महीन नलिकाओं से होता हुआ कुछ बड़ी नालियों में जाता है। नालियों से नालों में और फिर नालों से नदियों में बहने लगता है। इस प्रकार एक क्षेत्र पर हुई वर्षा का जल अन्य क्षेत्रों पर बरसे जल के साथ मिलता हुआ एक मुख्य और बड़ी धारा का रूप धारण कर लेता है, जो अन्त में समुद्र तक पहुँच जाती है। छोटी-छोटी धाराओं के संयोग से बड़ी धाराओं का निर्माण होता है। यह बड़ी धारा 'नदी' के नाम से विभूषित होकर प्रकृति द्वारा प्रदत्त अमूल्य खजाने को समुद्र तक पहुँचा देती है। उसी सम्पूर्ण क्षेत्र को जहाँ से वर्षा का पानी इसी मुख्य धारा नाला/नदी का रूप धारण करके बहता है, उस नदी/नाले का वाटर शैड या पणढाल कहते हैं। दूसरे शब्दों में क्षेत्र का वह भाग या वह क्षेत्र-इकाई जो जल की एक धारा नाला/नदी को उत्पन्न करने में योगदान देती है, उसका वाटर शैड या पणढाल कहलाती है। वाटर शैड के कई प्रचलित नाम हैं यथा-कैचमैन्ट एरिया, जल ग्रहण क्षेत्र, जलागम क्षेत्र, आगौर और पणढाल आदि। क्षेत्रीय भाषाओं के नाम अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग हैं। जलागम क्षेत्र और पणढाल शब्दों को ध्यानपूर्वक देखने से वाटर शैड का अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है। जलागम क्षेत्र वह क्षेत्र है, जहाँ से जल का आगमन होता है (एक मुख्य धारा के रूप में)। इसी प्रकार पणढाल का सीधा सा अर्थ है, वह ढालवाँ क्षेत्र जहाँ से पानी आता है या पानी का ढाल। आगौर शब्द, आगौरना (एकत्र करना) से बना है। यह वह ढाल है, जहाँ पर बरसा पानी एक ओर बह कर एक ही स्थान या धारा में पहुँचता है।

वाटरशैड की पहिचान करना – जब हमारे मस्तिष्क में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वाटर शैड क्या है, तब इसकी पहिचान करना बहुत आसान है। वर्षा का जल जब किसी भी स्थान पर बहकर एक दिशा में चलता है और छोटी-छोटी नालिकाओं से नालियों में, नालियों से नालों में और नालों से एक मुख्य धारा का रूप धारण करके नदी कहलाता है, तो उस सम्पूर्ण क्षेत्र को जहाँ का बरसाती पानी नदी या बड़े नाले में आता है, पहिचानना कोई कठिन काम नहीं है। ढलान के दूसरी तरफ का क्षेत्र एक अलग वाटर शैड का निर्माण करता है। वाटर शैड कुछ हैक्टेयर (माइक्रोवाटर शैड) से लेकर सैकड़ों या हजारों हैक्टेयर (मैक्रोवाटर शैड) तक का होता है। एक वाटरशैड से जल की एक ही मुख्यधारा का निर्माण होता है। निकट का दूसरा वाटर शैड जल की दूसरी धारा का निर्माण करता है। इसको क्षेत्रफल में मापा जाता है तथा इसकी इकाई एकड़, हैक्टेयर, वर्ग कि.मी. आदि होती है। यहाँ पर वाटर शैड का चित्र दिया जा रहा है। वाटर शैड में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ (पेड़-पौधे), खेत-खलिहान, सड़क, मकान आदि हो सकते हैं या फिर नंगी पहाड़ियों का वाटर शैड वनस्पति रहित भी हो सकता है।

वाटर शैड में जल प्रबन्ध व्यवस्था करना बहुत जरूरी है, क्योंकि उचित जल प्रबन्धन के बिना वाटर शैड का अधिकांश जल एकत्र होकर नालों और अन्ततः थोड़े ही समय में नदियों द्वारा समुद्र तक पहुँचा दिया जाता है, जो पीने व सिंचाई के उपयोग में न आने के कारण बेकार हो जाता है। यदि वाटर शैड में छोटे-छोटे बाँध, जोहड़ या अन्य प्रकार की जल एकत्र करने वाली संरचनाओं का निर्माण उचित ढंग से कर दिया जाए, तब बह कर जाने वाले जल के कुछ भाग को रोका जा सकता है तथा रोक कर भूमिगत किया जा सकता है अथवा सिंचाई या अन्य उपयोगों में लिया जा सकता है। जल के भूमिगत होने पर भूमि में लम्बे समय तक नमी बनी रहती है, क्योंकि भूमिगत जल का स्तर ऊँचा उठ जाता है। फलस्वरूप उस क्षेत्र में वनस्पतियाँ तेजी के साथ उगतीं और बढ़तीं हैं अर्थात् वाटर शैड के उस क्षेत्र में, जहाँ पर जल प्रबन्ध व्यवस्था उचित प्रकार से की जाती है, जंगल तेजी से विकसित होते हैं। साथ ही कुओं का जल स्तर बढ़ने के कारण सिंचाई के लिए व अन्य उपयोगों के लिए भी जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होकर विकास और समृद्धि के रास्ते प्रशस्त कर देता है।

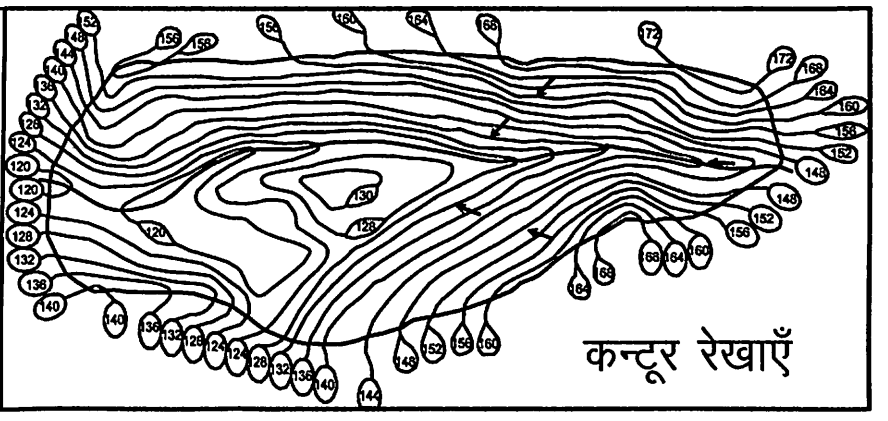

जल संरक्षण की परम्परागत तकनीकी एवं सामाजिक इंजीनियरिंग

प्रकृति में केवल मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो मूल्य दृष्टि व मूल्य निष्ठा का वर्णन करने हेतु अपनी इच्छानुसार अपने लिए उत्पादन करके जीवित रह सकता है। वास्तव में मानव की इच्छा और क्रिया-शक्ति के कारण ही कपड़े, मकान एवं भोजन के रूप में पंच महाभूतों का उपयोग आरम्भ हुआ था। एक लम्बे समय तक तो यह उपयोग सहज प्राकृतिक स्वरूप में बना रहा, ठीक उसी प्रकार जैसा कि दूसरे प्राणी उपयोग करते हैं। जब तक मानव ने ऐसा किया वह आदिमानव कहलाया। जैसे-जैसे इस आदि-मानव की संख्या बढ़ी तो इन्हें प्राकृतिक रूप में खाद्य सामग्री प्राप्त करने में कठिनाई होने लगी। इन कठिनाइयों से संघर्ष करने हेतु मानव मस्तिष्क के विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो गई।

आवश्यकता ही आविष्कार और तकनीक की जननी होती है। अत: रहन-सहन, खान-पान की जरूरत पूरी करने के लिए मानव उद्यम आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम भोजन हेतु पशुपालन व खेती शुरू हुई। शुरू में यह कार्य नदी के किनारे आरम्भ हुआ। बाद में लोगों ने नदियों से हट कर बसावट आरम्भ की तो उन्हें वहाँ पर वर्षा के जल को रोकने की आवश्यकता महसूस हुई। शुरू में यह कार्य लोगों के छोटे-छोटे समूहों द्वारा आरम्भ किया गया। इन समूहों ने वर्षा के दिनों में प्रकृति द्वारा निर्मित छोटे गड्ढों में जल भरा देख कर छोटा जोहड़ बनाया होगा या नदी के किनारे रहकर ही पहले पानी पीने हेतु उचित स्थान पर जोहड़ निर्माण करके फिर वहाँ बस गये होंगे या फिर यह भी कहा जा सकता है कि मानव ने उचित स्थान का चयन करके वहाँ पर जमीन खोद कर पानी एकत्र करने के लिए जोहड़ का कार्य शुरू किया था। जोहड़ का उपयोग भी पहले निर्माण करने वालों ने किया होगा, जिसके लिए लोगों ने जोहड़ के पास बसावट की होगी, फिर और भी लोग वहाँ आकर बस गए होंगे या आवश्यकतानुसार नये-नये जोहड़ बनाते चले गये होंगे। जोहड़ के किनारे बसे लोग, समूह या समुदाय परस्पर मिल-जुल कर पूरी आपसदारी से इन जोहड़ों की देखभाल करते थे।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक जोहड़ों की संख्या बहुत कम थी, क्योंकि आवश्यकता भी कम थी। लोगों की आवश्यकता की पूर्ति वर्षा, प्राकृतिक झील, झरना, कुंड तथा नदियों से हो जाती थी। कभी पानी की कमी हो गई तो लोग घूमने निकल जाया करते थे। पानी की कमी के कारण ही राजस्थान में लोग सबसे अधिक घूमते थे। आवश्यकतानुसार लोगों द्वारा पीने के पानी हेतु कुईं, बावड़ी, कुण्ड, टाँका, जोहड़ आदि बनाने का काम आरम्भ हो गया। जल एकत्र एवं उपलब्ध करने वाली सभी रचनाओं के निर्माण में प्रयुक्त ज्ञान कौशल और तकनीक लोगों की अपनी तथा आवश्यकतानुसार होती थी। धीरे-धीरे इसमें सुधार होता चला गया और भारत में एक कोने से दूसरे कोने तक यह परम्परागत तकनीकी एवं इंजीनियरिंग ज्ञान विकसित होता रहा। इन परम्परागत तकनीकों के सहारे ही राजस्थान में सबसे कम वर्षा का क्षेत्र जैसलमेर, व्यापारिक केन्द्र बन गया। यहाँ बड़ी हवेलियाँ, महल एवं मन्दिर बने। कर्नाटक व बुन्देलखंड में आज भी वहाँ के पुराने जोहड़ अपनी बुलन्दगी की कहानी सुना रहे हैं।

भारतीय समाज का वर्तमान रूप भी देखें तो इसकी बनावट में जोहड़ आज भी अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। समाज में जैसे-जैसे बदलाव आया, वैसे ही जोहड़ों की स्थितियाँ बनती गईं। जैसे कि अलवर जिले का भानगढ़ शहर अपनी जल व्यवस्था के कारण सोलहवीं शताब्दी में ही पूर्ण विकसित होकर दूर-दूर तक प्रसिद्ध हुआ है। सुन्दर सीधी लाइनों से बने मकान, चौपड़, पानी की निकासी हेतु नालियाँ, पेयजल के लिए सुन्दर व शुद्ध जल का पक्का टाँका आदि के अवशेष आज भी यहाँ मौजूद हैं। इसी प्रकार इससे भी पुराने काल में पारा नगर, जिसे अब राजोरगढ़ (या नीलकण्ठेश्वर) के नाम से जानते हैं, यहाँ बुच्छ नामक राजा ने बड़ा सुन्दर पक्का जोहड़ बनाया था। जब तक इस जोहड़ में पानी रहा तब तक वह शहर फलता-फूलता रहा। बाद में किसी अज्ञात स्थान से पानी निकलकर जोहड़ सूख जाने के कारण यह सुन्दर शहर उजड़ गया। इस प्रकार जोहड़ सभ्यता को प्रभावित करते रहे हैं।

भारत के अनेक भागों में जोहड़, नाडा, नाडी, सर, तालाब, पोखर, ताल, तलाइयों के नाम पर ही अनेक गाँवों, कस्बों और शहरों के नाम रखे जाते थे, जो आज भी प्रचलन में हैं। अरावली के पहाड़ी क्षेत्र में आज भी जोहड़, जोहड़ी, बाँध, बंधी, ठोकर, खुर्रा आदि परम्परागत विधियों से जल संरक्षण का कार्य होता है। वैसे तो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक पूरे भारत में जल प्रबन्ध की परम्परागत विधियाँ समान ही हैं, लेकिन परिस्थिति एवं मिट्टी की बनावट आदि के भेद के कारण इन तकनीकों में थोड़ी बहुत भिन्नता पाई जाती है। फिर भी यह भिन्नता इतनी जटिल नहीं, जितनी कि आज की तथाकथित पाश्चात्य इंजीनियरिंग एवं तकनीक ने जटिल बनाकर प्रस्तुत किया है। कुएं, बावड़ी, जोहड़, टाँके आदि व अन्य अनेक परम्परागत जल प्रबन्ध तकनीकों को अलग अध्याय में समझाया गया है। आज के वैज्ञानिक युग में अधिकतर जल प्रबन्ध तकनीकें, परम्परागत ज्ञान व विधियों का ही सुधरा हुआ व विकसित रूप है। अन्तर केवल इतना है कि इन विधियों के प्रयोग हेतु परिष्कृत यन्त्रों का निर्माण हो गया है, जबकि प्राचीन समय में सभी भौतिक कार्य मानव श्रम व साधारण यन्त्रों से होता था।

भारत में परम्परागत और वर्तमान जल प्रबन्धन व्यवस्था

जल की आवश्यकता मुख्य रूप से सिंचाई और पीने के पानी के रूप में होती है। पीने के पानी की जरूरत मनुष्यों और मवेशियों दोनों को समान रूप से होती है। पक्षियों और जंगली जानवरों को भी जल की आवश्यकता होती है। सिंचाई के लिए फलों, सब्जियों, अनाज की फसलों, वृक्षों, चरागाह सभी को जल की जरूरत होती है। भारत में परम्परागत रूप से जल प्रबन्ध व्यवस्था जोहड़ों, तालाबों, कुओं, छोटे-बड़े बाँधों, बावड़ियों और टाँकों द्वारा की जाती थी। वानस्पतिक मेड़ों, छोटी खाइयों-नालियों-ब्रेकरों (खंचियों) तथा खुली जुताई के द्वारा भी वर्षा के पानी को भूमिगत करके खेतों और जंगलों की नमी को लम्बी अवधि तक बनाये रखने में मदद ली जाती रही है। वर्तमान जल प्रबन्ध व्यवस्था में नहरों ने प्रमुख स्थान ले लिया है। मगर नहरें वहीं पर बनाई जाती हैं, जिन क्षेत्रों में 12 महीनों बहने वाली नदियाँ मौजूद हैं। जैसे गंगा नहर या यमुना नहर अथवा बड़े बाँध बनाकर वर्षा प्रवाह का पानी बड़ी मात्रा में इकट्ठा कर लिया गया है; जैसे-भाखड़ा। सूखे और अर्द्ध सूखे क्षेत्रों में परम्परागत साधनों का ही प्रयोग होता है। अनेक पाइप लाइनों और नलकूपों का उपयोग वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत किया जाता है। यहाँ पर पहले परम्परागत फिर वर्तमान जल प्रबन्ध व्यवस्था पर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है।

(अ) परम्परागत जल प्रबन्ध व्यवस्था- जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि भारत में परम्परागत रूप से जोहड़ों, कुओं, बाँधों व अनेक अन्य साधनों द्वारा जल की व्यवस्था की जाती रही है। कुओं, जोहड़ों तथा बाँधों का इस व्यवस्था में प्रमुख योगदान रहा है। यहाँ जल व्यवस्थाओं पर बिन्दुवत् विचार किया जा रहा है:

1. कुआं, नलकूप एवं हैण्डपम्प- ये तीनों भू-गर्भ जल को उपयोग में लाने के लिए धरती के पेट से निकालने के मार्ग हैं। कुएँ में जल सतह खुली होती है और जल को बाल्टी या डोल द्वारा निकाला जा सकता है। नलकूप में जल बन्द नल से सीधे पम्प में जाता है। हैंडपम्प हाथ से चलाया जा सकने वाला नलकूप होता है।

1.1. कुआं- कुओं का परम्परागत रूप से बड़ा महत्त्व रहा है। इनका जल न केवल पीने के पानी के रूप में प्रयुक्त होता रहा है बल्कि सिंचाई के लिए भी इनके जल का विशेष महत्त्व रहा है। पूर्व काल में इनके जल द्वारा ही मुख्य रूप से सिंचाई की जाती रही है। आज भी इनके महत्त्व में कोई कमी नहीं आई है। प्रत्येक गाँव में खेती की जमीन के अनुपात में कुओं की संख्या पाई जाती है। कुओं की गहराई और चौड़ाई, कुएँ में उपलब्ध जल की मात्रा, बनाने वालों की जरूरत और क्षमता पर निर्भर करती है। कुएँ कच्चे और पक्के दोनों प्रकार के होते हैं, मगर कच्चे कुएँ अल्पकालिक और अस्थाई ही होते हैं और शीघ्र ही मिट्टी भर जाने से खराब हो जाते हैं। अत: पक्के कुएँ ही स्थाई और कामयाब होते हैं। कुओं से सिंचाई के लिए पानी निकालने का परम्परागत तरीका 'चड़स' (चमड़े का बड़ा थैला) है। इसे बैलों की मदद से खींच कर पानी निकाला जाता था। यह तरीका आज भी अनेक स्थानों पर अपनाया जाता है। रहट भी बहुत पुराना तरीका है। आजकल बिजली या डीजल के पम्पसैटों से भी कुओं से पानी निकाला जाता है। कुओं को बनाते समय, सर्वप्रथम ऐसे स्थान का चुनाव किया जाता है, जहाँ पर जल उपलब्ध होने की पूरी संभावना होती है। फिर एक गहरा गड्ढा खोद कर, उसमें लकड़ी का बना गोल घेरा, जिसे नींव-चक्र कहा जाता है, डालते हैं। नींव चक्र के लिए ऐसे पेड़ की लकड़ी प्रयोग में ली जाती है, जो पानी में खराब नहीं होती।

घेरे या नींव-चक्र का व्यास उतना ही रखा जाता है, जितना कुएँ का रखना होता है। रेतीली जमीन में इस नींव-चक्र के ऊपर ईंट या पत्थर तथा सीमेन्ट या चूने की वृत्ताकार दीवार बनाते चलते हैं। इस दीवार के बीच में से या घेरे के अन्दर से मिट्टी निकालते जाते हैं। नीचे से मिट्टी निकलने के कारण नींव चक्र नीचे जमीन में धँसता जाता है। उस पर दीवार को बेलनाकार रूप में ऊपर की ओर उठाते जाते हैं। यह काम तब तक जारी रहता है जब तक कुएँ में पानी न आ जाये। कुएँ में जब आवश्यकतानुसार पानी उपलब्ध हो जाता है, तब पक्की व वत्ताकार दीवार को जमीन से कुछ ऊपर उठाकर छोड़ देते हैं। कुछ स्थानों पर जहाँ कठोर भूमि होती है, वहीं नींव-चक्र का उपयोग नहीं करते, सीधे ही चिनाई शुरू कर देते हैं। दीवार के भूमि सतह से ऊपर उठे भाग को जगत कहते हैं।

पृथ्वी की ऊपरी सतह बहुत सी अलग-अलग मोटाई और अलग-अलग रंध्रता की तहों से बनी होती है। इनमें से जिन तहों में रंध्रता अधिक हो, जैसे बालू या बजरी की तह या चूर-चूर हुई चट्टानी तह, उसमें जल की उपलब्धता अधिक रहती है। ऐसी तहों को जलधारक-तह (एक्वीफर) कहते हैं। दूसरी ओर बहुत कम रंध्रता वाली चिकनी मिट्टी या ठोस चट्टानी तह में पानी की उपलब्धता बहुत कम होती है और इन्हें जल हीन-तह (एक्वीलूड) कहते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जलहीन तह को 'मोटा' कहते हैं। नदी-घाटी के मैदानों में कुएँ को पहली जलहीन-तह या मोटा की तली के पास ले जाकर छेद द्वारा (जिसे बुम कहते हैं) उसके नीचे की जल धारक तह से जोड़ देने पर

प्रचुरता से स्वच्छ जल मिलता है या फिर कुएं को जल-धारक तह की तली तक ले जाते हैं। जल-धारक-तह के बीच में छोड़ने के बाद कुएँ के धँस जाने का डर रहता है। चट्टानी क्षेत्रों में तो मोटा या बालू की तह मिलती ही नहीं। अत: जहाँ चूर-चूर या तरेड़ वाली चट्टान आये, वहाँ दीवार में पानी आने के लिए छेद छोड़ते जाते हैं।

1.2. रिंग-वैल या रिंग कुएँ- आजकल कहीं-कहीं कुएँ की दीवार वहीं पर चिनने के स्थान पर सीमेन्ट-कंक्रीट की पहले से बनी बनाई रिंग उपयोग कर लेते हैं। ये रिंग डेढ़ या दो मीटर व्यास की और 0.5 या 0.6 मीटर ऊँचाई की किसी केन्द्रीय स्थान या फैक्ट्री में बना ली जाती है और कुआँ गलाते समय एक रिंग के ऊपर दूसरी बिठाते जाते हैं। इससे कुआँ शीघ्र, मजबूत और सस्ता बन जाता है। पर यह चट्टानी क्षेत्र में उपयोग नहीं की जा सकती। मध्य प्रदेश में रिंग कुएँ काफी लोकप्रिय हुए हैं।

1.2.1. कुएँ की जल-क्षमता ज्ञात करना- इसको निकालने के लिए बहुत ही सरल तरीका उपयोग में लाया जाता है। जल-क्षमता से अभिप्राय इस बात से है कि कुओं से प्रति घंटा कितना जल उपलब्ध हो सकता है, या 12 या 24 घंटे में जल कितनी मात्रा में किसी निश्चित कुएँ से प्राप्त किया जा सकता है। इस बात की जानकारी से कुएँ के जल के उपयोग की योजना के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण सहयोग मिलता है। इस प्रकार किसी भी कुएँ से कितने खेत की सिंचाई हो सकती है या कितने पशुओं को पानी पिलाया जा सकता है या अन्य किसी भी योजना (कुएँ के जल संबंधी) के निर्माण एवं क्रियान्वयन में कुएँ की जल क्षमता का ज्ञात होना अति आवश्यक है। कुएँ की जल-क्षमता ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम तो कुएँ का व्यास ज्ञात कर लेते हैं। व्यास का आधा करने से कुएं की त्रिज्या निकल आती है। इसके बाद पम्प सैट, बिजली, चड़स या अन्य किसी भी साधन की मदद से कुएँ का जल निकालना शुरू कर देते हैं और लगभग काफी जल निकालने के बाद यह मालूम करते हैं कि किसी निश्चित समय में, कुएँ के जल स्तर में कितनी वृद्धि होती है। जल स्तर जितने फीट या मीटर ऊपर चढ़ता है, उस ऊँचाई को और साथ ही साथ जल स्तर के ऊपर उठने में लिए गए समय को नोट कर लेते हैं। फिर कुएँ के तल के क्षेत्रफल को उस ऊँचाई से गुणा करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि किसी निश्चित समय में पानी का कितना आयतन बढ़ता है। इस बढ़े हुए आयतन को समय से भाग देकर प्रति घंटा बढ़ने वाले जल के आयतन का ज्ञान हो जाता है। यह ही कुएँ की जल क्षमता कहलाती है।

बढ़े जल का आयतन = पाई × त्रिज्या का वर्ग × बढ़े जल की ऊँचाई

प्रति घंटा जल क्षमता = बढ़े जल का आयतन/जल बढ़ने में लिया गया समय

पाई का मान 3.14 होता है, पर व्यावहारिक रूप में तीन लिया जा सकता है।

1.3. नलकूप – इनमें सामान्य कुओं से केवल यह अन्तर है कि सब ओर कच्ची या पक्की दीवार वाला ऊपर से खुला कुआं बनाने के बजाय एक धातु या अन्य उपयुक्त पदार्थ, जैसे-कंक्रीट, एसबेस्टस, सीमेन्ट या प्लास्टिक का नल पृथ्वी में गला दिया जाये और उसे सीधा

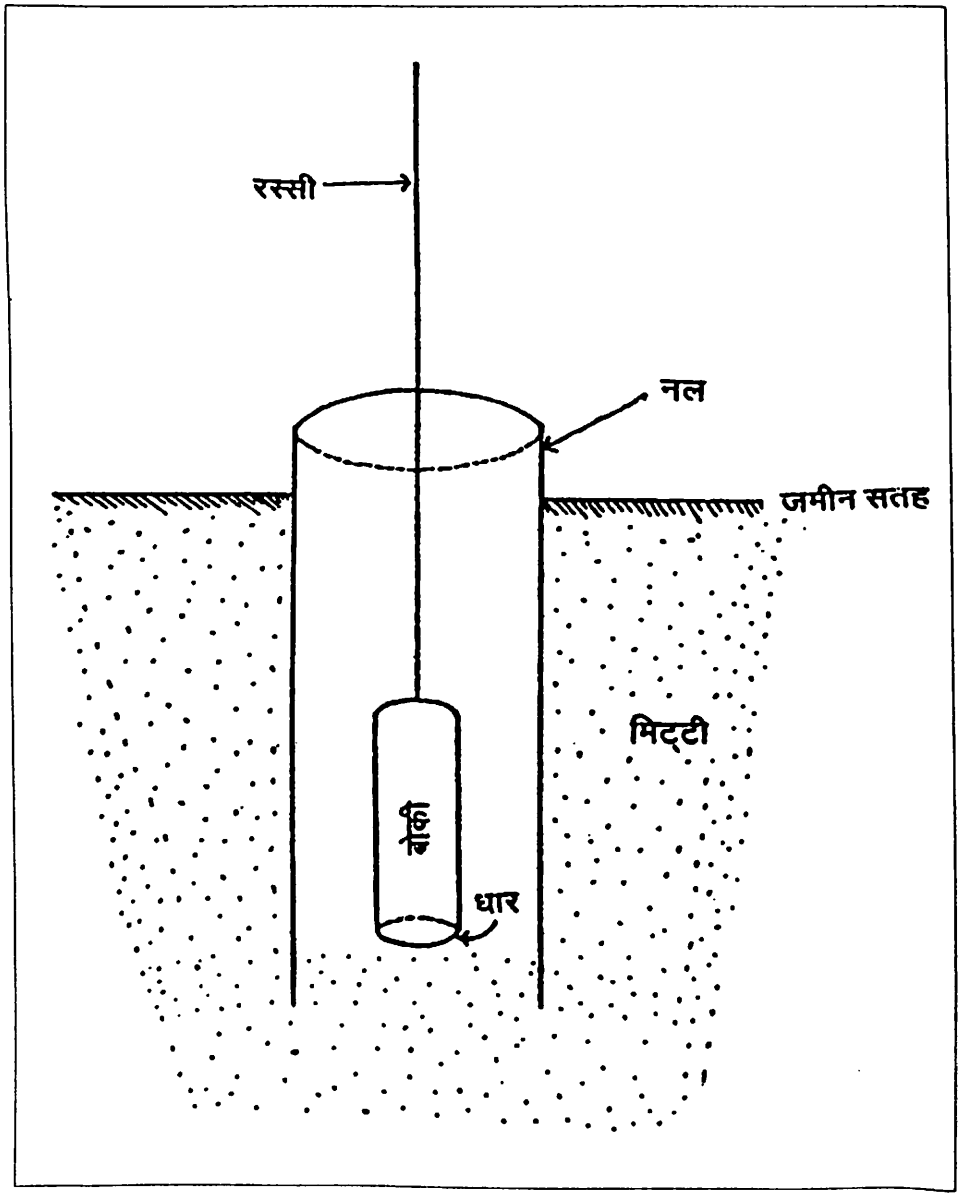

पम्पिंग सेट से जोड़ दिया जाये। बहुत कम व्यास का (सामान्यतया 10-15 सेंटीमीटर या अधिकाधिक 30 सेंटीमीटर) और पतली दीवार का होने से नल भूमि में बहुत गहराई तक जा सकता है, जबकि बहुत गहरा कुआँ बनाना महंगा भी पड़ेगा और असुरक्षित रहेगा। जहाँ-जहाँ यह नल, जल-धारक परतों या तहों से गुजरे, वहाँ पानी अन्दर आने देने के लिए छिद्र वाला जालीदार नल (स्ट्रेनर) लगा देते हैं। नीचे गलाते समय कुएं की तरह बीच में से मिट्टी निकालने के लिए मनुष्य तो अन्दर नहीं जा सकता लेकिन इसके लिए कुछ कम व्यास के एक धारदार टुकड़े को अन्दर डाल कर बार-बार उठाकर पटकते हैं। कीचड़, मिट्टी, बालू आदि इस टुकड़े में, जिसे 'बोकी' कहते हैं, भर जाते हैं। 8-10 बार ऐसे पटकने पर यह टुकड़ा भर जाता है तो इसे बाहर खींच कर खाली कर देते हैं और फिर यही प्रक्रिया जारी रखते हैं। कुछ देर बाद नल को घुमाकर नीचे उतार देते हैं। इस प्रक्रिया को नल-गलाना या बोरिंग कहते हैं, चित्र देखें। दूसरा विकल्प ड्रिल मशीन द्वारा भूमि में छेद करके नल गलाने का होता है। यह अपेक्षाकृत महंगा पड़ता है और गहरे नलकूप लगाने के लिए प्रयोग होता है। नलकूप केवल वहीं सफल होते हैं, जहाँ अच्छी जलधारक-तह उपलब्ध हो; जो बड़ी नदियों की घाटियों में ही संभव होता है।

1.4. हैंड पम्प – यह मूलत: नलकूप ही होता है और उन्हीं विधियों से बोरिंग या ड्रिल मशीन से गलाया जाता है। बस, बजाय पम्पिंग सेट से जोड़ने के, इसके ऊपर हत्थीदार हैंड पम्प बैठा दिया जाता है। यह पीने तथा पशुओं को पानी पिलाने के लिए स्वच्छ-सुरक्षित जल पाने का सरल व सस्ता ढंग है, जो बहुत लोकप्रिय हुआ है। कम पानी की आवश्यकता होने पर यह घटिया जल धारक परतों पर भी चल जाता है।

2. जोहड़/ताल/तालाब/पोखर/पुकुर/सर/सरोवर

2.1.1. परिचय-भारतीय जल प्रबन्ध व्यवस्था में जोहड़ों का बहुत अधिक योगदान रहा है। ये रचनाएँ परम्परागत रूप से अब तक चली आ रही हैं। इनके जल से सिंचाई तथा पीने के लिए पानी उपलब्ध होता रहता है। इन रचनाओं का निर्माण कर लेने वालों को पहले 'गजधर' कहा जाता था। वर्षा का नदी/नालों या अन्य जल यदि किसी प्राकृतिक निचले स्थान में भरा रहे और इस जल की मात्रा काफी अधिक हो तो उसे झील या सरोवर कहते हैं। जैसे नक्की झील (आबू), डल झील (श्रीनगर), मानसरोवर आदि। छोटे-छोटे आकार के होने पर इन्हें ताल या और छोटा होने पर तलाइयाँ भी कहते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार के निचले स्थान पर बीच में गड्ढा होता है और चारों ओर ऊँची भूमि, जहाँ से बह कर आया जल बीच के गड्ढे में जमा हो जाता है। कई बार मानव अपनी आवश्यकता और सुविधा के अनुसार उपयुक्त स्थान चुनकर वहाँ कृत्रिम रूप से बीच में से मिट्टी निकाल कर या पानी निकलने के मार्ग को अवरुद्ध कर जल इकट्ठा कर लेता है। ऐसे जल संग्रह को जोहड़/ताल/तालाब/ पोखर/पुकुर/सर/सरोवर आदि नाम दिये जाते हैं। बंगला भाषा में इन्हें पुकुर, बिहार व पूर्वी उत्तर प्रदेश में पोखर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा राजस्थान में सामान्यतया जोहड़ कहा जाता है। यदि ये तीन तरफ से पक्की दीवार से घिरे हों तो इन्हें तालाब कहा जाता है। काफी गहरे और पक्की दीवार से घिरे सीढ़ीदार चौकोर कुएँ को राजस्थान में बावड़ी /बावली की संज्ञा दी जाती है। इनमें भूमिगत जल होता है। इनके डिजाइन और बनावट में अन्तर भले ही हो (राजस्थान की कई बावड़ी तो बड़े कलात्मक निर्माण हैं) पर सिद्धान्त एक ही है।

जोहड़ निर्माण के लिए चारों ओर दीवार बनाना आवश्यक नहीं होता। अक्सर केवल बहाव के सामने एक ओर ही दीवार बनाकर पानी निकलने का रास्ता अवरुद्ध करने पर जोहड़ बन जाता है। ढालू मैदानों में जोहड़ बनाने के लिए तीन ओर रोक या दीवार बनानी पड़ती है और बिल्कुल समतल के मैदानों में तो बीच में खोद कर चारों ओर ही रोक या दीवार बनानी पड़ती है। पक्की (पत्थर या ईंट की) चिनाई से बने बाँधों को, जिनमें अतिरिक्त पानी को दीवार के ऊपर से निकलने की व्यवस्था हो, उन्हें दक्षिण भारत में एनिकट भी कहते हैं।

2.1.2. राजस्थान की जोहड़ परम्परा- कम वर्षा वाले सूखे तथा अर्द्धसूखे क्षेत्रों में बने इन तालाबों के जल की एक-एक बूंद का मूल्य राजस्थान में चाँदी के कणों से कम नहीं है। यहाँ के समाज ने प्रकृति के इस अमूल्य वरदान को सँजोकर रखने और सँभालकर उपयोग करने की समझ और कला भली-भाँति विकसित कर रखी थी। प्रत्येक गाँव में एक या एक से अधिक 'गजधर' होते थे, जो जल व्यवस्था के ज्ञान और कला के विशेषज्ञ होते थे तथा जल के सफल-सुव्यवस्थित प्रबन्ध में परामर्श देते और उसकी देखभाल करते थे। गजधर प्रथा 19वीं शताब्दी तक चलती रही और आधुनिक आर्थिक दबावों, बढ़ते स्वार्थ और सरकारी दखल के कारण धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त हो गई। अब तो जल प्रबन्धन की परम्परागत जानकारी/समझ बस गाँव के कुछ बड़े-बूढ़ों के ही पास मिलती है, वह भी एक सीमा तक ही। राजस्थान के पुराने जोहड़/टाँके/बावड़ी इतने वैज्ञानिक जल संरक्षण में समर्थ, टिकाऊ और कलात्मक तथा मनोहारी होते थे कि आज अपनी विपन्न अवस्था में भी देखते और सराहते ही बनते हैं। कुछ राजस्थानी जोहड़ साथ के चित्रों में दिखाये गये हैं।

2.1.3. एक राजस्थानी जोहड़ की बनावट एवं उसके अंग- अन्तत: तो जोहड़ पानी का एक संग्रह स्थल ही होता है। जितने क्षेत्र में पानी भरे, उसे जोहड़ का जल भराव क्षेत्र या केवल

'भराव' कहते हैं। पानी को भराव क्षेत्र से बाहर बह जाने से रोकने के लिए जो मिट्टी की (या पक्की चिनाई की) दीवार बनाई जाती है उसे पाल कहते हैं। जोहड़ के ऊपर के जलागम क्षेत्रों में अधिक वर्षा होने पर जोहड़ की क्षमता से फालतू आये पानी को सुरक्षापूर्वक इस प्रकार बाहर निकाल देने के लिए कि पाल को या आस-पास की किसी अन्य चीज को कोई हानि न पहुँचे, जो मार्ग बनाया जाता है उसे 'अपरा' कहते हैं। यदि जोहड़ में एकत्रित पानी से सीधे नीचे से खेतों की सिंचाई करना हो तो पाल में किसी उचित स्थान पर एक छोटा सा सिंचाई-निकासी-द्वार भी छोड़ा जाता है जो सिंचाई-नाली या गूल या कुहल में खुलता है, पर अधिकतर तो सिंचाई का कार्य जोहड़ से पानी को चमड़े और लकड़ी से बने नौकाकार बर्तन 'डोल' की सहायता से उलीच कर या रहट लगाकर ही किया जाता था। आजकल तो डीजल पम्प सैटों की सहायता से जोहड़ से पानी उठाकर सिंचाई भी की जाती है। जोहड़ से सिंचाई करने का काम राजस्थान के केवल कुछ क्षेत्रों (जैसे-करौली क्षेत्र) में ही किया जाता है; बाकी अधिकांश क्षेत्रों में तो जोहड़ पीने के पानी के लिए, पशुओं के लिए, अन्य जीवों के लिए, नहाने के लिए और कुओं के रिचार्ज के लिए ही बनाये जाते हैं।

2.1.4. जोहड़ों के उपयोग/लाभ : भारत की कृषि-प्रधान ग्रामीण जल-प्रबन्ध व्यवस्था में जोहड़/ पोखर/तालाब/एनिकट से कई प्रकार के लाभ होते थे जिनमें से कुछ नीचे दिये गये हैं :

(क) वर्षा का जल रुक जाने के कारण बाढ़ में कमी, बाढ़ के द्वारा होने वाली जल हानि एवं बाढ़ कृत फसल और सम्पत्ति हानि में कमी। पुराने जोहड़ नष्ट हो जाने से नदी/नालों में अधिक जल प्रवाह से बाढ़ का प्रभाव और स्तर दोनों बढ़े हैं।

(ख) जल प्रवाह की गति कम होने के कारण मिट्टी कटने में रोक। पीछे से आई सिल्ट और चिकनी मिट्टी तलछट के रूप में जोहड़ में जमा होती जाती है, जिससे जोहड़ का जल-भराव क्षेत्र अधिक उपजाऊ हो जाता है।

(ग) जोहड़ में रुके पानी का धीरे-धीरे भूमिगत होकर भू-गर्भ जल में बढ़ोतरी।

(घ) जोहड़ में रुके पानी का पशुओं के, सिंचाई के, घरेलू उपयोगों के, सन/पाट सड़ाने के तथा अन्य ग्रामीण उपयोगों के लिए उपलब्ध होना।

(च) जोहड़ में जमी चिकनी मिट्टी का ईंट बनाने, बर्तन बनाने तथा निर्माण कार्य आदि के लिए उपलब्ध होना।

(छ) अधिक जल होने पर सिंघाड़े एवं कमल जैसी जल में उगने वाली फसलों को उगाने के लिए जोहड़ में जल उपलब्ध होना।

(ज) जल उतर जाने पर खाली हुई भूमि का रबी की फसल के लिए उपलब्ध होना और कम लागत से अधिक फसल देना।

(झ) कुछ परिस्थितियों में मत्स्य पालन।

(ट) जल के साथ बह कर आई गन्दगी का प्राकृतिक रूप से निवारण/प्रशोधन और नदियों को स्वच्छ रखने में योगदान।

(ठ) आस-पास हरियाली और पर्यावरण में सुधार।

2.1.5 पुराने जोहड़ों के नष्ट हो जाने के कारण: इतनी उपयोगी परम्परागत व्यवस्था के पिछली दो शताब्दियों में ह्रास हो जाने के मुख्य कारण निम्न हैं :

(क) जोहड़ों की दीवारों (पाल) की आवश्यक मरम्मत की अनदेखी।

(ख) जोहड़ की अपरा की आवश्यक मरम्मत और देख-भाल की अनदेखी।

(ग) जोहड़ में जमी तलछट व गाद की नियमित और उपयुक्त सफाई/निकासी की अनदेखी।

(घ) जोहड़ में उग आई खरपतवार की सफाई की अनदेखी।

(ङ) जोहड़ की भूमि का घर बनाने, पशु बाँधने या कृषि के लिए अधिग्रहण।

सच में देखें तो धीरे-धीरे गाँव की आत्मनिर्भरता का स्थान राज्य-सरकारों पर बढ़ती निर्भरता द्वारा लिया जाना ही इस परम्परा के ह्रास का मूल कारण है। राज्य सरकारें बड़े बाँधों, नहरों, नलकूपों आदि महंगी परन्तु आधुनिक और आकर्षक व्यवस्थाओं को अधिक महत्त्व देती है, छोटे-छोटे एनीकटों/जोहड़ों को नहीं।

जोहड़/बाँध/एनीकट/टाँका/कुआं आदि विभिन्न जल प्रबन्ध व्यवस्थाओं का सुचारु रूप से आकलन आदि करने के लिए थोड़े-बहुत गणित की आवश्यकता होती है। इन व्यवस्थाओं पर आने वाला खर्च, लाभ, प्रयुक्त होने वाली सामग्री, जल-धारण क्षमता, कैचमेंट, भराव क्षेत्र, अपरा, पाल, पानी की मात्रा एवं आकार-प्रकार निर्धारण आदि अर्थात् इनके समुचित निर्माण के अनुमान को लगाने हेतु कुछ सरल व सामान्य गणितीय सूत्रों को यहाँ पर दिया जा रहा है जिनके प्रयोग द्वारा उक्त संरचरनाओं के सन्दर्भ में विभिन्न पहलुओं को आसानीपूर्वक समझा और समझाया जा सकता है, (जल प्रबन्ध व्यवस्था में प्रयुक्त होने वाले कुछ सामान्य एवं सरल गणितीय सूत्र)।

2.2 जोहड़ निर्माण के विभिन्न चरण : नये जोहड़ों के निर्माण की प्रक्रिया को निम्न चरणों में बांटा जा सकता है :

(क) जोहड़ निर्माण-स्थल का चुनाव। इस काम के लिए गाँव

के लोगों (खास तौर से किसानों व पशु-पालकों) को अवश्य साथ ले जाएँ।

(ख) उक्त स्थानों पर आगौर या जलागम क्षेत्र की माप या आकलन।

(ग) उक्त आगौर या जलागम क्षेत्र से प्राप्त होने वाले औसत वार्षिक जल, वर्षाकालीन जल एवं लगातार तेज वर्षा से होने वाले संभाव्य अधिकतम जल-प्रवाह का आकलन।

(घ) जोहड़ के जल-भराव वाले क्षेत्र का कंटूर चित्र बनाना।

(ङ) उपर्युक्त कंटूर चित्र से पाल की विभिन्न ऊँचाइयों के लिए जोहड़ का जल भराव क्षेत्र और जल धारण क्षमता ज्ञात करना।

(च) उपलब्ध-जल/जल-धारण क्षमता/जल भराव/आस-पास की स्थिति/लाभार्थी की आवश्यकता व सामर्थ्य आदि को देखते हुए पाल की ऊँचाई तय करना।

(छ) चयनित ऊँचाई के लिए पाल की बनावट, लम्बाई एवं चौड़ाई का निर्धारण।

(ज) अपरा के स्थान का चयन तथा अपरा का डिजाइन।

(झ) पाल में लगने वाली मिट्टी की मात्रा का आकलन और स्रोत का चयन।

(ट) जोहड़ में लगने वाली सामग्री और लागत का आकलन।

(ठ) जोहड़ में एकत्र पानी की मात्रा एवं उसके उपयोग, लाभान्वित क्षेत्र, लाभ का अनुमान, लाभ/लागत अनुपात आदि का आकलन।

(ड) आवश्यक सामग्री, श्रम एवं साधनों का प्रबन्ध।

(ढ) जोहड़ का निर्माण।

यहाँ उपर्युक्त विविध चरणों की, छोटे ग्रामीण जोहड़ों के निर्माण के सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए, चर्चा-विवेचना की जा रही है।

2.2.1 (क) जोहड़ निर्माण स्थल का चुनाव : यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दा है और इस पर निर्मित किये जाने वाले जोहड़ों की सफलता बड़ी सीमा तक निर्भर करती है। स्थल का चयन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

(i) पर्याप्त वर्षा जल का या जलागम क्षेत्र का उपलब्ध होना: यदि पर्याप्त मात्रा में वर्षा का जल ही न आये तो जोहड़ की क्षमता बेकार जायेगी। जहाँ दो धाराएँ मिलती हों वहाँ संगम के नीचे जोहड़ बनाने पर दोनों धाराओं का जलागम क्षेत्र एवं जल-प्रवाह उपलब्ध हो जाने से बड़े जोहड़ के लिए भी पर्याप्त जल उपलब्ध हो जाता है। दूसरी ओर कई बार संगम से कुछ ऊपर दोनों धाराओं पर दो अलग-अलग अपेक्षाकृत छोटे जोहड़ बनाना अधिक सस्ता, सरल और टिकाऊ रहता है। सिद्धान्त रूप से कहा जा सकता है कि धारा पर जितना नीचे की ओर बढ़ते जायें, जलागम क्षेत्र और उपलब्ध जल बढ़ता जाता है और बड़ी (अधिक) क्षमता का जोहड़ बन सकता है।

(ii) जल के उपयोग की दृष्टि से स्थल का उपयुक्त होना : छोटे जोहड़ सदैव उपयोग-स्थल के नजदीक बनाये जाते हैं। पशुओं और घरेलू उपयोग के पानी के लिए जोहड़ गाँव के निकट होना चाहिए। पानी सदैव ऊपर से नीचे की ओर बहता है। इसलिए कुओं के जल स्तर में सुधार के लिए बनाया गया जोहड़ उनके वर्तमान जल स्तर से ऊंची भूमि पर होना चाहिए और खेतों की सिंचाई के लिए बनाया गया जोहड़ या तो उन खेतों से ऊँची भूमि पर होना चाहिए या कम से कम बहुत-नीचा तो नहीं ही होना चाहिए।

(iii) उपयुक्त मिट्टी की बनावट : यदि उद्देश्य जोहड़ों में पानी अधिक समय तक संचित बनाये रखकर उसका अधिक समय तक पशुओं के लिए या अन्य उपयोगों में लेने का हो तो चिकनी मिट्टी की गहरी कुण्ड सरीखी तली अच्छी रहेगी। यदि उद्देश्य संचित जल के अधिक से अधिक भाग को भूमिगत करने का हो तो उथली एवं बलुई या ऊर्ध्वाधर दरारों वाली चट्टानी तली अच्छी रहेगी।

(iv) बाँध-स्थल पर नाके की चौड़ाई और जल भराव क्षेत्र का ढलान : कम से कम चौड़े अर्थात् छोटे नाके पर बाँध बनाने से बाँध की लागत कम आयेगी। बाँध के पीछे जल-भराव क्षेत्र का ढलान कम होना लाभप्रद होता है, क्योंकि इससे कम ऊँचाई के बाँध या पाल से अधिक जल संग्रह किया जा सकता है। यदि जल भराव क्षेत्र अधिक ढालू होगा तब या तो पाल बहुत ऊँची बनानी पड़ेगी या जल भराव बहुत कम रह जायेगा।

(v) समुचित जल भराव क्षेत्र का उपलब्ध होना : एक बार बाँध या पाल के संभावित स्थल और ऊँचाई का अनुमान होने पर यह देखा जा सकता है कि उस स्थान पर उतना ऊँचा बाँध या पाल बनाने के पीछे कहाँ तक पानी भरेगा और ऐसे जल भराव क्षेत्र के भूमि स्वामित्व व भूमि उपयोग को देखकर, यह निर्णय लिया जा सकता है कि उसमें कोई कठिनाई तो उत्पन्न नहीं होगी। जैसे-बीच में किसी का खेत, झोंपड़ी, सड़क या खलियान तो नहीं आ जायेगा। जहाँ तक संभव हो बड़े वृक्ष भी भराव क्षेत्र में न पड़ें तो अच्छा है।

(vi) यदि नाके का स्थल चट्टानी हो तो चट्टानी परतों का ढाल: यदि चट्टानी नाका- स्थल पर चट्टानों की परतों का ढाल बाहर की ओर होगा तो परत-जोड़ों के साथ बहकर पानी बाहर निकल जायेगा। अत: चट्टान-परतों का ढाल नाके के बाये-दायें दोनों ओर से नाके की ओर और पाल की बाहरी साइड से जोहड़ के अन्दर की ओर होना अच्छा होगा।

चट्टानों की परतों का ढाल

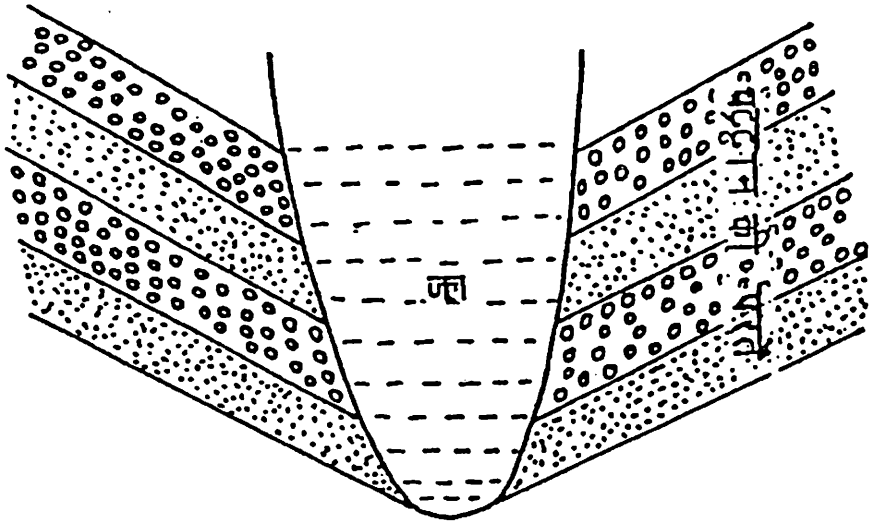

चट्टान की परतों का ढाल अन्दर की ओर (ऊपर)

चट्टान की परतों का ढाल बाहर की ओर (नीचे)

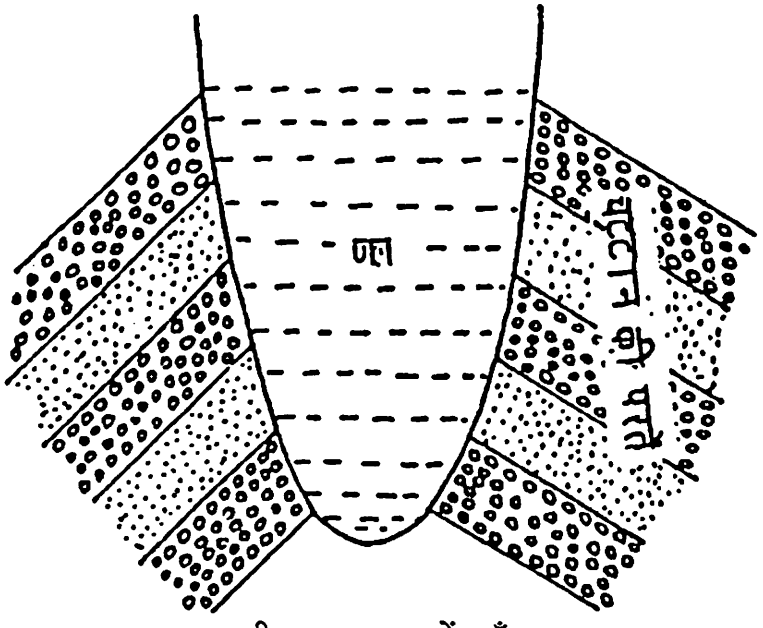

जमीन या चट्टान में खाँचा

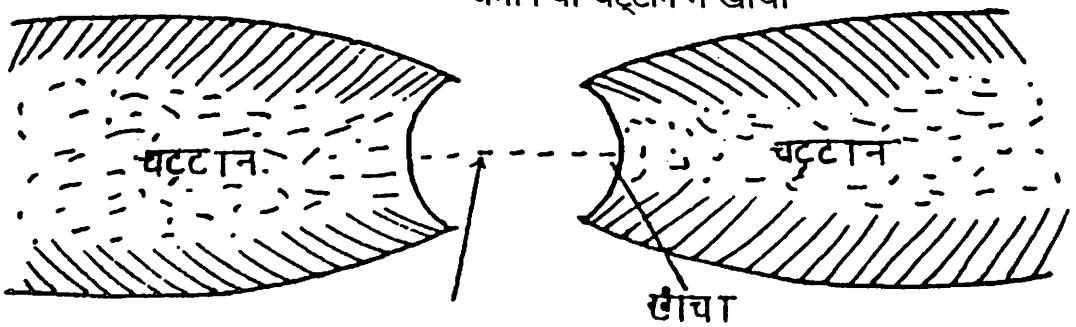

बाँध की दीवार

(vii) मिट्टी की (कच्ची) पाल के लिए तो नींव तथा दोनों ओर के प्राकृतिक किनारे कैसे भी हों, कोई अन्तर नहीं पड़ता पर यदि पूरा बाँध या कुछ भाग पक्का (ईंट या पत्थरों की चिनाई का) हो तो नींव पक्की, स्थायी तथा रिसाव, तरेड़ आदि से रहित होनी चाहिए।

(viii) निर्माण की लागत और सुविधा की दृष्टि से निर्माण के लिए आवश्यक मिट्टी, बालू, पत्थर आदि यथासंभव निकट उपलब्ध हों और ढुलाई सुविधाजनक हो तो अच्छा रहता है।

जोहड़ निर्माण के स्थल के चुनाव में सबसे महत्त्वपूर्ण तो जोहड़ से लाभान्वित होने वाले वर्ग, समाज या पूरे गाँव की सोच, समझ, इच्छा और सुविधा होती है। तकनीकी/वैज्ञानिक पहलुओं पर जैसे कि ऊपर दिये गये हैं, ध्यान दिलाया जाना चाहिए, पर अन्तिम निर्णय समाज की समझ और अनुभव पर ही छोड़ देना चाहिए।

2.2.1 (ख) चयनित स्थान पर बने जोहड़ का जलागम क्षेत्र निकालना :

जैसा कि वाटर-शैड (पनढाल) की परिभाषा में पहले ही कहा जा चुका है, यह जलागम क्षेत्र या आगौर वह तमाम भूमि होगी जिस पर बरसा हुआ जल इस निर्धारित स्थान पर पहुँचे। इसकी सीमा या परिधि एक ऐसी कल्पित रेखा होगी, जिसके एक ओर का जल आगौर के अन्दर की ओर बहकर जोहड़ में पहुँचे और दूसरी ओर का जल दूसरी ओर बहकर आगौर के बाहर ही बाहर रहे। इस कल्पित रेखा को हम जल प्रवाह विभाजन रेखा या जल विभाजन रेखा या आगर सीम कह सकते हैं। आगर-सीम सभी समोच्च रेखाओं या कंटूरों को लम्बवत् काटती है। अत: कंटूर चित्र पर आगर-सीम लगाना बहुत सरल होता है। चित्र पर प्रस्तावित जोहड़ स्थल का सबसे नीचा दिखने वाला स्थान चुनें और उससे दोनों ओर की कंटूर रेखा पर लम्ब डालें, फिर इस लम्ब को क्रमश: अगली ऊँची कंटूर पर लम्ब डालते हुए बढ़ाते जायें, जब तक दोनों ओर से आते ये लम्ब एक-दूसरे से मिल न जायें। आगर-सीम लग जाने पर इसकी परिधि के अन्दर पड़ने वाला क्षेत्र ही जोहड़ का जलागम क्षेत्र या आगौर होगा। इसका क्षेत्रफल इसे वर्गों, आयतों या त्रिभुजों में बाँटकर और उसकी नाप करके आकलित कर लिया जाता है या यदि उपलब्ध हो तो प्लेनों मीटर (क्षेत्रफल मापी) यन्त्र के द्वारा नाप लिया जाता है। यूँ आगौर निकालने का सर्वोत्तम ढंग तो कंटूर-चित्र पर आगर-सीम लगाकर ही है। परन्तु छोटे जोहड़ बनाते समय यदि कंटूर चित्र उपलब्ध न हो तो सीधे फील्ड पर (मैदान पर) देखकर अनुमान से आगर-सीम का चित्रण कर लिया जाता है। इस कार्य में हैण्ड स्प्रिट लेवल की सहायता भी ली जा सकती है। चित्रण के बाद इसका क्षेत्रफल नाप कर आकलित कर लिया जाता है।

जलागम-क्षेत्र या आगौर का क्षेत्रफल सदा वर्गमीटर में या अधिक होने पर हैक्टेयर या वर्ग-किलोमीटर में दिया जाना चाहिए।

2.2.1 (ग) जोहड़ निर्माण– स्थल पर उपलब्ध जल का आकलन: यह तो स्पष्ट ही है कि जोहड़ के उपर्युक्तविधि से आकलित जलागम क्षेत्र पर से बहने वाला सारा जल जोहड़ स्थल पर ही उपलब्ध होगा और यह भी कि इससे बाहर का जल जोहड़–स्थल पर नहीं पहुँचेगा। क्योंकि बाहर का जल तो आगर–सीम से ही विपरीत दिशा में बाहर कीं ओर बहेगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जोहड़–स्थल पर आने वाला जल, आगौर पर बरसे जल का वह भाग होगा, जो पृथ्वी के ऊपर होकर बहता हुआ चले। कुल वर्षा का कुछ भाग वायु में उड़ जाता है, कुछ पेड़–पौधों की पत्तियाँ सोख–रोक लेती हैं, कुछ पृथ्वी में सोखा जाकर भू–गर्भ जल में मिल जाता है और कुछ पृथ्वी की सतह पर ही गड्ढों आदि में रुक जाता है। केवल शेष बचा हुआ भाग ही पृथ्वी की सतह पर बहता हुआ नदी–नालों या जोहड़ों तक पहुँचता है। यह भाग कम ढाल वाली बलुई मिट्टी में कम होगा और घने जंगलों तथा घास के मैदानों में तो और भी कम। अधिक ढाल वाली पथरीली भूमि में यह प्रवाह वाला भाग अधिक होगा, खासकर यदि जंगल कट चुके हों और चट्टानें नंगी हों, जैसे–अरावली की पहाड़ियाँ। साथ ही यदि वर्षा रुक–रुक कर हल्की–हल्की पड़े तो प्रवाह वाला भाग कम होगा और तेज मूसलाधार वर्षा में अधिक होगा। प्राथमिक अनुमान के लिए हम तालिका–5 में दिये भाग को वह भाग मान सकते हैं जो भूमि सतह पर बहता हुआ प्रवाह बने। इसको उस प्रकार के जलागम क्षेत्र पर बरसे जल में गुणा करके जोहड़ स्थल पर आने वाले जल का आकलन कर लेते हैं :

तालिका–5 वर्षा का प्रवाह के रूप में उपलब्ध होने वाला भाग (छोटे जोहड़)

क्र.सं.	जलागम क्षेत्र का प्रकार	वर्षा का स्वरूप			
		वार्षिक वर्षा	वर्षा काल की वर्षा	वर्षा का एक दौर (3–4 दिन)	एक तगड़ा दौमड़ा
1.	पक्का निर्मित स्थल	0.75	0.80	0.90	0.95
2.	नंगी पहाड़ियाँ/चट्टानी भूमि	0.75	0.80	0.90	0.90
3.	ऊँची–नीची चट्टानी भूमि एवं मध्यम श्रेणी की वनस्पति	0.45	0.50	0.66	0.75
4.	खेत/चरागाह/बलुई भूमि	0.33	0.40	0.50	0.60
5.	सघन जंगल, कम ढाल वाली भूमि	0.25	0.30	0.40	0.50

उपर्युक्त कारक (आँकड़े) केवल छोटे जलागम क्षेत्रों के लिए (10 हैक्टेयर से कम) पर प्रयुक्त किये जायें। यदि जलागम क्षेत्र 10 से 100 हैक्टेयर के बीच हो तो उपलब्ध जल की मात्रा में 10 प्रतिशत कमी और कर ली जाये। क्योंकि दूर से आता जल बीच में ही वाष्पीकृत हो जाता है या पेड़–पौधों या भूमि द्वारा सोख लिया जाता है अथवा बीच के गड्ढों आदि में रुका रह सकता है। इसी प्रकार 100 से 10,000 हैक्टेयर आगौर के लिए प्राप्य जल में 15 प्रतिशत की और उससे भी बड़े क्षेत्र के लिए 20 प्रतिशत की कमी कर लेनी चाहिए। साथ ही उपर्युक्त कारक केवल उत्तर–पश्चिम भारत (पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात), मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और पठारीय महाराष्ट्र में उपयोग किये जायें, समुद्र के निकट या पूर्वोत्तर भारत में नहीं।

यह बात समझ लेने और ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्तआकलन में यह माना जा रहा है कि वर्षा में गिरे जल को वाष्पीकृत होने, भूमिगत होने, वनस्पतियों द्वारा सोखे जाने या गड्ढे आदि में रुक जाने में कुछ न कुछ समय और अवसर लगता है। पर प्रकृति में यदा–कदा ऐसे

अवसर भी आते हैं, जब पहले की वर्षा से ताल-तलैया, गड्ढे सभी लबालब भरे हों तथा भूमि, वनस्पति और वायु मण्डल भी जल से पूरी तरह संतृप्त हों और अब जैसे कुछ समय के लिए टूट पड़े आसमान, फट जायें बादल और हो जाये मूसलाधार वर्षा; ऐसे में कारक और गणना सब धरे रह जाते हैं और प्रवाह एकदम से इतना आ जाता है कि जहाँ वश चले पेड़-पौधे, घर-मकान, मेंड़, तालाब, बाँध आदि सब बहा ले जाये। ऐसा प्रवाह बार-बार नहीं आता बस कई वर्षों में एक बार या अधिक से अधिक वर्ष में एकाध बार। परन्तु ऐसे अति प्रवाह का भी कुछ अनुमान जरूरी है, जिससे ऐसा प्रबन्ध किया जा सके कि यह अति प्रवाह बिना अपने जोहड़ को नुकसान पहुँचाये निकल जाये और किया गया सारा परिश्रम और धन पहली ही वर्षा में नष्ट न हो जाये।

यदि ऐसे बादल फटने वाले समय की वर्षा की रफ्तार मिलीमीटर प्रति मिनट में ज्ञात हो और यह मान लिया जाये कि बरसने वाला जल पूरे का पूरा प्रवाह में परिवर्तित होता जा रहा है, क्योंकि भूमि, वनस्पति वायु तो सब पहले ही पूरी तरह छके (संतृप्त) बैठे हैं तो,

अधिकतम प्रवाह (घन मी. प्रति सेकण्ड) = आगर का क्षेत्रफल (वर्ग मी. में) × वर्षा की रफ्तार (मिलीमीटर प्रतिमिनिट में) × 1/60,000

इस प्रकार 1 मिलीमीटर/मिनट या 6.0 सेन्टीमीटर/घन्टे की तेज वर्षा, 6 हैक्टेयर या 60,000 वर्गमीटर क्षेत्रफल के आगौर से 1 घन मी./सेकण्ड प्रवाह उत्पन्न करेगी। उत्तर-भारत में इससे तेज वर्षा की अपेक्षा करना कठिन लगता है।

अधिकतम प्रवाह निकालने के लिए कुछ इंजीनियरों ने पिछले अनुभव के आधार पर कुछ सूत्र दिये हैं। इनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं :

(i) डिकेन्स का सूत्र : उत्तर-भारत की नदियों के लिए विकसित अधिकतम प्रवाह (घन मी./प्रति सेकण्ड) = 1/3 (आगर का क्षेत्रफल हैक्टेयर में) घात 0.75

इस सूत्र से गणना करने पर 6 हैक्टेयर आगर के लिए अधिकतम प्रवाह 1.25 घन मीटर प्रति सेकण्ड आयेगा, जो कुछ अधिक है। सामान्यतया इस सूत्र का उपयोग 100 हैक्टेयर से बड़े आगौर के लिए करना चाहिए।

(ii) राइब्ज का सूत्र : पठारी/केन्द्रीय भारत के लिए विकसित अधिकतम प्रवाह (घन मी.प्रति सेकण्ड) = 0.4 (आगर का क्षेत्रफल हैक्टेयर में) घात 0.66

6 हैक्टेयर आगर के लिए अधिकतम प्रवाह को यह डिकेन्स से भी अधिक 1.3 घन मी. प्रति सेकण्ड देता है। इसका उपयोग भी 100 हैक्टेयर से बड़े आगर के लिए ही उचित है।

(iii) इंग्लिश का सूत्र : पश्चिमी क्षेत्र के लिए विकसित अधिकतम प्रवाह (घन मी. प्रति सेकण्ड)

$$= \frac{16 \times \text{आगर का क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)}}{64 + \text{आगर का क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)}}$$

छोटे आगर के लिए अधिकतम प्रवाह यह भी अधिक ही देता है। यह सब देखते हुए उत्तर-भारत में छोटे जलागम क्षेत्रों के लिए अधिकतम प्रवाह को 1/6 × आगर का क्षेत्रफल (हैक्टेयर में) घन मी. प्रति सेकण्ड लेना पर्याप्त होगा।

2.2.1 (घ). जोहड़ के जल भराव वाले क्षेत्र का कंटूर-चित्र तैयार करना : जोहड़ अथवा बाँध/बन्धी के संबंध में सभी निर्णय जैसे-पाल की जगह-जगह पर ऊँचाई, पाल में लगने वाली मिट्टी और अन्य सामग्री की गणना, जल भराव क्षेत्र की परिधि ज्ञात करना, जल धारण क्षमता, अपरा का डिजाइन आदि सभी उस क्षेत्र के सही कंटूर-चित्र बना पाने पर निर्भर करते हैं। यूं तो यदि पूरे जल ग्रहण क्षेत्र (आगौर) का सही और विस्तृत कंटूर-चित्र बने तब तो बहुत ही अच्छा, परन्तु आगौर की आवश्यकता तो कुल उपलब्ध जल और अधिकतम प्रवाह निकालने के लिए ही पड़ती है, जिनमें वैसे भी बहुत अनिश्चितता रहती ही है और मात्र अनुमान ही लगाना पड़ता है। फिर आगौर का क्षेत्रफल भी बड़ा हो जाता है। जिसका (पूरे का) सर्वेक्षण करना कठिन होता है। जल भराव क्षेत्र तो अपेक्षाकृत काफी छोटा होता है और इसका सही और विस्तृत कंटूर जानना अत्यन्त आवश्यक होता है। अत: जल भराव क्षेत्र का कंटूर-चित्र पिछले अध्याय में दी गई विधि से छोटे जोहड़ के लिए 1 सेन्टीमीटर = 10 मीटर पैमाने और बड़े बाँध के लिए 1 सेमी = 50 मी. या 1 सेमी. = 100 मी. पैमाने पर बना लेना चाहिए। बहुत बड़े कार्य के लिए तो किसी प्रशिक्षित इंजीनियर/सर्वेयर (सर्वेक्षण कर्ता) से ठीक और विस्तृत कंटूर-चित्र बनवा लेना चाहिए। कंटूर-अन्तराल छोटे जोहड़ के लिए समतल भूमि में 1 मी. और ऊँची-नीची भूमि में 2 मी. ठीक रहेगा। बड़े जोहड़ के लिए समतल भूमि में 2 मी. और पहाड़ी क्षेत्र में 5 मी. भी रखा जा सकता है।

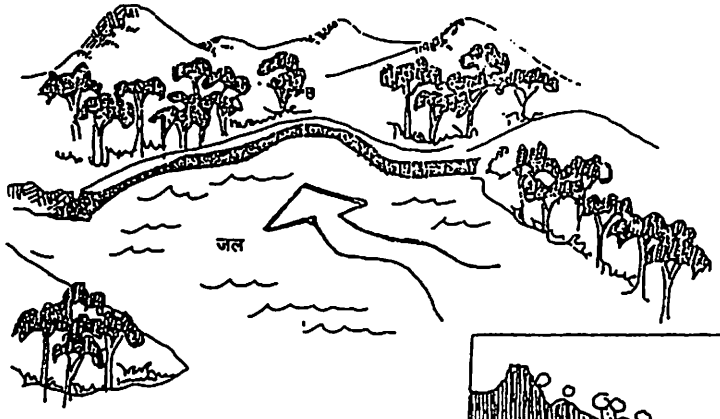

(क).जोहड़ एक दृश्य

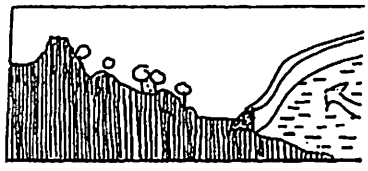

(ख).जोहड़ की अनुप्रस्थ काट

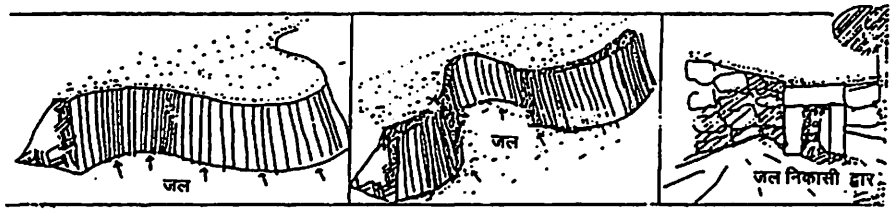

(ग).जोहड़ का उत्तल आकार

(घ).जोहड़ का अवतल आकार

(ङ).जोहड़ में राजगिरी निकास मार्ग

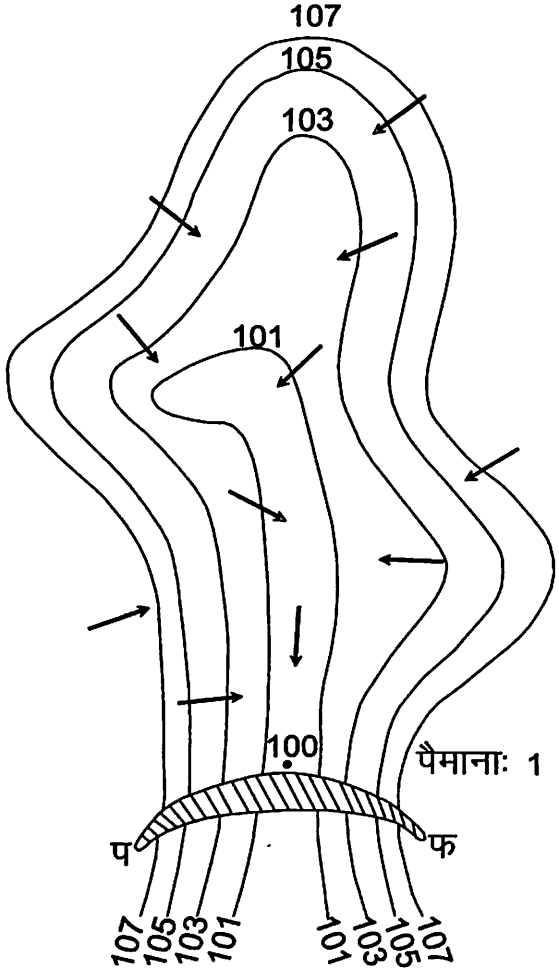

पैमाना: 1 से. मी. = 50 मीटर

2.2.1 (ङ) जल भराव क्षेत्र और जल धारण क्षमता निकालना : ये दोनों इस बात पर निर्भर करते हैं कि जोहड़ में भरे जल की ऊपरी सतह कितनी ऊँची या किस लेवल पर रखी जाये। जोहड़ में भरे जल की सतह जितनी अधिक ऊँची होगी, उतना ही अधिक जोहड़ का जल भराव क्षेत्र और जल धारण क्षमता होगी। पर ऐसे जोहड़ की पाल उतनी ही सुदृढ़ (मजबूत) भी बनानी पड़ेगी और महंगी भी होगी। जल की सतह सदैव सच्ची और सही कंटूर या समोच्च सतह होती है। अत: विभिन्न जल सतहों के लिए जल भराव क्षेत्र निकालना बहुत सरल हो जाता है। बस उस ऊँचाई के कंटूर पर पेंसिल फेर लो और उसके भीतर घिरे क्षेत्र का क्षेत्रफल निकाल लो और चित्र में देख-देख कर चाहो तो फिल्ड पर भी लगा लो।
जल धारण क्षमता निकालने के लिए निम्न विधि अपनाएँ-

(i) जोहड़ के सबसे गहरे बिन्दु की ऊँचाई चित्र से देख लें।

(ii) जोहड़ की सबसे कम ऊँचाई की कंटूर 1 तक जल धारण क्षमता
धा 1=1/2 (कंटूर 1 के भीतर का जल भराव क्षेत्रफल) × (कंटूर 1 की ऊँचाई - सबसे गहरे बिन्दु की ऊँचाई)

(iii) जोहड़ की दूसरी अर्थात् सबसे कम ऊँचाई की कंटूर से अगली कंटूर 2 तक जल धारण क्षमता धा 2 = धा 1+1/2× (कंटूर अंतराल)× (कंटूर 2 का जल भराव क्षेत्रफल + कंटूर 1 का जल भराव क्षेत्रफल)

(iv) इसी प्रकार धा 3= धा 2+1/2× (कंटूर अन्तराल) × (कंटूर 3 का जल भराव क्षेत्रफल + कंटूर 2 का जल भराव क्षेत्रफल)

(v) इसी प्रकार धा 4= धा 3+1/2× (कंटूर अन्तराल) × (कंटूर 4 का जल भराव क्षेत्रफल + कंटूर 3 का जल भराव क्षेत्रफल)

(vi) इस प्रकार निकालते जाते हैं, जब तक कि जल धारण क्षमता इतनी न आ जाये जितना जल एकत्र करना चाहते हैं। यदि वांछनीय ऊपरी जल सतह कंटूर पर न होकर दो कंटूरों के बीच हो, जबकि जरा नीचे कंटूर प हो और जरा ऊपर कंटूर फ हो तब जल धारण क्षमता धा प +1/2 (कंटूर प पर जल भराव क्षेत्रफल + जल सतह पर जल भराव क्षेत्रफल) × (कंटूर प से जल सतह की ऊँचाई)। पूरी प्रक्रिया पिछले पृष्ठ के चित्र और उसके आकलन से स्पष्ट हो जायेगी।

उदाहरण: चित्र में स्थल प-फ पर मिट्टी की पाल बनाकर बनने वाले जोहड़ के जल-भराव क्षेत्र की कंटूर (समोच्च रेखाएँ) दिखाई गई हैं। जोहड़ में सबसे गहरे बिन्दु की ऊँचाई 100 है। यदि जोहड़ में 101 ऊँचाई की कंटूर तक जल भरा जाए तो जोहड़ की अधिकतम गहराई 1 मी. होगी और जल भराव क्षेत्र लगभग 7,500 वर्ग मीटर {3 वर्ग सेमी (कागज पर) × 2500 वर्ग मी. (क्षेत्र पर) प्रति वर्ग सेमी कागज पर} या 0.75 हैक्टेयर होगा। यहाँ 101 कंटूर के मध्य घिरा क्षेत्र कागज पर लगभग 3 वर्ग सेमी. माना गया है।
इस स्थिति में जल धारण क्षमता = 1/2 × (7,500 वर्ग मी.) × (101 - 100) = 3,750 घन मी.।
अन्य ऊँचाइयों तक जल भरने पर जोहड़ का जल भराव क्षेत्र लगभग निम्न होगा-
103 कंटूर तक जल भरने पर जल भराव क्षेत्र (103) = कागज पर 15 वर्ग सेमी. = 3.75 हैक्टेयर
105 कंटूर तक जल भरने पर जल भराव क्षेत्र (105) = कागज पर 34 वर्ग सेमी. = 8.5 हैक्टेयर
107 कंटूर तक जल भरने पर जल भराव क्षेत्र (107) = कागज पर 60 वर्ग सेमी. = 15.0 हैक्टेयर
इन ऊँचाइयों तक जोहड़ की जल धारण क्षमता निम्न होगी -
धा (101) पूर्व गणना के अनुसार = 3750 घन मीटर
धा (103) = धा(101)+1/2× (कंटूर अन्तराल)× { जल भराव क्षेत्रफल (101)+जल भराव क्षेत्रफल (103)}
= 3750+1/ 2×2 (7500+3,7500)= 48,750 घन मी.
धा (105) = धा(103)+1/2(कंटूर अन्तराल)× {जल भराव क्षेत्रफल (103)+जल भराव क्षेत्रफल (105)}
= 48,750+1/ 2× (37,500+85,000)= 1,71,250 घन मी.
धा (107) = धा(105)+1/2×(कंटूर अन्तराल)× {जल भराव क्षेत्रफल (105)+जल भराव क्षेत्रफल (107)}
= 1,71,250+1/ 2×2 (85,000+1,50,000)= 4,06,250 घन मी.
यदि हम जोहड़ में अधिकतम गहराई 10 फुट या 3 मी. रखने का प्रस्ताव करें, तो जल 100+3 या 103 ऊँचाई तक भरेगा और जल धारण क्षमता 48,750 घन मी. होगी। यदि यह हमारी आवश्यकता और उपलब्ध जल से कम लगे तो अधिकतम गहराई 12 फुट या 3.6 मी. करने की बात की जा सकती है। उस स्थिति में जल धारण क्षमता = 48,750+0.6 × (37,500+51,750)/2 या 75,525 घन मी. होगी और जलभराव क्षेत्र= 3,75+(8.5-3.75)/22×0.6=5,175 हैक्टेयर होगा।

2.2.1 (च) पाल की ऊँचाई तय करना : यह एक महत्त्वपूर्ण और कठिन निर्णय होता है और आगे का सब कुछ इस पर ही निर्भर करता है। इसके लिए निम्न प्रकार से चलना तर्कसंगत होगा।

चरण–1: जलागम क्षेत्र से एक औसत वर्षा ऋतु में उपलब्ध होने वाले जल की मात्रा देखें। इस मात्रा से अधिक बड़ा जोहड़ बनाना, बेकार व फालतू पैसा और धन व्यय करना ही होगा। इस अधिकतम क्षमता के लिए आवश्यक जल–स्तर और जल भराव क्षेत्र देखें।

चरण–2 : यदि जोहड़ से सीधे सिंचाई गूल द्वारा या पम्पिंग सैट, रहट, पुर, बोका आदि की सहायता से पानी उठाकर करनी हो, तो प्रति एक हैक्टेयर की एक बार सिंचाई के लिए 1000 घन मी. जल की आवश्यकता होगी। इससे हिसाब लगा लें कि कितनी क्षमता का जोहड़ चाहिए। इस क्षमता में 50 प्रतिशत पशुओं और अन्य उपयोग के लिए, हवा में उड़ जाने, भूमिगत हो जाने आदि के लिए जोड़ दें। अन्त में कम से कम 0.5 मी. अतिरिक्त गहराई जोहड़ में गाद (सिल्ट) भर जाने के लिए जोड़ दें। याद रखें कि ऐसी सीधी सिंचाई केवल खरीफ के लिए या रबी बुवाई से पहले पलेवे के लिए या अधिक से अधिक रबी की पहली या कोर की सिंचाई के लिए ही संभव होगी। बाद में पौष माह तक तो जोहड़ में पानी कम ही बचेगा।

चरण–3 : यदि जोहड़, गर्मी की ऋतु तक पशुओं या अन्य उपयोग के लिए जल रोकने हेतु बनाना हो तो अधिक से अधिक पानी रोकना और चरण–1 में प्राप्त ऊँचाई अपनाना होगा।

चरण–4 : यदि जोहड़ का उद्देश्य वर्षा–जल को भूमिगत कराकर जल और भूमि संरक्षण का हो, तो भारी वर्षा के एक दौर में उपलब्ध जल को रोक सकने की क्षमता पर्याप्त होगी; क्योंकि वर्षा का अगला दौर आने तक पहली वर्षा में भरे जल का काफी भाग भूमिगत हो चुका होगा। भारी वर्षा के एक दौर की कुल वर्षा 150 मि.मी. राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं हरियाणा आदि के लिए मानते हुए और इसका 0.66 भाग उपलब्ध होगा मानने से ऐसे जोहड़ के लिए 0.1 × (जलागम क्षेत्र वर्ग मीटर में) घन मी. जल धारण क्षमता रखनी उचित होगी।

चरण–5 : उपर्युक्तविधि से प्राप्त ऊँचाई ऐसे ही नहीं अपना लेनी चाहिए। उस ऊँचाई से जल–भराव होने वाली भूमि किसकी है, कितनी मूल्यवान है, उपलब्ध होगी या नहीं, कोई घर, पेड़ या अन्य मूल्यवान सम्पत्ति तो प्रभावित नहीं होगी? क्या पाल बनाने के लिए उपर्युक्त सामग्री उपलब्ध होगी? क्या पाल इतना ऊँचा पानी संभाल सकेगी? इन सब बातों पर अच्छी तरह से विचार कर लेना चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण होता है अनुभव और अनुभवजन्य आत्मविश्वास। गाँव वालों का अपना अनुभव, उनका अपना विश्वास। आस–पास के या उन्हीं परिस्थितियों वाले अन्य स्थानों को देखकर, वहाँ के लोगों से विचार–विमर्श कर पैदा हुआ विश्वास।

उपर्युक्त सभी पहलुओं पर विचार करके जोहड़ में प्रस्तावित अधिकतम जल गहराई चुन ली जाती है। पाल इससे कुछ ऊँची रखी जाती है। यदि अधिकतम जल गहराई 2 मी. तक हो तो पाल की ऊँचाई 0.6 मी. अधिक; अधिकतम जल गहराई 2 से 4 मीटर तक हो तो पाल की ऊँचाई 1.0 मी. अधिक और अधिकतम जल गहराई 4 से 6 मी. हो, तो पाल की ऊँचाई 1.5 मी. अधिक रखना ठीक होगा। 6 मीटर से अधिक जल गहराई ग्रामीण जोहड़ में रखने की अनुशंसा नहीं की जा सकती। सामान्यतया एक बड़े जोहड़ के स्थान पर कई छोटे जोहड़ बना लेना, ऐसी स्थिति में अधिक सरल, सुरक्षित, पर्यावरण समर्थक और लाभदायक होगा। (A)

2.2.1 (छ) पाल की बनावट एवं आकार तय करना : जोहड़ की अधिकतम जल गहराई और फिर पाल की ऊपरी सतह की ऊँचाई या लेवल पिछले चरण में तय कर लेने पर पाल की लम्बाई और भूमि पर उसकी ऊपरी सतह लगाना सरल हो जाता है। यह नाके के आर–पार निर्धारित ऊँचाई की कंटूर तक जायेगी और सामान्यतया उत्तल आकार में रखी जायेगी। जैसा चित्र में दिखाया गया है। इस भाँति पाल की लम्बाई निर्धारित एवं ज्ञात हो जाती है। पाल के ऊपर से बैलगाड़ी या लढ़ी या ट्रैक्टर–बोगी आसानी से निकल सके, इसके लिए पाल की ऊपरी सतह 3.0 मी. चौड़ी रखना ठीक होगा। बहुत छोटे जोहड़–बाँधों के लिए, जहाँ पाल की अधिकतम ऊँचाई 3 मी. से कम और पाल की कुल लम्बाई 30 मी. से कम हो तो ऊपरी सतह की चौड़ाई खर्च बचाने के लिए कुछ कम 8 फुट या 2.4 मी. रखी जा सकती है। इस प्रकार पाल की ऊपरी सतह की जानकारी पूरी हो जाती है। अब प्रश्न आता है, दोनों तरफ के ढाल का। जब पाल मिट्टी–बालू–रोड़े की बनानी हो तो पाल की जल की तरफ या अन्दर का और वायु की तरफ या बाहर का ये दोनों ढाल रखते हैं। बलुई मिट्टी की पाल के लिए यह ढाल 1 खड़ा : 3 पड़ा रखना ठीक होगा और चिकनी मिट्टी की पाल के लिए 1 खड़ा : 2.5 पड़ा। बहुत महीन चिकनी मिट्टी या रोड़े–मिश्रित मिट्टी में यह ढाल 1 खड़ा : 2 पड़ा भी रखा जा सकता है। पाल का ढाल जितना

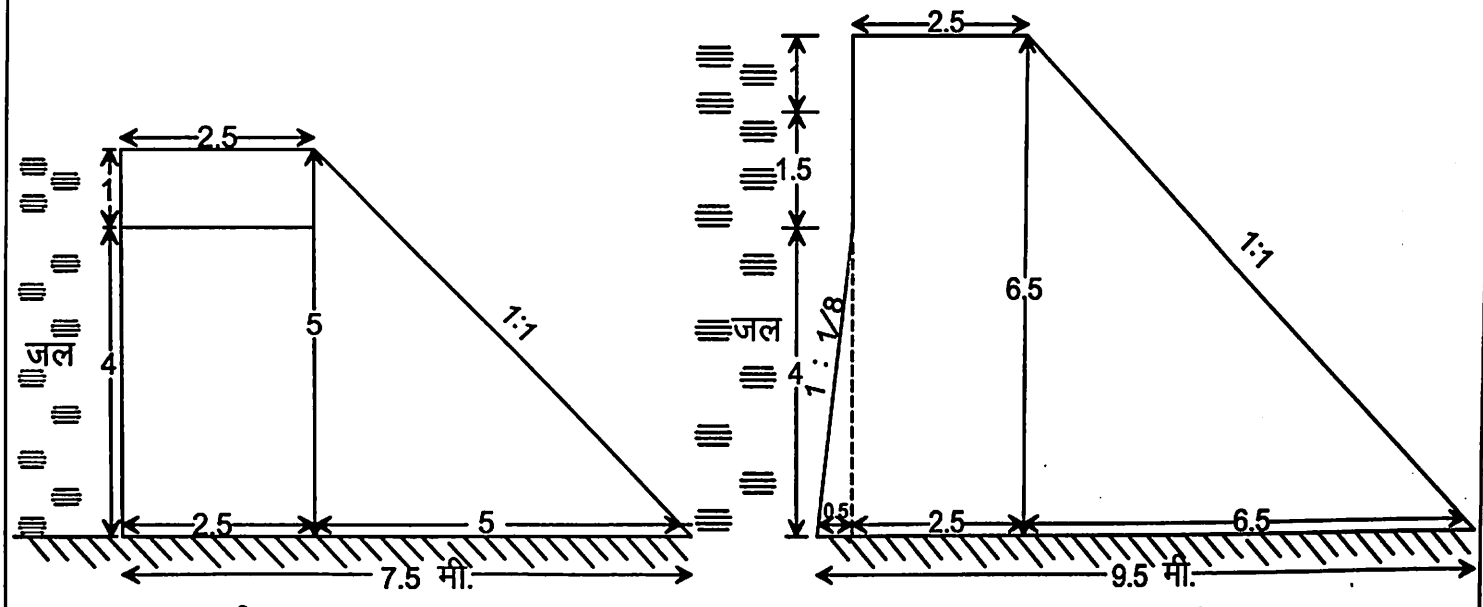

(1)पक्की (जुड़ाई की) पाल की बनावट

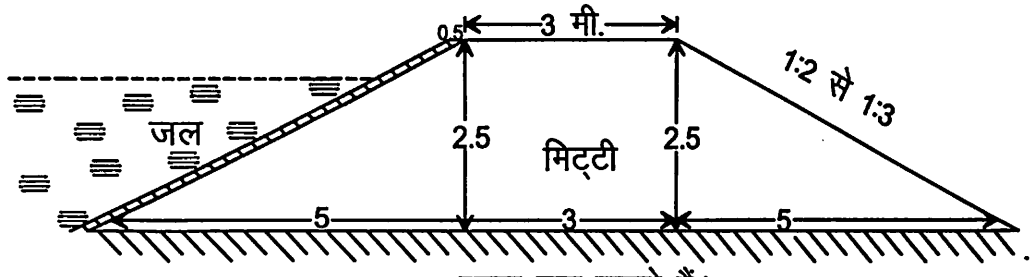

उत्तम बना सकते हैं।

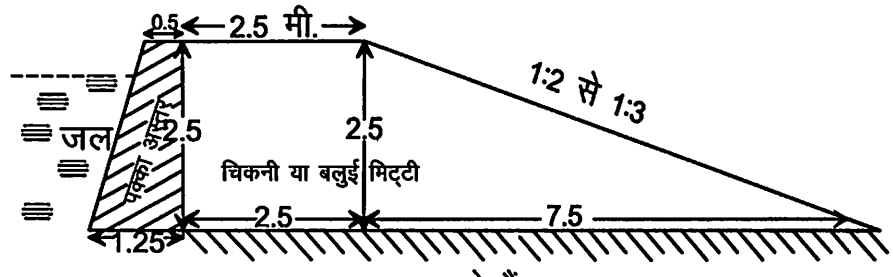

बना सकते हैं।

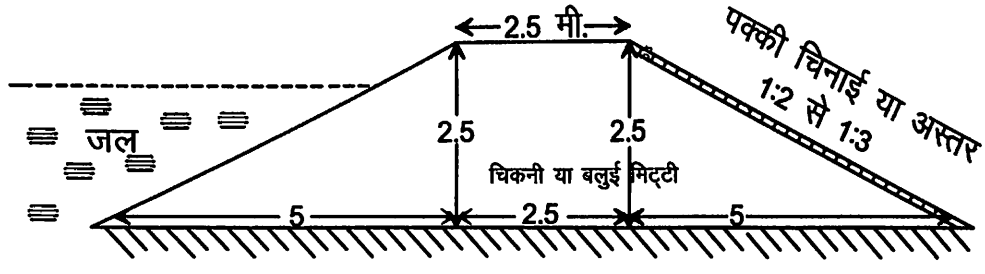

कभी न बनाएँ

(2) कच्ची–पक्की मिली–जुली पाल

अधिक खड़ा होगा उतनी ही कम सामग्री और खर्च लगेगा, पर पाल उतनी ही कमजोर और असुरक्षित रहेगी। चित्र से यह सब स्पष्ट है। यदि पाल बलुई मिट्टी की हो तो रिसाव कम करने के लिए पाल के बीच में चिकनी मिट्टी की कौर या धातु या प्लास्टिक की पट्टी डालना लाभप्रद रहता है। इसी प्रकार चिकनी मिट्टी की पाल के पंजे पर बालू-गिट्टी का फिल्टर देना भी अच्छा रहता है।

यदि पाल पक्की (पक्की ईंट या पत्थर की सीमेंट या चूना-राखी मसाले की जुड़ाई के साथ) बनानी हो या उस भाग में जहाँ पाल पक्की हो, जैसे-अपरा वाले भाग में या उस भाग में जहाँ राजगीरी निकास मार्ग बनाया गया हो, पाल को अन्दर अर्थात् पानी की तरफ एकदम खड़ा बना लिया जाता है या अधिक से अधिक 1 खड़ा : 1/8 पड़ा का ढाल दिया जाता है। पर बाहर की तरफ 1 खड़ा : 1 पड़ा अथवा कम से कम 1 खड़ा : 1/2 पड़ा का ढाल देना ठीक रहेगा। सामान्यतया पक्की और कच्ची अर्थात् मिली-जुली पाल बनाना खतरे वाला काम होता है, हां कच्ची पाल में अन्दर या पानी की तरफ पत्थर या ईंट का जुड़ाई या बिना जुड़ाई का अस्तर लाभप्रद होता है।

2.2.1.1 पाल की नींव : सामान्यतया कच्ची पाल के लिए नींव गहरी खोदने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु पक्की, राजगीरी की जुड़ाई से बनी पाल या पाल के भाग के लिए ठीक से नींव बनाना बहुत आवश्यक होता है।

कच्ची पाल के लिए तो नीचे की भूमि पर से झाड़ी, घास, खरपतवार सब अच्छी प्रकार निकाल दें और फावड़े या हल से ऊपर की 15 सेमी. मिट्टी अच्छी प्रकार गोड या जोत दें। इसमें से भी घास, जड़ें आदि निकाल दें तथा अब इस पर हल्का सा पानी छिड़क कर इसे अच्छी तरह दुरमुट से कूट दें। तब इसके ऊपर नई मिट्टी से पाल बनाना शुरू करें।

पक्की पाल के लिए नींव, पाल की ऊँचाई की चौथाई या कम से कम 0.5 मी. गहरी खोदी जाये। फिर नीचे सपाट (समतल) एवं साफ करके इस पर 2 सेमी. मोटी 1 : 6 सीमेंट-बालू के मसाले की तह बिछाकर 8 सेमी. मोटी 1: 6 : 12 सीमेंट-बालू-गिट्टी की या 1 : 3 : 6 चूना-सुर्खी-गिट्टी की कंकरीट डाली जाये, तब चिनाई शुरू की जाये।

2.2.1.2 पाल के सिरों या किनारों को जोड़ना : कच्ची पाल के दोनों सिरों या किनारों पर किसी प्रकार से जोड़ने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु पक्की पाल को या पाल के पक्के भाग को दोनों ओर मिट्टी में कम से कम एक मीटर घुसा देना चाहिए। साथ ही दोनों तरफ कम से कम 2 मीटर लम्बी और आधा मीटर मोटी आड़ी दीवार भी बना देनी चाहिए, जिससे बगल से होकर मिट्टी कट जाने का भय न रहे। चित्र देखें।

2.2.2 अपरा (अफरा या चादर) का डिजाइन : अपरा या अफरा का कार्य होता है, अधिक वर्षा होने पर फालतू पानी को इस प्रकार बाहर निकाल देना, ताकि पाल के ऊपर से पानी जाने की या पाल के कटने, टूटने या किसी भी प्रकार से हानिग्रस्त होने की स्थिति न बने। सबसे खराब स्थिति तो तब बनेगी जब पहले की वर्षा से जोहड़ पूरा भरा हो और एकदम तेज मूसलाधार वर्षा हो जाये। तब तो जलागम क्षेत्र (आगर) से आया सारा का सारा प्रवाह ही अपरा को लेना पड़ेगा। अत: अपरा की क्षमता, पूरा अधिकतम प्रवाह जो सर्ग 2.2.3 से निकाला गया था अर्थात् राजस्थान, मध्य प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखंड, हरियाणा में 1/6 × (जलागम क्षेत्र हैक्टेयर में) घन मी. प्रति सेकंड निकालने लायक होनी चाहिए और ऐसा करने में जल सतह पाल से नीची ही रहनी चाहिए। साथ ही क्योंकि हमें जोहड़ में निर्धारित उच्चतम जल-स्तर तक पानी भरना है ; इसलिए अपरा की सिल की ऊँचाई इस ऊँचाई से कम भी नहीं हो सकती। इस तरह हम देखते हैं कि अधिकतम प्रवाह निकालने में भी अपरा की सिल पर चलते पानी की गहराई 0.5 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। स्पष्ट है कि अपरा सदैव पक्की (राजगीरी की) सीमेन्ट या चूना-सुर्खी मसाले से जुड़ाई की ही बनानी चाहिये। अपरा की आवश्यक लम्बाई इस सूत्र से निकाल सकते हैं।

यदि अपरा पर से प्रवाह (घन मी. प्रति सेकण्ड)=2.5 × (अपरा की लम्बाई मी. में) × (अपरा पर चलते जल की गहराई मी. में) घात 3/2 यदि अपरा पर चलते पानी की गहराई 0.5 मी. रखी जाये तो (0.5) की घात 3/2 का मान 0.35 होने से अपरा पर प्रवाह = 0.87 × (अपरा की लम्बाई) हो जाता है। अत: हम अपरा की सिल की लम्बाई 1.2 × (अधिकतम प्रवाह) या 1/5 (जलागम क्षेत्र हैक्टेयर में) मीटर रख सकते हैं।

2.2.2.1 अपरा के स्थान का चयन : जोहड़ बनाने में अपरा को बायें या दायें किनारे के पास, जहाँ ज्यादा गहराई न हो वहाँ बनाना सबसे अच्छा रहता है। पाल के बीच में या गहरे नाले वाले भाग में अपरा देने से, अपरा की दीवारों (मुख्य दीवार तथा 6 आड़ी दीवारें) की ऊँचाई बढ़ जाती है और लागत भी। फिर टूटने, कटने

एनीकट–निर्माण

मिट्टी की पाल के बीच में

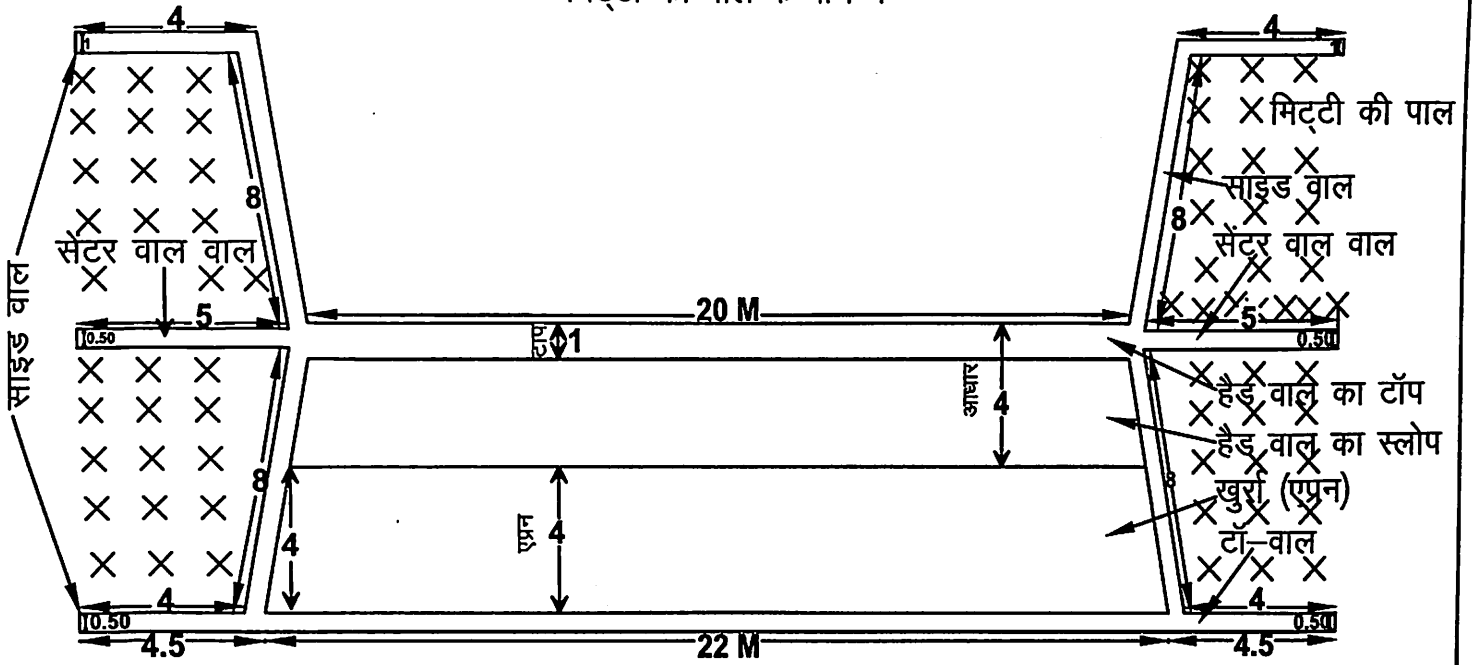

पक्की दीवार को कच्ची पाल से जोड़ना

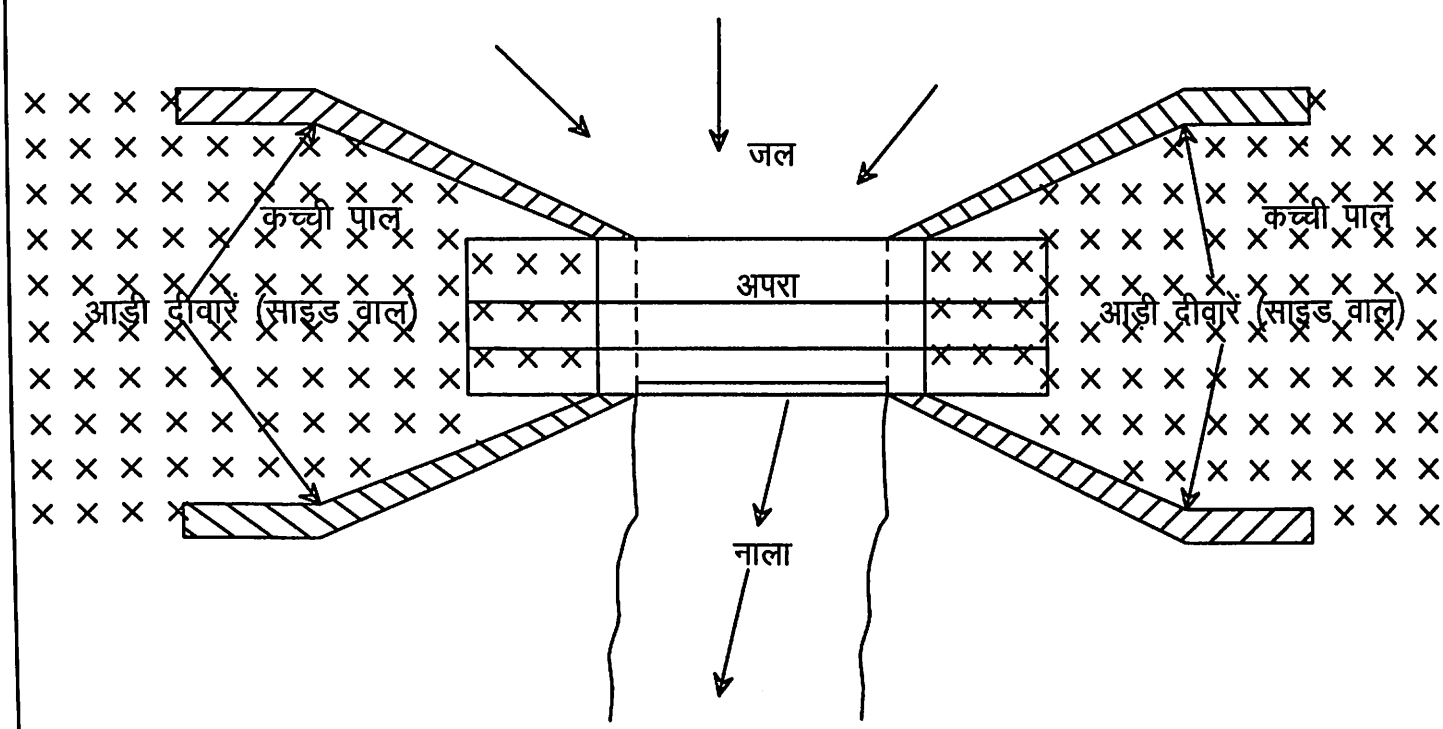

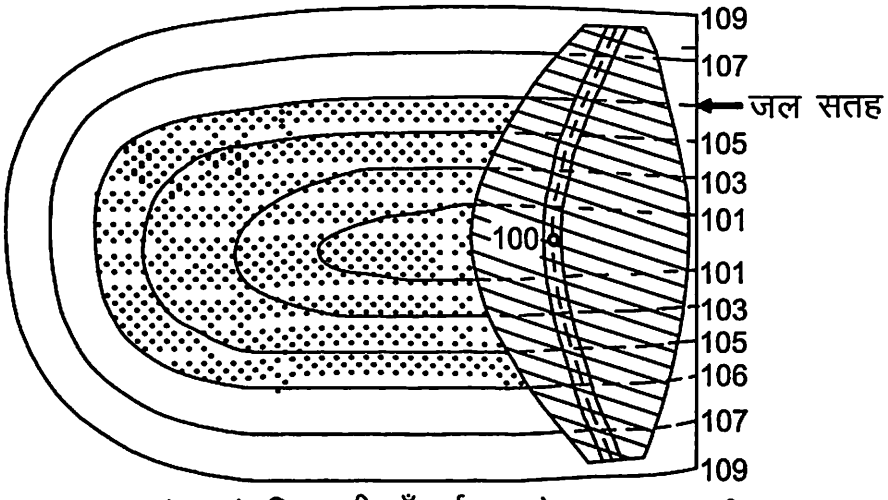

(1.) सबसे गहरे बिन्दु की ऊँचाई का लेवल = 100 मीटर

(2.) तय की गई अधिकतम जल गहराई = 6 मीटर

(3.) अधिकतम जल सतह की ऊँचाई लेवल = 106 मीटर

(4.) पाल की ऊपरी सतह की ऊँचाई का लेवल = 107.5 मीटर

(5.) पाल के टाप की चौड़ाई = 3 मीटर

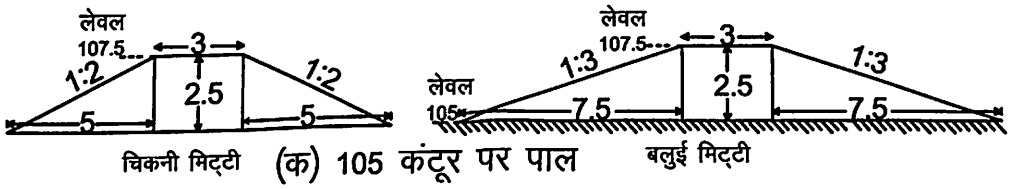

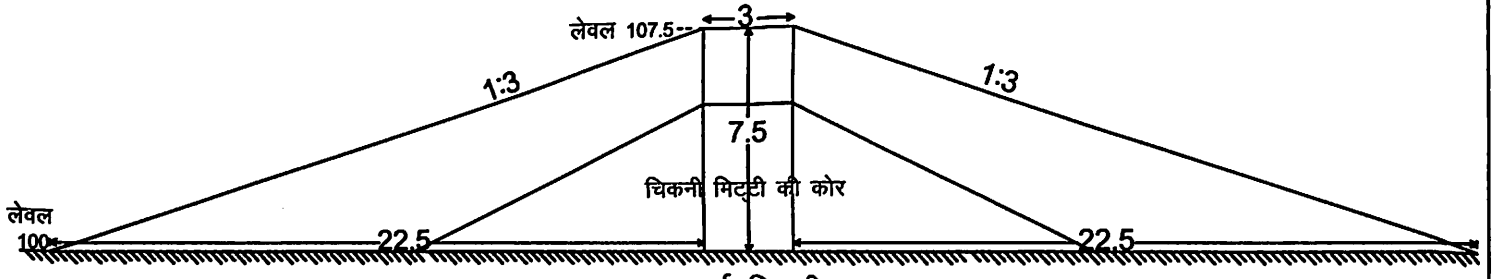

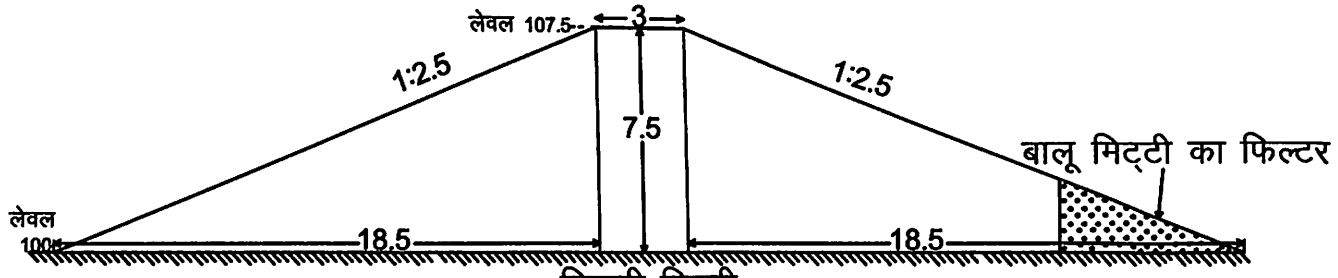

सबसे गहरे स्थान पर पाल

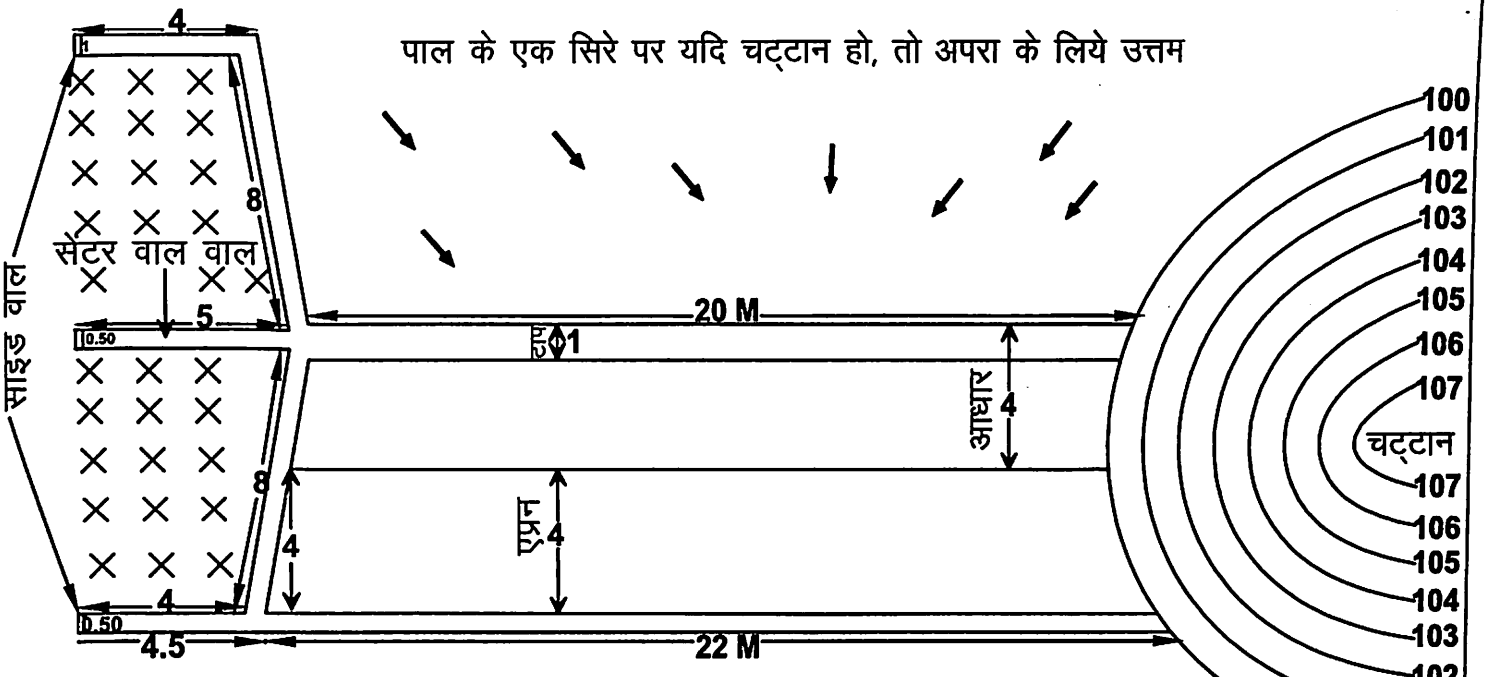

पाल के किनारे पर अपरा उत्तम

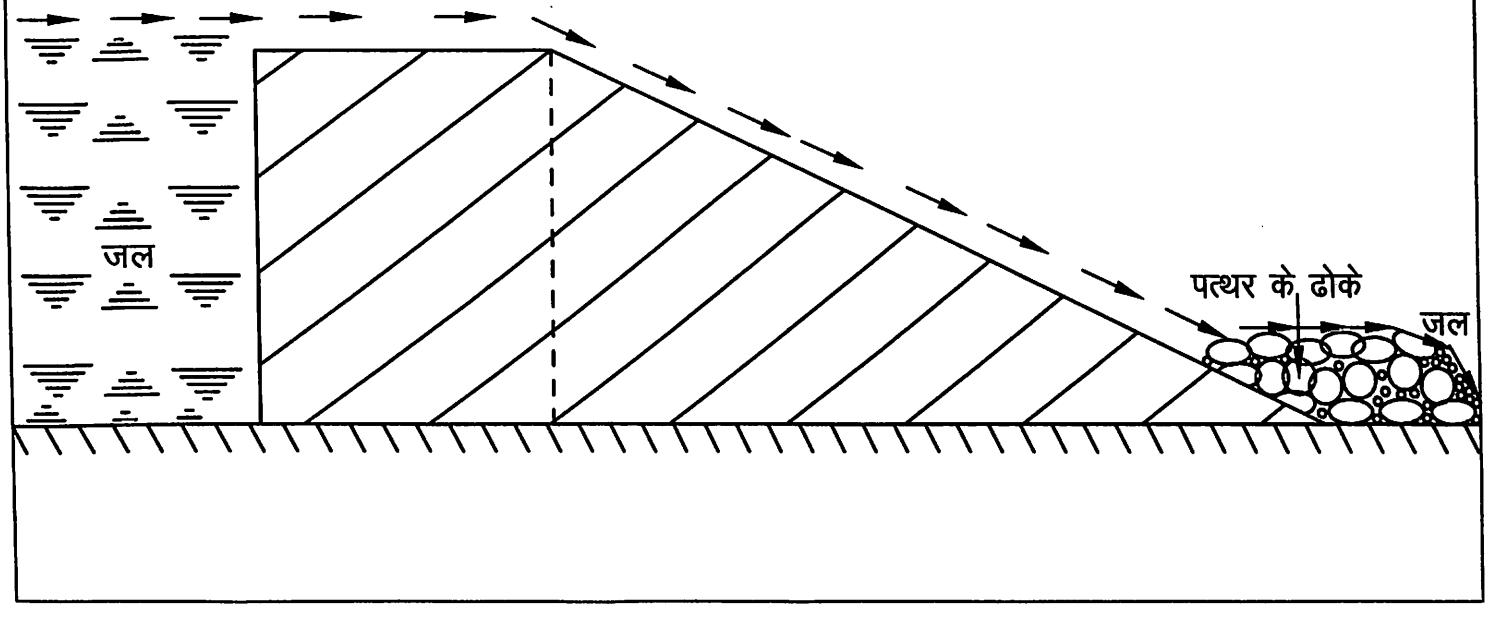

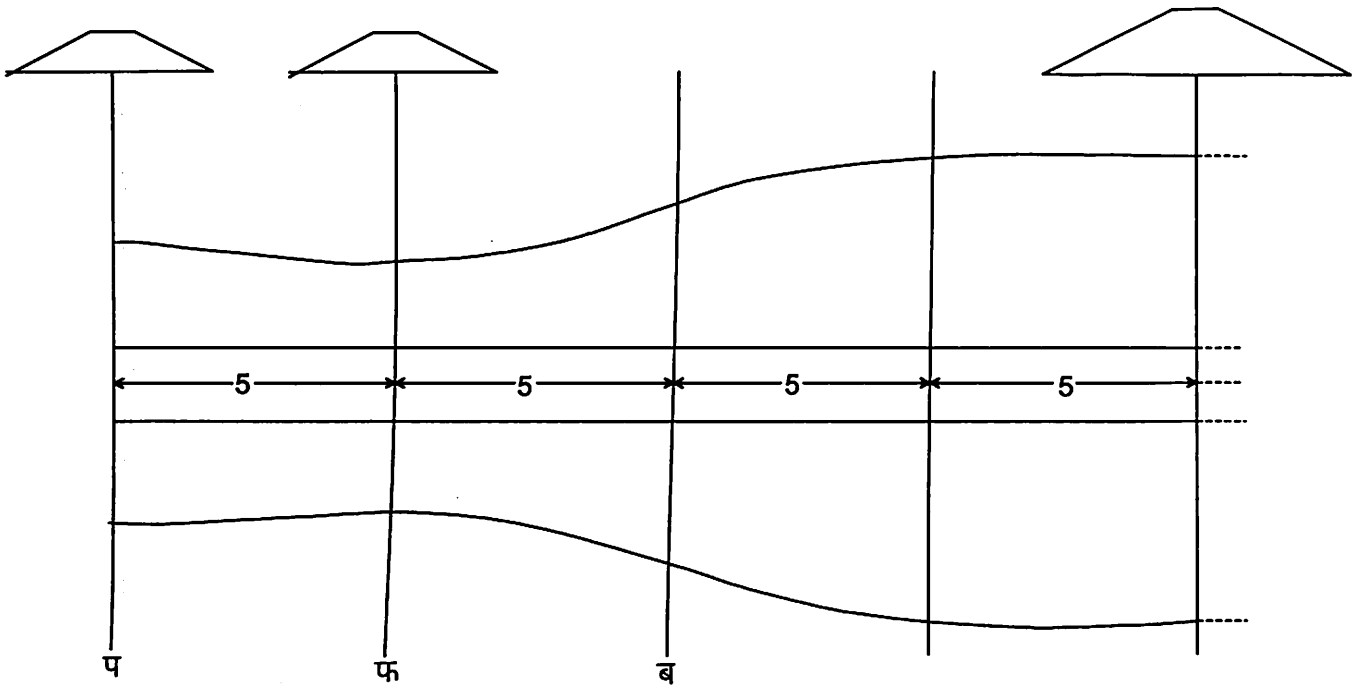

पाल का आयतन निकालना

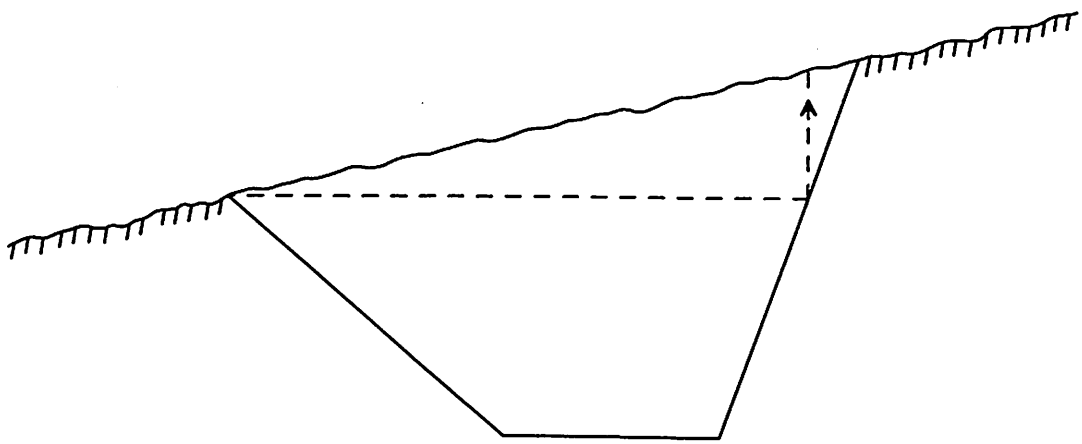

अपरा की नाली

का खतरा भी अधिक रहता है। किनारे के पास अपरा बनाने पर उस जगह पानी का दबाव कम रहता है और बहने वाला पानी ज्यादा ऊपर से भी नीचे नहीं गिरेगा; इसलिए उतना कटाव नहीं करेगा। फिर भी अपरा के नीचे की तरफ कटाव रोकने के लिए पत्थर के ढोंके डाल देने चाहिएँ।

2.3 जोहड़ निर्माण की तैयारी और निर्माण प्रबन्ध

2.3.1 आवश्यक निर्माण–सामग्री की मात्रा का आकलन:

पाल की, अपरा की, आड़ी दीवारों की और अपरा की नाली की सामग्री का आकलन, उनका आयतन निकाल कर किया जाता है। इसके लिए इनकी प्रत्येक 2.5 या 10 मीटर पर काट लेकर उसका क्षेत्रफल निकाल लिया जाता है। फिर दो ऐसी काटों के बीच का आयतन, उन काटों के बीच की दूरी को दोनों काटों के क्षेत्रफल के औसत से गुणा कर निकाल लिया जाता है। चित्र देखें।

काट प और काट फ के बीच आयतन= 5 ×1/2 (काट प पर क्षेत्रफल + काट फ पर क्षेत्रफल)

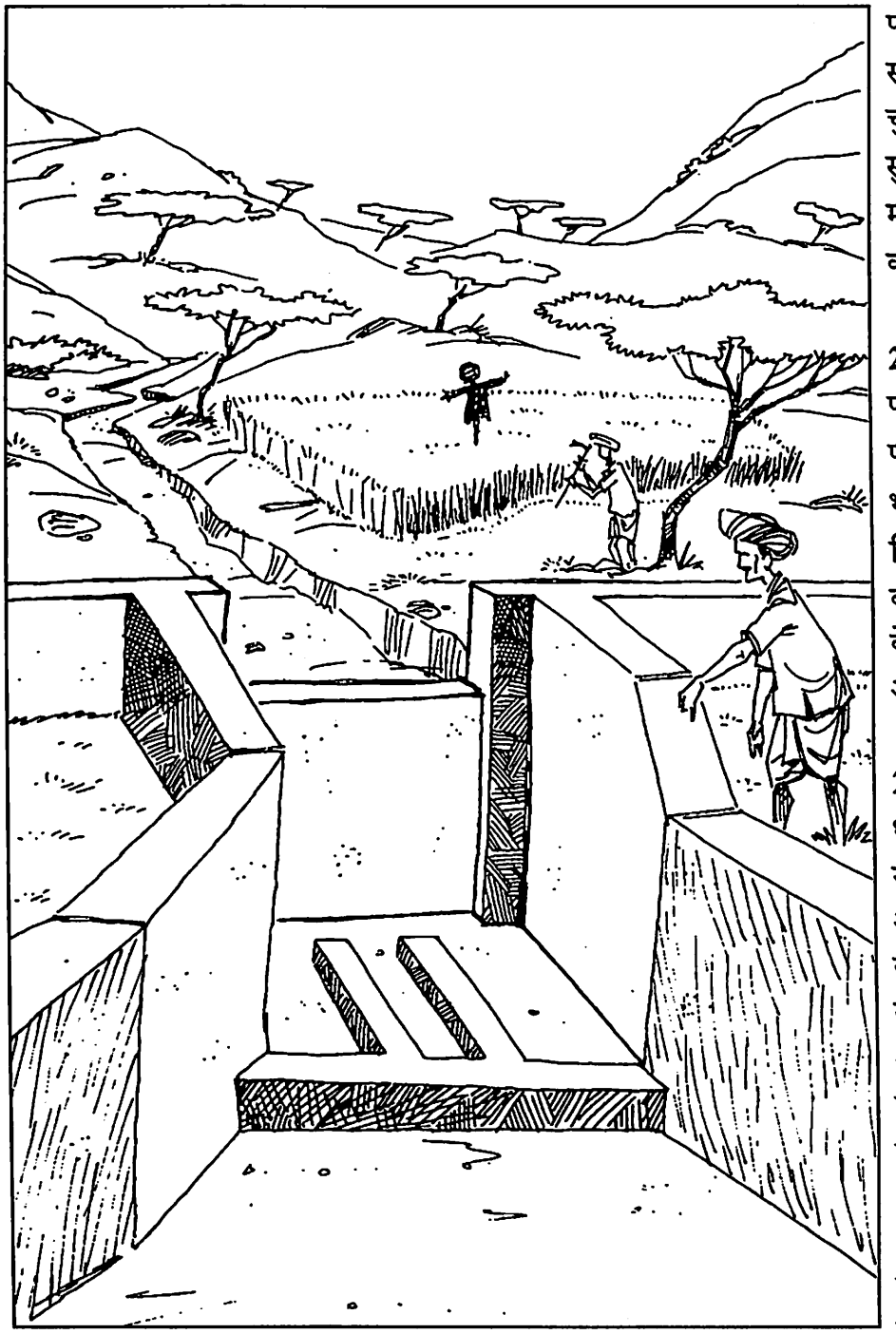

काट फ और काट ब के बीच आयतन= 5 ×1/2 (काट फ पर क्षेत्रफल + काट ब पर क्षेत्रफल)

आयतन ज्ञात हो जाने पर आवश्यक निर्माण सामग्री जैसे मिट्टी, बालू, पत्थर, सीमेन्ट आदि की मात्रा निकाल ली जाती है।

2.3.2 निर्माण सामग्री का चुनाव : पाल के निर्माण के लिए जहाँ तक सम्भव हो महीन चिकनी मिट्टी चुननी चाहिए। जो घास-पात, जड़-जाल या अन्य कार्बनिक या वानस्पतिक पदार्थों से मुक्त हो। रेह या खार वाली मिट्टी का उपयोग नहीं करना चाहिए। अधिकतर परिस्थितियों में भूमि का स्वामित्व और निर्माण स्थल से दूरी एवं ढुलाई की कठिनाई और मिट्टी के चुनाव में अधिक विकल्प नहीं छोड़ते और जो सुविधापूर्वक मिले वही उपयोग करनी चाहिए। मसाले और कंकरीट के लिए बालू मोटा, साफ और कार्बनिक पदार्थों से मुक्त होना चाहिए।

2.3.3 : आवश्यक सामग्री का प्रबन्ध हो जाने पर, पहला कार्य निर्माण स्थल पर पूरी नाप-जोख करके पक्की दागबेल या चूने की लाइनें डालना होगा, जो भूमि पर पाल, अपरा, आड़ी दीवार आदि की सही स्थिति बतायें। निर्माण शुरू होने से पहले इसकी एक बार फिर जाँच कर लेनी चाहिये। अब सर्ग 2.2.1.1 के निर्देशों के अनुसार नींव तैयार कर ली जाती है और फिर वास्तविक निर्माण कर लिया जाता है।

2.3.4 : कच्ची पाल बनाते समय सबसे अधिक ध्यान पाल को अधिक से अधिक ठोस बनाने का रखना होगा। यदि कहीं भी पोला रह जाएगा तो रिसाव और कटाव का डर पैदा हो जायेगा। बिल्कुल सूखी या बहुत गीली मिट्टी को दबा कर ठोस नहीं बनाया जा सकता। बिल्कुल सूखी मिट्टी के कण एक-दूसरे पर आसानी से फिसलते नहीं और बहुत गीली मिट्टी दबाने पर बहने लगती है। अच्छी प्रकार ठोस बनाने का कार्य पाल को पतली-पतली परतों में (एक परत की मोटाई 15 सेमी. से अधिक न हो) उचित आर्द्रता (नमी) पर अच्छी तरह दबाकर किया जाना चाहिए। यह आर्द्रता बलुई मिट्टी के लिए 12 से 15 प्रतिशत और चिकनी मिट्टी के लिए 15 से 20 प्रतिशत के बीच होती है। जैसी कि अच्छी बताऊ (जोतने योग्य) मिट्टी में होती है। गाँव के किसान इसे आसानी से पहिचान लेते हैं; उन्हें नापने की जरूरत नहीं पड़ती। आवश्यकता हो तो नमी को ठीक स्तर पर लाने के लिए फव्वारे की सहायता से हल्का-हल्का पानी छिड़क कर, फिर दुरमुट से कूट कर या बैल अथवा गधे चला कर एक पर्त को अच्छी प्रकार दबाकर अधिक से अधिक ठोस बनाकर तभी अगली पर्त की मिट्टी उसके ऊपर डाली जाये।

2.3.5 : पक्के, कंकरीट के या मसाले से जुड़ाई वाले निर्माण की मजबूती चार बातों पर निर्भर करती है :

(i) सीमेन्ट, बालू, चूना, सूर्खी, गिट्टी, बजरी आदि की मात्रा ठीक से और पूरी नापकर डालना।

(ii) सही मात्रा में पानी डालकर अच्छी प्रकार से मिलाना। पानी की मात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण होती है और एक बोरी सीमेन्ट की कंकरीट या मसाले में 25-30 लीटर पानी खपना चाहिए, न अधिक न बहुत कम।

(iii) निर्माण में कहीं भी पोला स्थान नहीं रखना चाहिए। इसके लिए कंकरीट को परतों में डालकर ठोकते-पीटते रहा जाये और मसाले की जुड़ाई में जोड़ों में मसाला खूब ठोक-ठोक कर भरा जाये।

(iv) कम से कम 15 दिन तक तराई की जाये।

2.4 जोहड़ की लागत, सम्भावित लाभ और लागत/लाभ अनुपात

2.4.1: जोहड़ पर आने वाली लागत का अनुमान : यह निम्न बिन्दुओं के तहत आने वाले खर्च का योग लगाकर किया जा सकता है :

(i) डूब में आने वाली भूमि एवं उस पर खड़े पेड़, वनस्पति, घर, झोंपड़ी आदि का मूल्य।

(ii) उक्त भूमि के डूब जाने से उसके वर्तमान उपयोग, जैसे-कृषि, गोचर, वन आदि के लिए उपलब्ध न होने से वार्षिक हानि।

(iii) जहाँ से मिट्टी/बालू उठाई जाये, उस भूमि का मूल्य।

(iv) निर्माण में लगने वाली सामग्री का मूल्य और ढुलाई।

(v) निर्माण कार्य जैसे मिट्टी का काम, राजगीरी, कंकरीट आदि की अनुमानित लागत (जो प्रति घन मीटर लागत के हिसाब से निर्माण में होने वाले आयतन को गुणा कर लगा ली जाती है)।

(vi) निर्माण कार्य, नियोजन-संयोजन और प्रबंधन पर व्यय (जो निर्माण लागत के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए)।

(vii) निर्माण के बाद जोहड़ की मरम्मत और रख-रखाव पर वार्षिक व्यय (जो निर्माण लागत का 10 प्रतिशत प्रति वर्ष माना जा सकता है)।

उपर्युक्त में से i, iii, iv, v केवल एक बार शुरू में लगेंगे जबकि ii, vi प्रति वर्ष लगते ही रहेंगे। केवल एक बार शुरू में ही लगने वाली लागतों का योग जोहड़ की प्रारंभिक लागत होगी। 'तरुण भारत संघ' के सहयोग से अलवर (राजस्थान) जिले में बनाये गये जोहड़ों की प्रारंभिक लागत 1.0 से 2.0 रु. प्रति घन मीटर जल धारण क्षमता आती है। यदि हम इसमें से ऊपर की राशि ले लें और मानें कि पूरी लागत के लिए धन 15 प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर लिया गया था तो वार्षिक ब्याज 0.30 रु. बनेगा। इसमें प्रारम्भिक लागत का 10 प्रतिशत वार्षिक मरम्मत और रख-रखाव के लिए जोड़ दें तो कुल वार्षिक लागत 0.50 रु. प्रति घन मीटर जल धारण क्षमता आयेगी। यह लागत बड़े-बड़े सरकारी बाँधों और योजनाओं की तुलना में मात्र चौथाई या उससे भी कम है।

2.4.2: जोहड़ों से होने वाला सीधा लाभ तो जल की उपलब्धि है। यदि जोहड़ का जल सीधे गूल द्वारा सिंचाई के लिए उपयोग किया जाये और एक हैक्टेयर में एक सिंचाई 10 सेमी. गहरी की जाये जिसमें 1000 घन मीटर पानी लगे तो सिंचाई की लागत 1000 घन मीटर × 0.50 रुपये प्रति घन मीटर जल या 500 रुपये प्रति सिंचाई प्रति हैक्टेयर आयेगी और यदि उपज में मात्र दो कुन्तल प्रति हैक्टेयर मक्का या ज्वार, 1.5 कुन्तल प्रति हैक्टेयर गेहूँ या 0.5 कुन्तल प्रति हैक्टेयर सरसों की बढ़ोतरी इस सिंचाई के कारण हो जाये तो सौदा फायदे का ही रहेगा। अनुभव बताता है कि उपज इससे कहीं अधिक, दुगनी-तिगुनी बढ़ जाती है।

2.4.3: यदि जोहड़ का उपयोग भू-गर्भ जल में वृद्धि करने में किया जाये तो भू-गर्भ जल में वृद्धि जोहड़ की जल धारण क्षमता का 4-5 गुणा प्रतिवर्ष होती है। कारण पहली वर्षा का जल अगली वर्षा आने तक भूमिगत हो जाता है और एक ही वर्षा ऋतु में जोहड़ की क्षमता बार-बार उपलब्ध और उपयोग होती रहती है। इस प्रकार कुएं में उपलब्ध अतिरिक्त जल पर 0.15 रु. प्रति घन मीटर से अधिक लागत नहीं आती और इससे सिंचाई करने से बढ़ी हुई उपज इससे कई गुणा लाभ दे देती है।

2.4.4: जोहड़ बन जाने से अलवर जिले में भू-गर्भ जल सतह कुओं में 6-8 मीटर तक ऊपर होती देखी गई है। डीजल पम्प द्वारा 6 मीटर अतिरिक्त ऊँचाई पर पानी पम्प करने के अतिरिक्त लागत ही 0.10 रु. प्रति घन मीटर से कम नहीं पड़ती और इस प्रकार जोहड़ पर लगी लागत की तो काफी भरपाई पम्प करने से बचे डीजल या कुओं से पानी खींचने से बचे श्रम से ही हो जाती है, पर असली बात तो पानी की उपलब्धता की है और 0.15 रु. प्रति घन मीटर पर उपलब्ध स्वच्छ भू-गर्भ जल कहीं भी सस्ता ही रहेगा।

2.4.5: जोहड़ से बहुत सारे अन्य लाभ भी होते हैं, जैसे भू-क्षरण (भूमि-कटाव) में कमी, बहकर जाने वाली उपजाऊ मिट्टी को रोकना, नमी में वृद्धि से आस-पास की घास-पेड़-पौधों की बढ़त व हरियाली में सुधार, पशुओं को पिलाने व नहलाने के लिए सुविधा, हवा में नमी से जलवायु में सुधार, हरियाली, नमी व जल

संग्रह से पर्यावरण की मनोरमता में सुधार आदि। इन सबका सीधा मूल्य आँकना तो कठिन ही है।

3. बावड़ी : जल प्रबन्धन की यह परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था प्राचीन समय में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती थी। बहुत बड़ी संख्या में बावड़ियाँ आज भी विद्यमान हैं। बावड़ी का जल मनुष्यों व पशुओं के पीने के उपयोग में आता था। वास्तव में यह एक प्रकार का कुआँ ही होता है। मगर इसमें नीचे जल तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी होती हैं, जिन पर से होता हुआ आदमी नीचे जल तक पहुँच जाता है और जल लेकर ऊपर आ जाता है। इनका जल सिंचाई के लिए भी प्रयोग किया जाता था। बावड़ी के नीचे जाने के लिए एक तरफ, दो तरफ या तीन अथवा चारों तरफ सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं। बावड़ियों में जाने के लिए सीढ़ियों की ही तरह बावड़ियों के आकार-प्रकार में भी विभिन्नता पाई जाती है। ये वृत्ताकार, आयताकार, चौकोर, त्रिकोणीय या षट और अष्टकोणीय भी पाई जाती हैं। इनके बनाने में कुओं की अपेक्षा खर्चा भी अधिक ही आता है, साथ ही साथ इनका जल भी आजकल शीघ्र ही गन्दा हो जाता है। सफाई की कमी एवं मनुष्यों की विभिन्न गतिविधियों के कारण, इनके जल को स्वच्छ रखना बहुत ही कठिन हो गया है। केवल मनुष्य के संयम और नियमों के कारण ही पहले इनका जल स्वच्छ रहता था। आजकल इनका प्रचलन छूट गया है। अब न तो नयी बावड़ियाँ बनाई जाती हैं और न ही पुरानी बावड़ियों को प्रयोग में लाया जाता है। ये परम्परागत जल प्रबन्धन के साधन आजकल प्रयोग में न आने के कारण उपेक्षित हो गये हैं। अधिकतर बावड़ियों में सुन्दर कला भी देखने को मिलती है। बावड़ियों का निर्माण प्राय: सार्वजनिक स्थानों पर या रास्तों के किनारों पर किया जाता था। आभानेरी की बावड़ी इतिहास प्रसिद्ध है।

4. टाँका : जल प्रबन्धन की यह परम्परागत व्यवस्था आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्राचीनकाल से ही लोग इनका प्रयोग करते आये हैं। वर्षा के जल को पक्के कुंड या हौज में एकत्र करने के उपरान्त, इस जल का आवश्यकतानुसार उपयोग करना ही इस व्यवस्था के अन्तर्गत आता है। शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में आज भी टाँकों का बहुत अधिक उपयोग किया जाता है। ये रचनाएँ खुले मैदानों में भी बनाई जाती रही हैं और मकानों की छत पर गिरने वाले वर्षा के जल को एकत्र करने के लिए घरों में भी। इनकी जल को एकत्र करने की क्षमता, एकत्र किये जाने वाले वर्षा जल पर निर्भर करती है। इनका छोटा-बड़ा आकार, उपलब्ध होने वाले जल पर निर्भर करता है। यह सब तरफ से पक्का बनाया जाता है। ताकि कहीं से भी जल रिस कर बेकार न जाये। वर्षा के प्राप्त जल के आधार पर ही इनका आकार निश्चित किया जाता है। सर्वप्रथम तो प्राप्त होने वाले वर्षा के जल का आयतन निकाला जाता है। इसके लिए उपलब्ध जल के कुल क्षेत्रफल में वर्षा ऋतु की कुल औसत वर्षा को गुणा करना होता है। खुले मैदान में टाँके में आने वाले जल का आयतन निकालने के लिए कुल जल ग्रहण क्षेत्र में वर्षा ऋतु में होने वाली वर्षा को गुणा करना होता है। इस प्रकार प्राप्त कुल जल को एकत्र करने के लिए वृत्ताकार या आयताकार पक्का कुंड बनाना होता है। वृत्ताकार कुंड के लिए, वृत्त के क्षेत्रफल वाले सूत्र (क्षेत्रफल=पाई × त्रिज्या का वर्ग) तथा आयताकार के लिए लम्बाई × चौड़ाई=क्षेत्रफल, वाले सूत्र द्वारा कुल क्षेत्रफल ज्ञात करने के बाद उसमें जल की गहराई को गुणा करके आयतन व अन्तत: निर्मित किये जाने वाले कुंड का आकार (लम्बाई, चौड़ाई, गहराई या व्यास) निश्चित किया जाता है। टाँकों के जल का उपयोग सिंचाई में नहीं किया जाता, बल्कि मनुष्य व पशुओं को पिलाने व नहलाने के लिए किया जाता है।

खुले क्षेत्र में बनने वाले टाँकों को कुछ गहरे (नीचे) स्थान पर बनाया जाता है जिससे एक तरफ या दो तरफ अथवा चारों तरफ का वर्षा जल बहकर इस वृत्ताकार, चौकोर या आयताकार कुंड में आ जाता है। शुद्ध जल को प्राप्त करने के लिए टाँके के सामने उस तरफ जहाँ से जल आता है, एक-दो वैकल्पिक छोटे कुंड बनाये जाते हैं। इससे वर्षा के पानी के साथ बहकर आने वाली मिट्टी या गन्दगी मुख्य टाँके में आने से पहले ही रुक जाती है और केवल स्वच्छ, शुद्ध व निथरा हुआ जल ही मुख्य टाँके में आता है।

5. नाला बन्डिग : प्राचीन समय से ही नाला बन्डिग को जल प्रबन्धन क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाता रहा है। यह जल संरक्षण का एक खास तरीका है। वर्तमान समय में नाला बन्डिग का महत्त्व और भी अधिक हो गया है। नाला बन्डिग केवल जल संरक्षण ही नहीं करता, बल्कि इसके उपयोग से भूमि या मिट्टी का कटान भी रुक जाता है। वर्षा के पानी के तेज बहाव से कटने वाली मिट्टी भी इस युक्ति से रुक जाती है। नाले के दोनों तरफ की दीवारों और कहीं-कहीं तो नाले के नीचे का धरातल भी पक्का बना दिया जाता है। यह काम ईंट, पत्थर, सीमेन्ट एवं चूने से किया जाता है। पक्का बन जाने के कारण, जल का भूमि में रिसाव नगण्य हो जाता है। फलस्वरूप जल अधिक समय तक नाले में रुकता है, या अपने गन्तव्य स्थान तक बिना किसी अधिक नुकसान के पहुँच जाता है। आजकल सिंचाई के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली पतली नालियाँ (गूल) भी जल संरक्षण को ध्यान में रखते हुए पक्की बनाई जाती हैं।

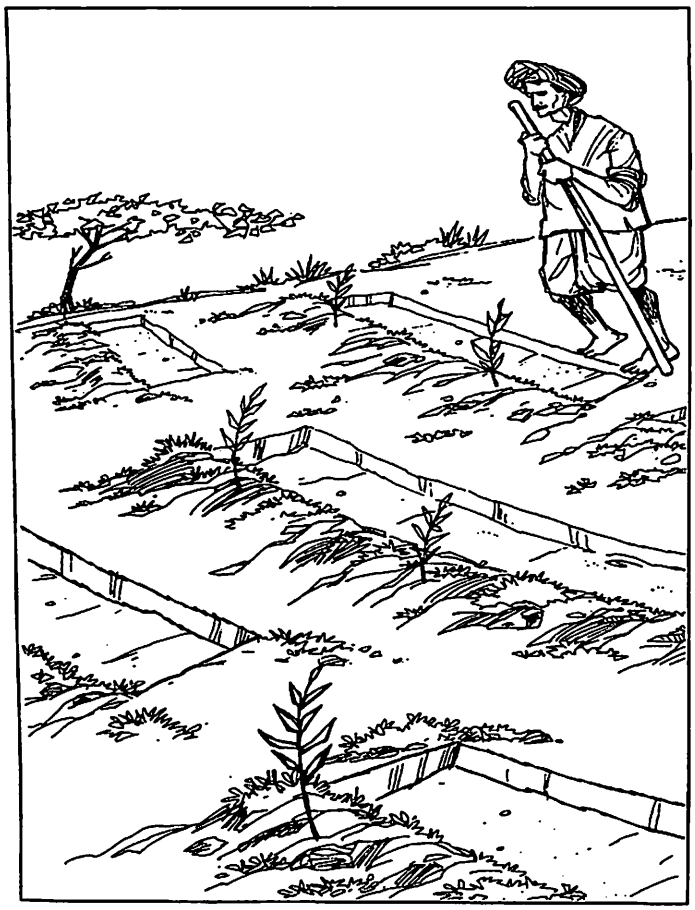

6. ब्रेकर या खुरा लगाना : जल के प्रबन्धन में इस प्रकार की तकनीक को बहुत पहले से प्रयोग में लाया जाता रहा है तथा वर्तमान में भी इस तकनीक का प्रयोग बहुत अधिक किया जाता है। यह तकनीक अधिकांशतया ढलुवाँ भूमि पर वर्षा के जल को रोकने व भूमिगत करने के लिए अपनाई जाती है। फलस्वरूप जंगल व घास तेजी से बढ़ते हैं तथा खेतों में लम्बे समय तक नमी बनी रहती है और फसल को पानी की आवश्यकता भी कम पड़ती है। इस तकनीक में ढलुवाँ जमीन पर जगह-जगह मेंड़-सी बना दी जाती हैं, जिनके बनने से वर्षा का जल नहीं बहता और जो बहता है, उसका वेग धीमा रहता है, जिसके कारण मिट्टी का कटान भी कम होता है।

ब्रेकरों का प्रयोग छोटे-छोटे नालों में भी किया जाता है। जहाँ पत्थरों की एक दीवार-सी बनाकर न सिर्फ जल-वेग को कम करके मिट्टी कटान को रोका जाता है, बल्कि पत्थरों के पास मिट्टी जमा होने से नाले में दूर तक मिट्टी एकत्र हो जाती है, जिससे एक तो नाले में काफी समय तक पानी रहता है तथा दूसरे पानी सूखने पर या तो मिट्टी को अन्य उपयोग में ले लिया जाता है अथवा अल्प अवधि की कोई फसल बोई जा सकती है। इस प्रकार के ब्रेकर नाले में जगह-जगह लगाकर भू-संरक्षण व जल संरक्षण दोनों कार्य किये जाते हैं।

7. खपचियाँ (कन्टूर बन्डिग) : यह तकनीक भी वर्षा के जल को खेतों में ही भूमिगत करने के लक्ष्य की पूर्ति हेतु प्रयोग में लाई जाती है। यह जल प्रबन्धन की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था है। लेकिन वर्तमान में भी ढलुवाँ जमीनों पर तथा शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में इसका उपयोग होता है। इसमें जहाँ एक ओर जल संरक्षण द्वारा लम्बे समय तक जंगल और खेतों की नमी बनाये रखने में मदद मिलती है, वहीं दूसरी ओर मिट्टी कटान को रोकने में भी यह तकनीक लाभदायक है। इस परम्परागत तकनीक से खेतों या मैदानों में छोटी-छोटी नालियाँ, कंटूर की सहायता से निश्चित दूरी पर बनाई जाती हैं। ये नालियां (खंचियाँ) एक सिरे से दूसरे सिरे तक बनाकर, इनकी मदद से जल एवं मिट्टी संरक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। ए-फ्रेम या स्प्रिट लेवल आदि यंत्रों की सहायता से एक समान लेवल पर निशान बनाकर, इन छोटी-छोटी नालियों (साधारणतया एक फुट चौड़ी व एक फुट गहरी) को बनाया जाता है। दो नालियों के मध्य का अन्तर जमीन, ढाल, वर्षा व आवश्यकतानुसार (1 गज से 15 गज) छोड़ा जाता है। नाली से निकली मिट्टी को नीचे की तरफ मेंड़ के रूप में लगाकर उस पर कोई वनस्पति लगा दी जाती है।

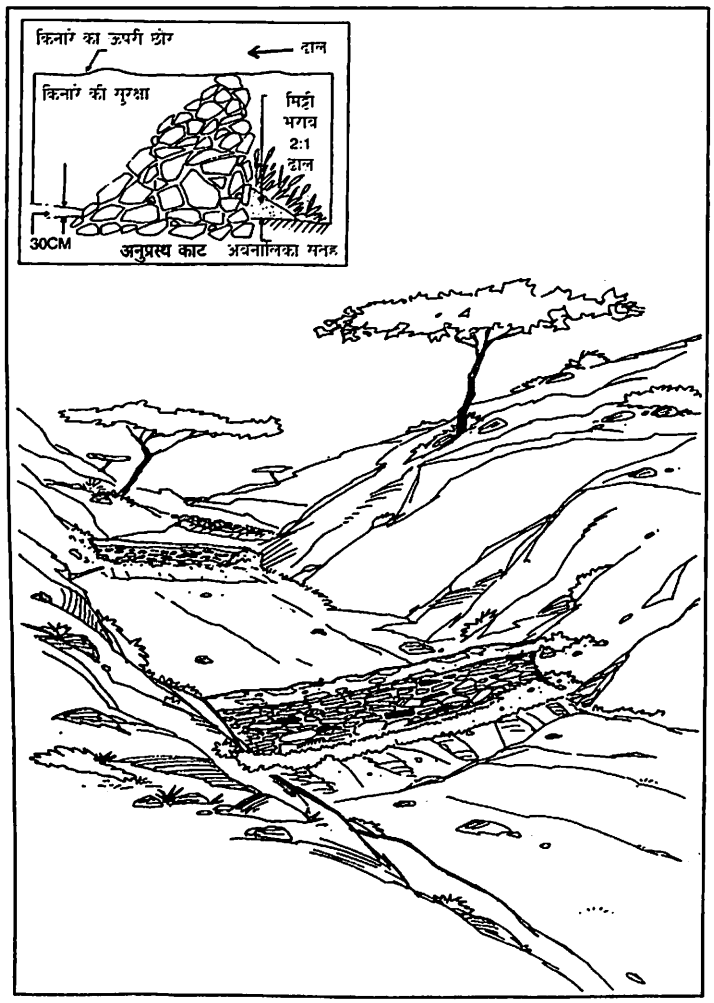

8. वानस्पतिक मेंड़बन्दी : यह तकनीक भी परम्परागत है और वर्तमान में भी शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में प्रयुक्त होती है। इस तकनीक से मिट्टी और जल दोनों के संरक्षण का उद्देश्य पूरा होता है। इस तकनीक में खेत या मैदान में निश्चित दूरी पर कुछ विशिष्ट वनस्पतियों की बाड़ एक लाइन में (एक सिरे से दूसरे सिरे तक) लगाई जाती है। जड़ों के पास थोड़ी-थोड़ी मिट्टी चढ़ा दी जाती है, जिससे वर्षा का पानी ढलुवां जमीन पर न तो तीव्र वेग से बह पाता है और न ही मिट्टी का कटान कर पाता है, साथ ही साथ जड़ों के पास जल रुक कर तेजी से भूमिगत होता है।

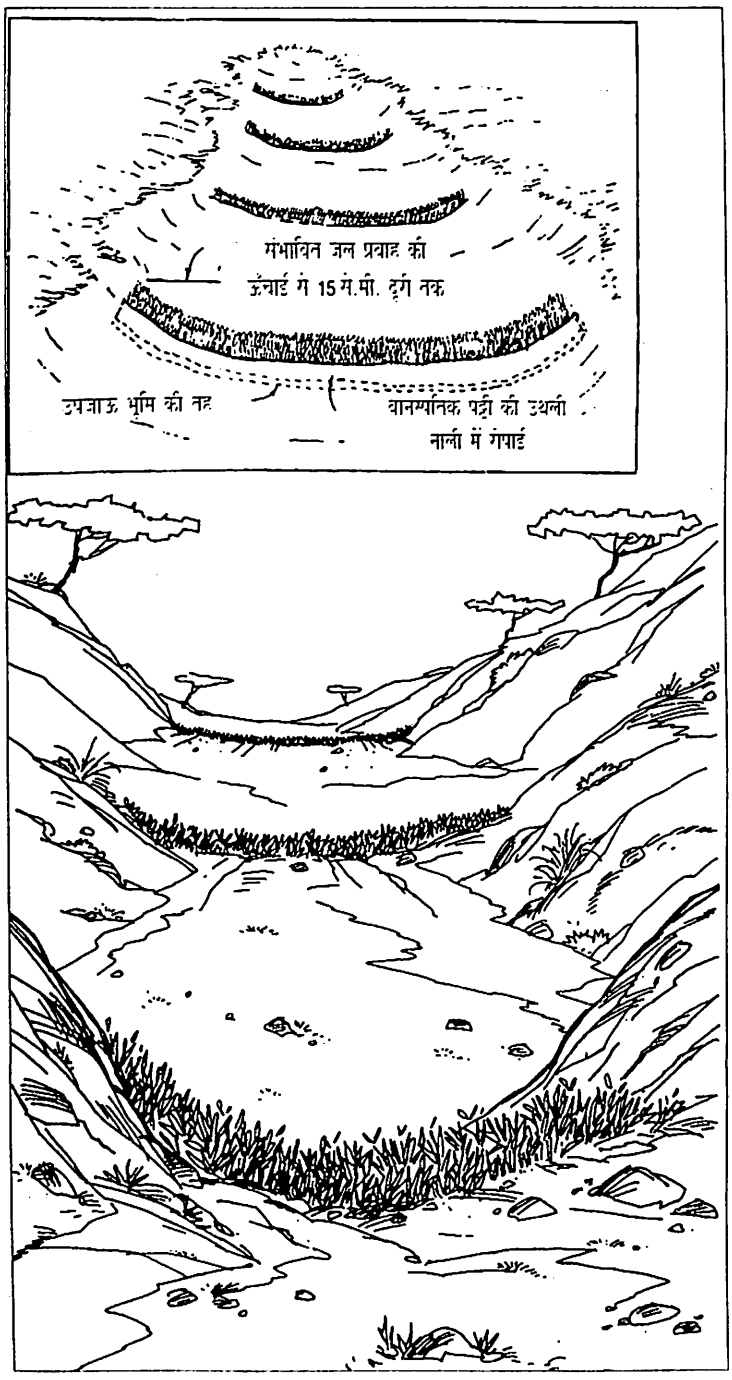

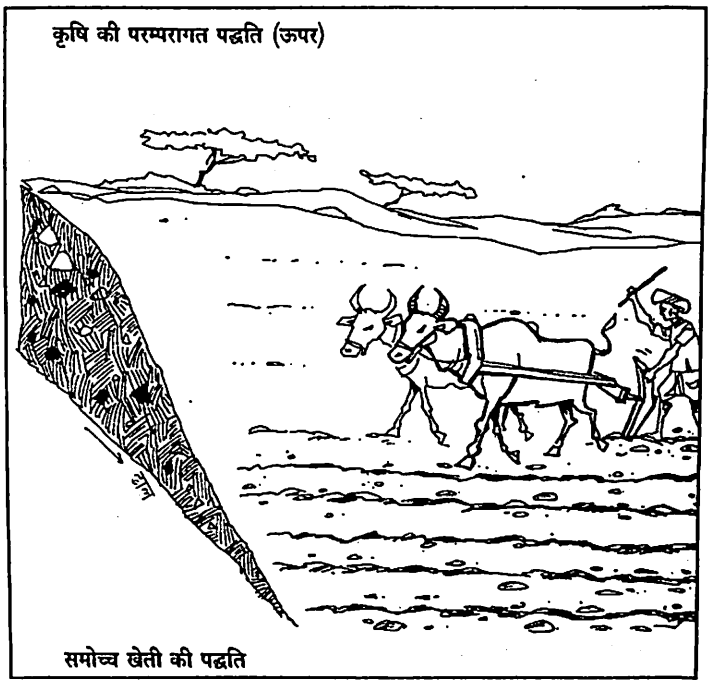

9. खुली एवं कंटूर जुताई : यह तकनीक भी ब्रेकरों, खंचियों आदि के समान ही है। यह एक ओर जहाँ जल संरक्षण का कार्य करती है, वहीं दूसरी ओर मिट्टी कटान को कम करने में भी सहायता प्रदान करती है। इस तकनीक के अन्तर्गत खेतों को जोतकर खुला छोड़ देते हैं, फसल बुआई कर देने के बाद भी पाटा या मेडा नहीं लगाते। कंटूर जुताई में ढाल के लम्बवत् जुताई लगाकर खेत को खुला छोड़ देते हैं। फलस्वरूप वर्षा का पानी खेतों में रुकता है और लम्बे समय तक नमी बनी रहती है। शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में इस परम्परागत तकनीक का प्राचीन समय से आज तक उपयोग होता रहा है। वर्तमान में भी इस तकनीक का किसान बहुत अधिक उपयोग करते हैं। यह तकनीक न सिर्फ ढलुवाँ जमीन के लिए उपयोगी है, बल्कि समतल जमीनों में भी इस तकनीक का उपयोग हो रहा है।

(ब) वर्तमान जल प्रबन्ध व्यवस्था : परम्परागत जल प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत बताई गई व्यवस्थाओं में से अधिकतर सभी व्यवस्थाएँ वर्तमान समय में भी लोगों द्वारा प्रयुक्त की जा रही हैं। वर्तमान में कुओं, जोहड़ों और बाँधों आदि का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है, क्योंकि कृषि योग्य भूमि का आज विस्तार अधिक हो गया है। परिणामस्वरूप आज सिंचाई के लिए पानी की आवश्यकता और अधिक बढ़ी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव अधिक बढ़ गया है। अत: उपर्युक्त सभी जल प्रबन्धन के तरीके, आज की आधुनिक तकनीक के साथ अधिक सुधरे हुए रूप में प्रयोग में लाये जाने लगे हैं। जो महत्त्वपूर्ण तथ्य परम्परागत व्यवस्था में देखने को मिलता है, वह यह है कि प्राचीन

समय में जल प्रबन्धन की सभी व्यवस्थाएँ सामलाती रही हैं, मगर आधुनिक समाज में इन व्यवस्थाओं में कई ने निजीकरण के सिद्धान्त को धारण कर लिया है। जहाँ जोहड़/कुएँ/बावड़ी और बाँध पहले सार्वजनिक होते थे, वहीं आज इन रचनाओं का निर्माण और उपयोग निजी तौर पर अधिक हो रहा है। ऐसा तो नहीं है कि सभी कुछ बदल गया हो, मगर लोगों की प्रवृत्ति व विचारों का झुकाव निजीकरण की तरफ हो गया है। सरकारी नीतियों तथा अनेक अन्य कारणों ने इस प्रवृत्ति को आधार दिया है। हालांकि बावड़ियों का प्रचलन एवं उपयोग तो वर्तमान में कम हुआ है, मगर उक्त वर्णित अन्य संसाधनों का आज भी परम्परागत की ही भाँति निरन्तर उपयोग जारी है। पर अधिकांश क्षेत्रों में कुओं का पानी सूखता जा रहा है। यह सब पानी को अत्यधिक दोहन व शोषण करने की नई तकनीकों के कारण हुआ है। कुछ अन्य व्यवस्थाएँ भी वर्तमान में चल रही हैं जिन पर यहाँ संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला जा रहा है।

1. नहरें : जल प्रबन्धन की यह व्यवस्था वैसे तो मुगलकाल में ही चल पड़ी थी, मगर आजकल खूब फल-फूल रही है। वास्तव में नहरों की व्यवस्था उन क्षेत्रों तक ही सीमित है, जहाँ बारहों महीने बहने वाली नदियाँ मौजूद हैं। नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बनाकर सरकार द्वारा नहरें निकाली जा रही हैं, जो मुख्यत: सिंचाई के लिए प्रयुक्त की जाती हैं।

उत्तर-भारत के अनेक क्षेत्रों में यह व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। भारत के कुछ अन्य इलाकों में भी जहाँ नदियों में जल मौजूद है, इस व्यवस्था को अपनाया जा रहा है। फिर भी यह व्यवस्था इतनी कारगर सिद्ध नहीं हुई, जितनी कि इस व्यवस्था से अपेक्षा की जाती है। क्योंकि जब किसानों को सिंचाई के लिए जल की आवश्यकता होती है, तब नहरों में भ्रष्ट-तंत्र व जल कमी के कारण पानी नहीं छोड़ा जाता, लेकिन जब किसानों को जल की कम आवश्यकता होती है, तब नहरें लबालब पानी से भर कर चलती हैं (वर्षा ऋतु में)। दूसरे, सिंचाई लगान भी अक्सर काफी अधिक लिया जाता है। अन्य महत्त्वपूर्ण कमी इस व्यवस्था की यह है कि इससे धनी व प्रभावशाली व्यक्तियों को ही अधिक लाभ मिलता है, क्योंकि वे धन व अपने व्यक्तिगत प्रभाव के तहत भ्रष्ट सिंचाई तंत्र को प्रभावित करने में सफल हो जाते हैं। दूसरी ओर गरीब लोग नहरी व्यवस्था का लाभ आवश्यकता से बहुत ही कम उठा पाते हैं, जबकि उन्हें जल कर अधिक देना होता है। बिहार व अन्य अनेक क्षेत्रों में नहरों के दोनों तरफ पास की बहुत अधिक जमीन पानी के ठहराव के कारण खराब हो गई है। फलत: ऐसे क्षेत्रों में नहरें लोगों के लिए हानिप्रद साबित हो रही हैं।

2. पाइप लाइन : जल प्रबन्धन की यह वर्तमान व्यवस्था सिंचाई और पीने के लिए जल की उपलब्धता कराती है। इस व्यवस्था का मुख्य योगदान पीने के पानी को शहरों में उपलब्ध कराना रहा है। यद्यपि नहरों की तरह इस व्यवस्था पर सरकारी नियंत्रण है, मगर लोगों की आवश्यकतानुसार यह व्यवस्था समुचित जल उपलब्ध कराने में अक्षम है। वहीं इस व्यवस्था को स्थापित करने में बहुत अधिक भूमि को बेकार कर दिया जाता है। पाइप लाइन जहाँ से होकर निकलती है, वहाँ की काफी भूमि इसमें प्रयोग हो जाती है, जो न कृषि योग्य रहती है और न ही इसमें पेड़ आदि को उगाया जा सकता है। दूसरे, इस व्यवस्था से सभी लोगों के पीने हेतु पानी उपलब्ध कराना भी काफी कठिन हो रहा है। अनेकों स्थानों पर रख-रखाव की कमी के कारण इसका जल दूषित होने के साथ-साथ बाहर रिसता रहता है।

★★★

वनों की परम्परागत एवं वर्तमान स्थिति तथा प्रबन्ध व्यवस्था

वनों की परम्परागत स्थिति : एक समय वह था जब भारत वन सम्पदा से परिपूर्ण व समृद्ध था। वनों की बहुलता के कारण यहाँ पर प्रचुर हरियाली थी। वर्षा बहुत होती थी, बाढ़ व अकाल आदि त्रासदी लगभग नगण्य थी। यहाँ की 40 प्रतिशत से भी अधिक भूमि में वनों की बहुलता थी। वन सघन होते थे। हिन्दुस्तान के सभी प्रांतों में वन प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। जनसंख्या का दबाव कम था। वनों की कटाई बहुत कम होती थी। अत: सघन वन और सघन होते जाते थे। भारत को सोने की चिड़िया कहलाने और बनाने का श्रेय इस वन सम्पदा को ही जाता था। राजस्थान में भी वनों की अधिकता थी। अंग्रेजों की शोषण नीति के बावजूद भी आजादी के समय तक राजस्थान में 15 प्रतिशत भूमि पर जंगल (वन) मौजूद थे। वनों की परम्परागत स्थिति राजस्थान में ही नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपने सम्पूर्ण यौवन पर रही है। वनों की इस समृद्ध स्थिति का आधार, वनों की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था ही रही है।

वनों की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था : वनों के सम्बन्ध में भारत की परम्परागत प्रबन्धन व्यवस्था विश्व की सभी प्रबन्ध व्यवस्थाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती थी। इस व्यवस्था पर भारतीय संस्कृति, चिन्तन और अध्यात्म की गहरी छाप दृष्टिगोचर होती है। यहाँ के चिन्तन का मूल मंत्र कण-कण में ईश्वर का विद्यमान होना रहा है। यहाँ तृण-तृण में परम पिता परमेश्वर के दर्शन किये जाते रहे हैं। आज के वैज्ञानिक शोधों ने तो अब कुछ ही समय पूर्व पेड़-पौधों में जीवन होने की पुष्टि की है; मगर हमारे ऋषि-मुनियों, चिन्तकों और साधकों ने तो शुरू से ही वनस्पति जगत में आत्मा व परमात्मा के दर्शन पाये हैं। इसी समृद्ध संस्कृति और आध्यात्मिक परम्पराओं एवं चिन्तन के परिणामस्वरूप यहाँ की वन सम्पदा इतनी समृद्ध रही है। यहाँ पेड़ों में ब्रह्मा का वास मानकर इनकी पूजा की जाती रही है। यहाँ की धराड़ी प्रथा भी परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण सहयोग देती रही है, जिसके अन्तर्गत राजस्थान में सभी जातियों के अलग-अलग वंशों (गोत्रों) की अलग-अलग धराड़ी होती थी। गाँव का प्रत्येक परिवार अपनी-अपनी धराड़ी के अनुसार पेड़ों को न तो काटता था और न ही दूसरों को काटने देता था। किसी गोत्र की धराड़ी नीम होती थी तो किसी की बेल, किसी की पीपल होती थी तो किसी की वट वृक्ष। इस प्रकार, इस प्रथा के चलते और पेड़ों में देवताओं के निवास की भावना के कारण लोगों की पेड़ों के प्रति न केवल श्रद्धा थी, अपितु उन्हें काटना लोग पाप समझते थे और उसे मानव वध के समान घृणित कृत्य समझते थे। राजस्थान की नहीं भारत के अन्य प्रांतों में भी लोगों की श्रद्धा, विश्वास और पेड़ों के प्रति भावनाएँ पवित्र और रक्षात्मक होती थीं। अगर पीपल के पेड़ में शनि देव का निवास समझा जाता था तो बेल के पेड़ में शंकर भगवान का। वास्तव में पेड़ों व जंगलों की रक्षा और संरक्षण के वास्ते यह सब प्रबन्ध व्यवस्था का परम्परागत स्वरूप ही था।

भारत के सभी प्रांतों में देवताओं, साधकों, सिद्ध पुरुषों, मन्दिरों आदि के नाम पर बहुत बड़े-बड़े सामलाती जंगलों को छोड़ दिया जाता था। लोग न केवल उन जंगलों की रक्षा करते थे, बल्कि नये पेड़ लगाना, पेड़ों की सिंचाई करना व जंगल संरक्षण के अन्य आवश्यक कार्य अपनी जिम्मेदारी समझ कर नैतिकतापूर्वक करते थे। कांकड़बनी, देवबनी, रखतबनी, देवओरण्य आदि ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। पर्यावरण सन्तुलन की अवधारणा (जितना पर्यावरण से लिया जाये उतना ही पर्यावरण को लौटा दिया जाये) को लोग आत्म-प्रेरणा से निभाते थे। यहाँ, भारत में सभी जंगल और वन लोगों के अपने होते थे। इन सामलाती वनों से लोग केवल अपनी आवश्यकतानुसार ही लेते थे, बदले में जंगलों व अन्य सभी सामलाती संसाधनों के संरक्षण और विकास के लिए तन, मन और धन के साथ सहयोग करते थे। जंगल की प्रबन्ध व्यवस्था लोगों के अपने हाथों में होती थी। राजा या शासक का उत्तरदायित्व तो सिर्फ समाज और देश की रक्षा करना होता था, अर्थात् जंगलों का स्वामी राजा न होकर लोग ही होते थे। इसलिए भारत की वन सम्पदा अति समृद्ध थी।

वनों की वर्तमान स्थिति : भारत में अंग्रेजों के आगमन के कुछ समय पश्चात् ही वनों की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण बदलाव आने शुरू हो गये थे। यहीं से वनों की स्थिति बिगड़नी शुरू हो गई थी। यूरोपीय राजाओं की तरह ही अंग्रेजों से प्रेरणा लेकर यहाँ के राजाओं ने जंगलों पर अपना स्वामित्व स्थापित करने के लिए कानून बनाने शुरू किये। रक्षण की बजाय भक्षण की नीति को अपनाया गया। सन् 1912 से ही राजाओं ने छोटे-छोटे कानून बनाकर, आम जनता के हाथों से जंगल छीनने शुरू कर दिए। 1927 में एक गहरी साजिश के अन्तर्गत जंगलों के सम्बन्ध में अंग्रेजी सरकार ने नया कानून बनाया, जिसके अन्तर्गत जिन व्यक्तियों के खसरा-खतौनी (लैंड रिकॉर्ड) में वन या जंगल थे अर्थात् जिनके पास लिखित सबूत थे, केवल उन्हीं लोगों को जंगल का स्वामित्व दिया गया। चूंकि परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत इस प्रकार के लिखित रिकॉर्ड बहुत कम लोगों के पास थे। अत: इस कानून की आड़ में रची गई साजिश से 40 प्रतिशत भारतीय जंगलों की स्वामी अंग्रेजी सरकार हो गई। फिर आजादी के बाद बनी भारतीय सरकार ने रही-सही कमी को भी पूरा कर दिया तथा कानून बनाकर सभी

सामलाती जंगलों का स्वामित्व अपने हाथों में ले लिया। 1952 में राजस्थान वन अधिनियम बना जिससे वन विभाग, राजस्थान का सबसे बड़ा जमींदार बन गया और यहाँ के 25 प्रतिशत जंगलों को हथिया लिया। यहाँ तक कि जंगलों से लोगों को मिलने वाले लाभ को आज भी लोगों का अधिकार न मानकर उसे वन विभाग द्वारा 'छूट' कहा जाता है। राजस्थान में आज वन सम्बन्धी 30-40 कानून हैं। वनों की सरकारी परिभाषा ही यह है कि सरकार जिसे वन कहे वही वन है। भले ही उस क्षेत्र में एक भी पेड़ न हो। आजादी के समय राजस्थान में 15 प्रतिशत जंगल थे। मगर आज केवल 3 प्रतिशत भी नहीं रह गये हैं। पूरे भारत में इनका प्रतिशत मात्र 18 से 20 शेष बचा है। आज वनों की स्थिति बहुत ही दयनीय व शोचनीय हो गई है।

वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था : वनों की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था के ढह जाने से और पुरानी मान्यताओं के टूट जाने से वनों का क्षेत्रफल सिमटता जा रहा है। जहाँ वन हैं भी तो केवल नाममात्र को। बड़े व पुराने पेड़ लगातार कटते जा रहे हैं, नये पेड़ लगते नहीं। अगर वृक्षारोपण की योजनाएँ बनती भी हैं तो केवल कागजों पर। थोड़े-बहुत वृक्ष लगाये जाते हैं, जो उचित रख-रखाव व पालन-पोषण की कमी के कारण सूख जाते हैं। सामलात देह की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था के नष्ट होने के कारणों पर अलग अध्याय में प्रकाश डाला गया है। आज अधिकांश जंगल वन विभाग के पास हैं। जहाँ भ्रष्टाचार इस प्रकार व्याप्त है कि शेष बचे हुए जंगलों की रक्षा करना बहुत दुष्कर लगता है। जंगलात विभाग के भ्रष्ट अधिकारी और कर्मचारी मिलकर जंगल का सफाया तेजी से करा रहे हैं। आज रक्षक ही भक्षक बने हुए हैं, तो जंगलों को बचाना, उनका संरक्षण और विकास बहुत कठिन नजर आ रहा है। ग्राम पंचायतों के पास जो जंगल हैं, उनमें पेड़ नाममात्र को ही रह गये हैं। काँकड़बनी, देवबनी, रखतबनी, देव ओरण्य, रूँध, बीड़, वाल आदि सभी परम्परागत व्यवस्थाओं के नष्ट हो जाने तथा सरकारी नीतियों के कारण, जंगल नष्ट हो गये हैं। वर्तमान में ऐसे अनेक वन खण्ड हैं, जिनके नाम से ही पता चलता है कि कभी यहाँ पर सघन और विशेष प्रजातियों के पेड़ों का जंगल मौजूद था; लेकिन आज की भोगवादी और नैतिक पतन से परिपूर्ण मानव सभ्यता के कारण यहाँ इन वन खण्डों में पेड़ नाममात्र को ही बचे हैं। लालची, स्वार्थी व भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति की मृगतृष्णा के पीछे दौड़ने वाले तथा अपने आपको सुसंस्कृत, सभ्य और आधुनिक कहने वाले चंद मुट्ठीभर लोगों ने भारतीय संस्कृति के नाम पर कलंक बनकर जंगलों व वनों की समृद्ध संपदा का न केवल विनाश किया है, बल्कि अपने लाभ हेतु उन्हें नष्ट करने पर तुले हुए हैं। आज वनों की स्थिति इतनी शोचनीय हो गई है कि अगर शीघ्र ही कुछ नहीं किया गया तो वनों को ही नहीं, भारतीय समाज पर भी एक भयंकर खतरा मण्डरा रहा है, गर्दन पर तलवार लटक रही है। पर्यावरण असंतुलन के कारण उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक त्रासदियों को भाँपकर यहाँ के चिन्तक, विचारक, समाज सुधारक और वैज्ञानिक गला फाड़कर वनों के संरक्षण और पर्यावरण सन्तुलन के लिए चिल्ला रहे हैं। मगर चन्द स्वार्थी और लाभग्राही लोगों ने अपने निहित स्वार्थों हेतु कुछ इस प्रकार के जाल व ताने-बाने बना रखे हैं कि उन्हें तोड़ना कठिन प्रतीत हो रहा है। आज एक जन आन्दोलन और जन जागरण (चेतना) अभियान की आवश्यकता को गहराई से महसूस किया जा रहा है; जिसके बिना उस सशक्त, भ्रष्ट एवं स्वार्थी ताने-बाने को तोड़कर वनों के संरक्षण और विकास एवं पर्यावरण सन्तुलन के कार्य को अंजाम तक नहीं लाया जा सकता।

वनों और जंगलों को इस दयनीय स्थिति तक पहुँचाने के मूल में वर्तमान प्रबन्धन व्यवस्था ही है, जिसका प्रमुख उत्तरदायित्व सरकारी नीतियों और भोगवादी संस्कृति पर है। सरकारी नीतियों के कारण ही सामलाती जंगलों को लोगों के हाथों से छीन कर सरकारीकरण किया गया है। सरकार ने जंगलों को संरक्षण हेतु चार वर्गों में बाँटा है, जो इस प्रकार है :

1. वे जंगल जिनकी सीमा निर्धारित की गई है (डिमारकेटिड फोरेस्ट)।
2. संरक्षित जंगल (प्रोटेक्टिड फोरेस्ट)।
3. आरक्षित जंगल (रिजर्व फोरेस्ट)।
4. गाँव के जंगल (विलेज फोरेस्ट)।

उक्त चारों प्रकार के जंगलों पर विस्तार से लिखना तो विषय को अनावश्यक रूप से बढ़ाना ही है। मगर पहले तीन प्रकार के जंगलों की स्वामी तो सरकार अर्थात् वन विभाग है और अन्तिम की स्वामी ग्राम पंचायत है। ग्राम पंचायतों और वन विभाग दोनों ने ही रक्षण के स्थान पर भक्षण का कार्य किया है। ग्राम पंचायतों के जंगलों में तो वास्तव में पेड़ बचे ही नहीं हैं। अगर कहीं एक-दो अपवादों के रूप में पेड़ हैं भी तो वन विभाग व सरकारी अधिकारीगण उन पर गिद्ध दृष्टि जमाये बैठे रहते हैं कि कब मौका मिले और कब माल यारों की जेब में आये। गाँव के जंगलों को हड़पने के लिए कानून भी बनाये गये हैं, यथा-दफा-38 के अन्तर्गत अगर गाँव वाले अपने ग्राम पंचायती जंगल को नहीं सम्भाल पाते तो ये जंगल सरकार के हो जायेंगे।

तस्वीर का एक पार्श्व अगर गन्दा व भद्दा होता है तो दूसरा आकर्षक और सुन्दर भी। इस प्रकार ग्राम पंचायतों और वन विभाग में सभी लोग स्वार्थी, लालची और नालायक नहीं होते। ऐसे भी

लोग तंत्र में देखने को यदा-कदा मिल जाते हैं जो जंगलों या वनों के संरक्षण और विकास के लिए तन, मन, धन से समर्पित हैं। इनके और अन्य समर्पित लोगों के सम्मिलित प्रयास से जन-जागरण और जन-आन्दोलन ने आधार ग्रहण किया है, जो अपने शैशव काल में है। जिसका परिणाम संयुक्त वन प्रबन्धन के रूप में परिलक्षित हो रहा है।

संयुक्त वन प्रबन्ध व्यवस्था : बुद्धिजीवियों और सच्चे पर्यावरण प्रेमियों के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप जंगल संरक्षण, विकास और पुनरुत्थान के क्षेत्र में आशा की एक मद्धिम सी किरण संयुक्त वन प्रबन्धन व्यवस्था के रूप में परिलक्षित हुई है। पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, हरियाणा, उड़ीसा तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में यह व्यवस्था प्रायोगिक रूप में शुरू की गई है। इसकी सफलता को देखते हुए भारत के अन्य क्षेत्रों में भी इस व्यवस्था को अपनाने हेतु विचार-विमर्श व जन आन्दोलन चल रहे हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत जंगलों के प्रबन्धन की वर्तमान व्यवस्था के स्वरूप में अहम् परिवर्तन किये जाते हैं। लोगों के जंगलों को लोगों के हाथों में सौंप कर संरक्षण की बात की जा रही है। हालांकि इस प्रबन्ध व्यवस्था में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त वन विभाग, गैर सरकारी संगठन, वैज्ञानिक व आवश्यकतानुसार अन्य इकाइयाँ भी सम्मिलित की जाती हैं। ऐसे प्रयोग जहाँ भी किये गये हैं, अभी तक तो सफल हुए हैं। मगर इस व्यवस्था में 100 प्रतिशत लाभ के अधिकार गाँव वालों को दिये बिना इस संयुक्त प्रबन्धन व्यवस्था के पूर्णरूपेण सफल होने की आशा कम ही नजर आती है।

★★★

वन संरक्षण के सामान्य तरीके

वनों के सिमटते आकार और उनकी वर्तमान स्थिति को देखते हुए बुद्धिजीवियों, विचारकों और वैज्ञानिकों के बीच पर्यावरण संतुलन के मुद्दे को लेकर छिड़ी बहस, जो कि नित्य प्रचार माध्यमों का एक अहम् मुद्दा बन गई है, पर ध्यान देने से यह बात अच्छी प्रकार समझ में आ जाती है कि वन संरक्षण की बात कितनी महत्त्वपूर्ण एवं अर्थपूर्ण है। किसी भी देश की समृद्धि की वास्तविक माप वहाँ के प्राकृतिक संसाधन ही हैं। इन संसाधनों में वनों की भूमिका प्रमुख है। आज के वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि पर्यावरण सन्तुलन का मुद्दा सीधा वनों से जुड़ा है। वन और पर्यावरण में गहरा सम्बन्ध है, हालांकि भारतीय संस्कृति का तो शुरू से ही ऐसा मानना रहा है। वनों के संरक्षण के सम्बन्ध में क्षेत्र तथा परिस्थितियों के अनुरूप अनेक संरक्षण के तरीके बतलाये जाते रहे हैं। कुछ सामान्य तरीकों पर यहाँ संक्षिप्त विचार किया जा रहा है। परिस्थिति, जलवायु और क्षेत्र विशेष को ध्यान में रखकर, आवश्यकतानुसार इनमें बदलाव व संशोधन किये जा सकते हैं। ये उपाय निम्नवत् हैं :

जन–सम्पर्क : किसी भी भयंकर समस्या के समाधान के लिए जन चेतना और सहयोग परम आवश्यक है। जब तक लोगों में समस्या के समाधान हेतु समझ पैदा नहीं होगी, तब तक समस्या से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। वन संरक्षण तो आज की महानतम् एवं ज्वलन्त समस्या है। अत: इन संसाधनों को बचाने हेतु लोगों को जाग्रत करना नितान्त आवश्यक है। इस गम्भीर समस्या के साथ लोगों के हित प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से जुड़े हुए हैं। जन जागरण अभियान द्वारा लोगों को वन संरक्षण के सम्बन्ध में शिक्षित एवं संगठित किया जा सकता है। इस काम को गैर सरकारी संगठन, प्रचार माध्यम और कुछ जिम्मेदार सरकारी विभाग बखूबी कर सकते हैं। तरुण भारत संघ ने 1994 तक 95 गाँवों में जन जागरण अभियानों की मदद से जंगल संरक्षण हेतु लोगों के संगठन स्थापित किये थे, जो आज बढ़कर कई हजारों की संख्या में हो गये हैं। यह प्रक्रिया अब भी निरन्तर जारी है, जहां वन संरक्षण का कार्य लोग जिम्मेदारी से कर रहे हैं। सरिस्का–संघर्ष के सन्दर्भ में इन ग्राम संगठनों का उदय हुआ था। इन संगठित गाँवों में आज भी अगर कोई ग्रामवासी गीली लकड़ी काट लेता है तो उस पर 11 या 51 या 101 रुपये का दण्ड स्वयं गाँव वाले मिलकर करते हैं। इन संगठनों द्वारा वनों को बचाने हेतु अपने अलग–अलग नियम स्थापित किये गये हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वन संरक्षण के मामले में जन जागरण अभियान से महत्त्वपूर्ण सहायता तो मिलेगी ही, एक आधारभूत ढाँचा ग्रामीण संगठनों के रूप में खड़ा हो जायेगा। अरवरी संसद् इन संगठनों का एक सक्षम उदाहरण है, जहाँ के 72 गाँवों के प्रतिनिधि (जल–संसद्) साल में दो बार नियमित रूप से बैठ कर जल, जंगल व जमीन के बारे में सकारात्मक चिंतन करते हैं।

शिक्षा एवं नैतिक मूल्य : वर्तमान में सभी गम्भीर समस्याओं के मूल में अशिक्षा है। अशिक्षित लोग समस्याओं के वास्तविक स्वरूप, उनके कारण और निदान को उचित रूप में नहीं समझ पाते हैं। भारत में अशिक्षा का महादानव विकराल रूप में विद्यमान है। इसको समाप्त किये बिना भारत की प्रगति और विकास के सम्बन्ध में सोचना कोरी बातें बनाने के समान ही है। शिक्षित व्यक्तित्व ही विकास के आधार–स्तम्भ हो सकते हैं। लेकिन आज शिक्षा की एक विकसित और सुधरी हुई प्रणाली की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। विद्यमान शिक्षा प्रणाली और व्यवस्था तो सही अर्थों में शिक्षित व्यक्तित्व उत्पन्न करने में असमर्थ ही नहीं पंगु भी है। इसलिए इस शिक्षा व्यवस्था को बदलना या सुधारना नितान्त आवश्यक है। यह व्यवस्था जो आज मौजूद है, केवल बेरोजगारों की भीड़ की जन्मदायिनी है। आज इसके स्थान पर एक सुदृढ़, क्षेत्र और परिस्थिति के अनुकूल, पर्यावरण सहअस्तित्व की पोषक, नैतिक मूल्यों की धारक एवं विभिन्न क्षेत्रों (कार्यों) में निपुण, कर्मठ, कुशल तथा कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को पैदा करने वाली शिक्षण व्यवस्था की आवश्यकता है।

नैतिक मूल्यों का पतन इस सीमा तक हो चुका है कि आज प्रत्येक आदमी अपने स्वार्थ एवं लाभ के सामने दूसरों की जिंदगियों से खेल रहा है। दूसरे क्षेत्रों की बात को छोड़कर हम केवल वनों के परिप्रेक्ष्य में ही देखें तो आश्चर्य होता है। परम्परागत सामलाती व्यवस्था में प्रत्येक आदमी व्यवस्था के विभिन्न कार्यों को अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझकर ईमानदारी व त्याग की भावना को मन में धारण करके करता था, लेकिन आज सब कुछ उलटा हो रहा है। यह अटल सत्य है कि वन संरक्षण का कार्य लोगों की हिस्सेदारी के बिना सम्भव नहीं, लेकिन लोगों के नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना किये बिना, इस हिस्सेदारी से लाभ के स्थान पर हानि भी सम्भव है। नैतिक मूल्यों का मूल उचित शिक्षा ही है।

अत: शिक्षा और नैतिक मूल्यों के अभाव में वन संरक्षण ही क्या, अनेकानेक विकासोन्मुख कार्यक्रमों द्वारा भी समाज के सभी वर्गों को समानता के स्तर पर लाभ दिलाना सम्भव प्रतीत नहीं होता।

सरकारी नीतियों में बदलाव : सरकारी नीतियों से परम्परागत सार्वजनिक संसाधनों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों पर संक्षिप्त विचार पहले ही किया जा चुका है। भूमि आवंटन, सार्वजनिक संसाधनों के हड़पने की प्रवृत्ति, ग्राम पंचायतों के अधिकारों व कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप तथा वोटों की राजनीति ने सामलाती संसाधनों पर दसों-दिशाओं से कुठाराघात किया है। इन्हीं नीतियों का परिणाम न केवल समाज में धनी और निर्धन वर्गों को पैदा करना रहा है, अपितु संयुक्त संसाधनों के संरक्षण और विकास की प्रक्रिया को अवरुद्ध करने के साथ-साथ इनकी पोषक परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था को भी समूल नष्ट कर दिया है। सामलाती संसाधनों के संरक्षण, विशेषतया वन संरक्षण के मामले में सरकारी नीतियों और सरकारी दृष्टिकोण को बदले बिना काम नहीं चल सकता। सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार व गलत सरकारी नीतियों ने वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था को वनों की संरक्षक और पोषक बनाने के स्थान पर शोषक और विध्वंसक बना दिया है। अत: इन नीतियों में परिवर्तन किये बिना वन संरक्षण की बात करना, मात्र गप्प और भाषणबाजी के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता।

गुटबन्दी : विभिन्न वर्गों में आपसी मतभेदों ने सदैव वन संरक्षण के कार्यों को पीछे धकेला है। अनेकों विश्लेषणों से यह बात सामने आई है कि विभिन्न प्रकार की गुटबाजी, वर्ग-भेद, समूह बिखराव आदि सर्जन के स्थान पर विध्वंस और ह्रास को जन्म देते हैं। जिन गाँवों में एक ही जाति के लोग रहते हैं, वहाँ वन संरक्षण, गोचर विकास व अन्य सामलाती कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाया जा सकता है, जबकि विजातीय और विभिन्न समूहों में विभाजित गाँवों में ऐसे कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना बहुत कठिन है। वोटों की राजनीति और अन्य अनेक अनुचित उत्प्रेरकों (सरकारी कार्यों) ने लोगों के आपसी विवादों को बढ़ाकर न केवल वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया, बल्कि सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण और विकास के मूल में निहित सह-अस्तित्व व भाई-चारे की भावना को समाप्त करके एकता एवं समानता के आधार पर स्थित परम्परागत व्यवस्थाओं को भी नष्ट कर दिया है। अत: एकता, समानता एवं भाईचारे की भावना को धारण करके ही वन-संरक्षण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सकता है। इसके अभाव में वन-संरक्षण और विकास की अवधारणा मात्र कल्पना ही रह जायेगी।

जनसंख्या नियन्त्रण : एक तरफ तो सार्वजनिक संसाधनों के ह्रास और विनाश की प्रक्रिया अबाध गति से चल रही है, दूसरी तरफ जनसंख्या का महादानव तीव्र गति से अपने शरीर को पुष्ट करता जा रहा है। ऐसी स्थिति में सामलाती संसाधनों, विशेषकर वनों पर जन-दबाव बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार वनों पर दोहरा कुठाराघात हो रहा है। मानव एवं उसके पालतू पशुधन की जरूरतों की अधिकतर आवश्यकता पूर्ति का एकमात्र साधन वन ही हैं। भोजन, चारा व पत्ती, ईंधन, इमारती लकड़ी एवं अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों का विनाश किया जा रहा है और वे सिमट कर मात्र कुछेक क्षेत्रों तक ही सीमित हो गये हैं। मगर दबाव है कि कम होने का नाम ही नहीं लेता। जरूरत से अधिक दबाव जब किसी वस्तु या संसाधन पर पड़ता है, तब वह विकृत या नष्ट हो जाया करते हैं। अत: वनों के संरक्षण और विकास के लिए, वनों पर जन-दबाव को कम करना ही होगा। हमें या तो जनसमूह की जरूरतों के वैकल्पिक स्रोतों को खोजना होगा या फिर जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना होगा। तभी वन संरक्षण कार्यक्रमों को चलाया और बढ़ाया जा सकेगा।

हाट (बाजार) व्यवस्था का उचित स्वरूप : वन उत्पादों का अवैध रूप से बाजार में खुलेआम क्रय-विक्रय तो होता ही है, परम्परागत व्यवस्थाओं को तोड़ने में भी बाजार अहम् भूमिका निभाता है। ठेकेदार और व्यापारिक वर्ग से सम्बन्धित लोग जहाँ एक ओर वन उत्पादों को ग्रामीणों से कौड़ियों के भाव खरीदते हैं, वहीं उन उत्पादों की अवैध प्राप्ति हेतु ग्रामीणों के लिए उत्प्रेरक का कार्य भी करते हैं। अत: बाजार व्यवस्था को इस प्रकार नियंत्रित करना होगा कि वन उत्पादों का अवैध क्रय-विक्रय तो रुके ही, वन विनाश और परम्परागत व्यवस्थाओं के ह्रास की प्रक्रिया में बाजारों की उत्प्रेरक भूमिका पर भी अंकुश लग जाये और बाजार व्यवस्था वन संरक्षण में सकारात्मक भूमिका निभा सके।

संयुक्त वन प्रबन्धन व्यवस्था : वन संरक्षण की यह सर्वोत्तम व्यवस्था तभी सिद्ध हो सकती है, जब 100 प्रतिशत लाभ के स्वामी गाँव वाले बनें। इस व्यवस्था में ईमानदार सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी (वन विभाग), गैर सरकारी संगठन, वैज्ञानिक, समाजसेवी, पत्रकार तथा ग्रामीण व आवश्यकतानुसार अन्य व्यक्तियों को सम्मिलित किया जा सकता है। क्षेत्र और परिस्थितियों

के अनुरूप इस व्यवस्था को ढाल कर लचीलापन दिया जा सकता है। कुछ समय से सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है तथा अनेक राज्यों में इस व्यवस्था को परीक्षणार्थ अपनाया है। इस व्यवस्था को अनेक क्षेत्रों (हरियाणा, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र आदि) में सफल

भी पाया गया है। मगर इस व्यवस्था की सफलता का मूल मंत्र यही है कि वन संपदा से प्राप्त सम्पूर्ण लाभ को समानता के आधार पर गाँव वालों को दिया जाये। इस व्यवस्था में शामिल सभी व्यक्ति नैतिक मूल्यों को धारण करते हुए, समर्पित भाव से कर्तव्यपरायणता के साथ कार्य करें तो बहुत थोड़े समय में ही भारत की धरती पर वन सम्पदा का अम्बार पहले से भी अधिक लग जायेगा और तभी वन-संरक्षण, विकास और पर्यावरण की सभी समस्याओं का समूल विनाश होकर यह देश विश्व में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेगा।

उक्त विचारित नीतिगत तथ्यों के साथ-साथ निम्न रचनात्मक कार्यों से, वन संरक्षण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने के साथ ही साकार रूप दिया जा सकता है।

चारदीवारी या बाड़ करना : इस युक्ति से न केवल वन संरक्षण की प्रक्रिया को लागू किया जा सकता है, अपितु संरक्षण कार्य को स्थिरता भी प्रदान की जा सकती है। बाड़ लगाने का कार्यक्षेत्र और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर, लोगों की सुविधा, समझ और सलाह से करने पर ही सफलता मिल सकेगी। बाड़ को खाई, कँटीले तारों, मिट्टी, ईंट या पत्थरों की दीवार अथवा वनस्पति की बाड़ के रूप में स्थापित किया जा सकता है। अवैध चराई, कटान, चोरी व अन्य कई समस्याओं से बाड़ के माध्यम से निपटा जा सकता है तथा वन संरक्षण का कार्य बखूबी किया जा सकता है।

चराई पर रोक : पालतू पशुओं के लिए चारे-पत्ती अर्थात् भोजन की व्यवस्था अधिकांश क्षेत्रों में चराई द्वारा ही की जाती है। एक तरफ तो गोचर जमीनों का तेजी से ह्रास हो रहा है, दूसरी तरफ जनसंख्या वृद्धि के कारण पशु संख्या में भी अधिकता आई है, भले ही पशुओं के दुग्ध उत्पादन में कमी आई हो। अत: वनों पर चारे के लिए दबाव बढ़ा है और यह क्रम निरन्तर जारी है। घूस और भ्रष्टाचार के बल पर ही सही, जहाँ आरक्षित और संरक्षित क्षेत्रों तक में पशु चराई बढ़ी है; वहीं चारा-पत्ती के लिए वृक्ष-शाखाओं को काट कर वन ह्रास की प्रक्रिया को भी तीव्र गति से बढ़ाया जा रहा है। अत: वन क्षेत्रों में चराई पर सम्पूर्ण रोक लगाकर, चारे के वैकल्पिक साधनों को खोज कर उनका विकास करने की आवश्यकता है। चराई पर रोक लगाने वास्ते काल, क्षेत्र, परिस्थिति और आवश्यकता को ध्यान में रखना जरूरी है।

अवैध कटान पर नियन्त्रण : जंगलों के संरक्षण की प्रक्रिया के रास्ते में आने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण रुकावट अवैध कटान ही है। यह कटान सरकारी विभाग (वन विभाग) के अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा ठेके के माध्यम से किया जाये या ग्रामीण लोगों द्वारा अपनी आवश्यकता या विशुद्ध लाभ के लिए, प्रभाव तो चारों तरफ से वनों पर ही पड़ता है। अन्ततोगत्वा वनों का विनाश तीव्र गति से हो रहा है। इसलिए अवैध कटान पर नियंत्रण किये बिना वन संरक्षण की विचारधारा और यह कार्य अर्थहीन हो जाता। अत: जहाँ एक ओर अवैध कटान को रोकना होगा, वहीं ग्रामीण समुदायों की आवश्यक जरूरतों का भी ध्यान रखना होगा। भ्रष्ट सरकारी तंत्र में नैतिक मूल्यों की स्थापना करने के साथ ही कठोर नियम व कानून भी बनाने होंगे; क्योंकि अवैध कटान का 80 प्रतिशत भ्रष्ट सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों की मिलीभगत द्वारा ही ठेकेदारों के माध्यम से किया जाता रहा है।

नये पेड़ लगाना : भारत भर में अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ वृक्षारोपण

का कार्य सुविधापूर्वक किया जा सकता है। विरल होते जंगलों में पुराने पेड़ों के संरक्षण तथा नये पेड़ लगाकर उनके सघन होने की प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है। मगर वृक्षारोपण के कार्य में क्षेत्र, जलवायु, ग्रामीण लोगों की आवश्यकता, उनकी सोच-समझ, सलाह एवं विश्वास तथा वृक्ष-प्रजातियाँ आदि बातों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। कौन से क्षेत्र और जलवायु में कौन-सी प्रजाति को लगाना है, इस बात का निर्णय वन विभाग के स्थान पर ग्रामीणों द्वारा किया जाना चाहिए। पौधशालाओं के निर्माण से लेकर पौधों के रोपण तक की प्रक्रिया गाँव के लोगों द्वारा ही संचालित होनी चाहिए। वन विभाग को मात्र सलाहकार की भूमिका में रहना चाहिए।

नये पौधों का रख-रखाव एवं पालन-पोषण : अगर वृक्षारोपण करना आवश्यक है तो नये पौधों का पालन-पोषण उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है। मात्र पेड़ लगाने से वनों कर संरक्षण, विकास और विस्तार नहीं हो सकता। नये कोमल पौधों की देख-रेख तथा उनके बड़े होने तक रक्षा बहुत जरूरी है। नये पौधों की सिंचाई, बीमारियों व कीटों से बचाव तथा खरपतवार निकालना आदि अनेकों क्रियाओं के साथ-साथ उनकी पालतू पशुओं व जंगली जानवरों से रक्षा करना भी नितान्त आवश्यक है। और यह सब कुछ गाँव वालों की मदद के बिना तथा सरकारी कर्मचारियों की समर्पित भावना के बिना सम्भव नहीं हो सकता।

पुराने पेड़ों की छँगाई करना : जंगल में वृक्षों की अनेकों ऐसी प्रजातियाँ होती हैं जो छँगाई के बिना सूख जाती हैं। पुराने पेड़ों की सूखी और खराब होती जा रही शाखाओं को काट कर अलग कर देना छँगाई कहलाती है। जिस प्रकार बेकार व सड़े हुए मानव के अंगों को काट कर शरीर को पूर्णतया नष्ट होने से बचाया जाता है, ठीक उसी प्रकार वृक्ष-शरीर से गन्दे, बेकार और सूखी शाखाओं को काट कर वृक्ष को अधिक समय तक जिन्दा रखा जा सकता है। मगर इस प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य बिन्दु यह है कि केवल सूखी व बीमारियों और कीटों (कीड़ों) से प्रभावित शाखाओं को ही वृक्ष-शरीर से छँगाई की प्रक्रिया द्वारा अलग किया जाये, मोटी व स्वस्थ शाखाओं को नहीं।

ईंधन एवं इमारती लकड़ी के नये विकल्प खोजना: ईंधन व इमारती लकड़ी के रूप में गाँववासियों द्वारा वनों को काफी नुकसान पहुँचाया जाता है। गाँव वालों की जरूरत को ध्यान में रखकर ईंधन व इमारती दोनों प्रकार की लकड़ियों के लिए नये विकल्पों को खोजकर उनमें लोगों की रुचि पैदा करके वन संरक्षण की प्रक्रिया की गति को तेज किया जा सकता है। मगर खोजे गए विकल्प सस्ते (रियायती दर पर), सुलभ एवं सरल तथा अधिक प्रभावी होने पर ही गाँव वालों में प्रिय हो सकते हैं। गैस, सौर ऊर्जा, केरोसीन तथा टीन व लोहा आदि इनके नये उदाहरण हो सकते हैं।

उक्त संक्षिप्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वन संरक्षण के कार्यक्रमों को बनाने व लागू करने से महत्त्वपूर्ण कुछ अन्य तथ्य भी हैं, जिनको गौण मानकर वन संरक्षण का कार्य नहीं किया जा सकता। वे तथ्य नीतिगत हों या क्रियान्वयन स्तर के, दोनों का वन संरक्षण प्रक्रिया में अपना-अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। दोनों तरह के उपायों को अपनाकर ही वन संरक्षण की कल्पना एवं सपने को साकार रूप दिया जा सकता है। इस संरक्षण प्रक्रिया में जहाँ एक ओर सरकार और उसकी नीतियों का प्रमुख हाथ हो सकता है, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण और वनवासियों की भी अहम् भूमिका है। गैर सरकारी संगठन, वैज्ञानिक और विचारक तो मात्र उत्प्रेरक का कार्य कर सकते हैं या फिर जन-चेतना और विधि तथा नीति निर्धारण में सहायता कर सकते हैं। वन संरक्षण के पावन और उत्तम कार्य को युद्ध स्तर पर किये बिना सफलता नहीं मिलेगी।

★★★

चरागाह की परम्परागत एवं वर्तमान स्थिति तथा प्रबन्ध व्यवस्था

चरागाह की परम्परागत स्थिति : भारतवर्ष में चरागाह की परम्परागत स्थिति बहुत अच्छी रही है। चरागाह का अर्थ उन क्षेत्रों से है, जो भूमि प्रत्येक गाँव में मवेशियों के चरने के लिए छोड़ी जाती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और कृषि से जुड़े धन्धों में पशुपालन मुख्य धंधा है। अत: प्राचीन समय में ही यहाँ पशुओं के चरने का स्थान प्रत्येक गाँव में निश्चित किया जाता था। यह क्षेत्र इतना विस्तृत और व्यापक होता था कि पूरे गाँव के पशु इसमें बारह महीने चरते थे और कभी चारे की कमी नहीं होती थी। पशुओं को खूँटे पर बाँधकर कोई नहीं खिलाता था। ग्वाले पूरे दिन सुबह से शाम तक पशुओं को चराते थे और शाम को गौरे (पशुओं के आराम का स्थान) में पशुओं का दुग्ध दुह लिया जाता था। अनेक क्षेत्रों में रात को पशुओं को फिर चरने के लिए छोड़ दिया जाता था, जो चरागाह में चर कर दूध निकलवाने के समय गौर में स्वयं ही पुन: एकत्र हो जाते थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि चरागाह ही पशुओं के लिए चारे का स्रोत होता था। यह परम्परागत व्यवस्था हमारे धार्मिक ग्रंथों में भी देखने को मिलती है। महाभारत के कृष्ण इसका उदाहरण हैं। कृष्ण का बचपन ग्वाले के रूप में ही बीता था। उनके यहाँ अनेकों गायें थीं,जिन्हें कृष्ण स्वयं चरागाहों में चराते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में चरागाहों की व्यवस्था परम्परागत रूप से ही रही है। प्रत्येक गाँव का अपना अलग-अलग चरागाह होता था। एक गाँव के मवेशी दूसरे गाँव के चरागाह में नहीं जाते थे, क्योंकि अपने गाँव के चरागाह की घास ही खत्म नहीं होती थी, तब दूसरे के यहाँ जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। कभी-कभी प्राकृतिक आपदाओं यथा-सूखा, अकाल आदि के समय पशुओं को लेकर घने जंगलों या चारे से परिपूर्ण क्षेत्रों की ओर जाना हो जाता था। मगर अधिकांश गाँवों के सभी मवेशी अपने ही चरागाह में चरते थे। अत: यह बात स्पष्ट है कि चरागाह की परम्परागत स्थिति बहुत अच्छी थी।

चरागाहों की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था : गाँव के चरागाहों में गाँव के सभी पशुओं की आवश्यकता की घास की उपलब्धता, चरागाहों की अच्छी प्रबन्ध व्यवस्था की द्योतक थी। ये सभी चरागाह सार्वजनिक या सामलाती होते थे। गाँव के लोग ही अपने सामलाती चरागाहों की प्रबन्ध व्यवस्था करते थे। पहले गाँवों में अच्छे संगठन होते थे और लोगों में नैतिकता थी। लोग भोगवादी संस्कृति से दूर रहकर अपने चरागाहों का प्रबन्ध स्वयं करते थे। चरागाहों के प्रति अपने दायित्वों और जिम्मेदारियों को सहर्ष निभाते थे। यहाँ के लोग अपनी संस्कृति और अध्यात्म से प्राप्त शिक्षा के अनुसार ही त्यागी और स्वाभिमानी होते थे। उनके अपने गाँवई दस्तूर होते थे। उन्हीं दस्तूरों व नियमों के अनुसार चरागाह का प्रबन्ध, उपयोग आदि प्रक्रियाएँ चलती थीं। लोग केवल अपनी आवश्यकतानुसार ही चरागाहों से लेते थे तथा लाभ लेने या बेचने की प्रवृत्ति उनमें नहीं होती थी। चारे की कमी में यदि लोगों ने संयुक्त रूप से निर्णय ले लिया कि चरागाह के इस क्षेत्र में जब तक घास वृद्धि पूरी नहीं हो जाये तब तक चराई पर रोक है तो कोई भी ग्रामवासी उस निश्चित किये गये क्षेत्र में अपने मवेशी नहीं चराता था। चरागाहों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर श्रमदान या आर्थिक दान सभी कुछ ग्रामवासी परस्पर मिलकर करते थे और साथ ही साथ उसका उपयोग भी संयुक्त रूप से समानता के आधार पर ही किया जाता था। इस प्रकार चरागाहों की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि चारे की कमी कभी नहीं होती थी।

चरागाहों की वर्तमान स्थिति : आज चरागाह सिमटकर छोटे हो गये हैं। कुछ क्षेत्रों में तो चरागाह बिल्कुल ही लुप्त हो गये हैं। अनेक इलाकों के मानचित्रों में छोटे-छोटे चरागाह जरूर हैं मगर व्यावहारिक रूप से उनका नाम क्या निशान भी मौजूद नहीं रहा है, जबकि कई क्षेत्रों में तो इन चरागाहों का गाँव के मानचित्रों में ही निशान नहीं रहा। यह सब कुछ सरकारी नीतियों और भोगवादी सभ्यता का स्पष्ट प्रभाव है। 'सामलात देह के ह्रास के कारण' नामक अध्याय में अनेकों कारणों पर प्रकाश डाला गया है। भोगवादी और आधुनिक संस्कृति के परिणामस्वरूप नैतिकता में आई गिरावट का सीधा प्रभाव चरागाहों पर भी परिलक्षित होता है, क्योंकि प्रथम तो चरागाह रहे ही नहीं, अगर कहीं हैं भी तो सिकुड़कर छोटे हो गये हैं। जिन पर नित्य-प्रतिदिन धनी और प्रभावशाली लोग अतिक्रमण कर रहे हैं। उन्हीं के पास पशुधन भी अधिक है। अत: चरागाहों का उपयोग भी प्रभावशाली लोग ही कर रहे हैं। अति उपभोग के कारण चरागाहों में घास की उपलब्धता नहीं के बराबर रह गई है। चरागाह भूमि की उर्वरक शक्ति क्षीण होती जा रही है। सरकार की भूमि आवंटन नीति, अतिक्रमण, अतिउपभोग, अति पशुधन दबाव व अन्य अनेक ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से चरागाह नष्ट होते जा रहे हैं। इस दिशा में गुटबन्दी और नैतिक पतन ने तो सोने पर सुहागे का काम किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि चरागाहों की आज की स्थिति बहुत खराब है और यही हाल चलता रहा तो शायद कुछ समय बाद चरागाहों का नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

चरागाहों की वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था : किसी भी सामलाती वस्तु की प्रबन्ध व्यवस्था का आधार लोगों का संगठन है। वर्तमान में लोगों के बीच गुटबाजी इस प्रकार व्याप्त है कि सामलाती प्रबन्ध व्यवस्था सुचारु रूप से चल ही नहीं सकती। बड़े और अनेक जातियों वाले गाँवों में तो गुटबाजी के कारण सामलाती प्रबन्ध व्यवस्था को कायम रखना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। ऊपर से सरकारी नीतियों एवं हस्तक्षेप ने तो चरागाहों की प्रबन्ध व्यवस्था को ठप्प करके ही रख दिया है। प्रथम तो चरागाह ही नहीं रहे, उस पर आज की टूटी-फूटी, प्रभावहीन प्रबन्ध व्यवस्था ने चरागाहों की स्थिति को और बदतर बना दिया है। आज ग्राम पंचायतों के पास इनकी प्रबन्ध व्यवस्था का उत्तरदायित्व है, मगर ग्राम पंचायतें चरागाहों पर मिलने वाले अनुदान के नाम पर तो आगे आ जाती हैं तथा चरागाहों के संरक्षण एवं विकास वास्ते बड़ी-बड़ी योजनाएँ पेश करने को तत्पर रहती हैं। परन्तु वास्तव में उनकी तरफ ध्यान देने का समय ही ग्राम पंचायतों के पास नहीं है और उनसे अवैध लाभ उठाना ही शायद इसका परम लक्ष्य है।

अनेक अपवाद भी हैं। कई क्षेत्रों में अच्छा काम भी हुआ है। मगर इनकी संख्या समुद्र में एक बूँद के समान ही है। चरागाहों के संरक्षण और विकास हेतु जहाँ सशक्त प्रबन्ध व्यवस्था का होना आवश्यक है, वहीं अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेप होना भी गलत है।

★★★

चरागाह संरक्षण के सामान्य तरीके

चरागाह की वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनके संरक्षण और विकास की बहुत अधिक आवश्यकता है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक जिस गति से चरागाहों के क्षेत्र में कमी आई है तथा इन भूमियों के उपजाऊपन में भी ह्रास हुआ है। यदि यह क्रम आगे भी जारी रहा तब चरागाहों की स्थिति बद से बदतर होती चली जायेगी। परिणामस्वरूप न केवल पशुधन की संख्या में भारी कमी होगी, बल्कि अच्छे व बड़े पशुधन का स्थान निम्न कोटि का पशुधन ले लेगा। पिछले कुछ वर्षों में एकत्र किये गये आँकड़ों तथा विश्लेषणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भैंसों और गायों की जगह लोगों ने चारे की कमी के कारण भेड़ें व बकरियाँ अधिक पालनी शुरू कर दी हैं। अगर चरागाहों के ह्रास का यही क्रम जारी रहा तो सभी स्थानों पर विशेषकर शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बकरियाँ ही बकरियाँ नजर आयेंगी। चरागाह के ह्रास के कारणों में भूमि आवंटन की सरकारी नीति हो, अतिक्रमण हो या अतिदोहन एवं अन्य कारण हों, इनके संरक्षण के लिए ठोस नीति का निर्माण करना होगा, जिसके अन्तर्गत ऐसे उपाय करने होंगे कि इन सामलाती भूमि क्षेत्रों का व्यावहारिक व प्रत्यक्ष संरक्षण हो सके। अत: चरागाहों के संरक्षण हेतु दो प्रकार के उपाय करने होंगे। प्रथम नीतिगत उपाय, दूसरा व्यावहारिक उपाय।

नीतिगत उपाय : चरागाह संरक्षण हेतु एक वस्तुपरक एवं ठोस नीति की आवश्यकता पिछले कई दशकों से महसूस की जा रही है। मगर स्वार्थी, भ्रष्ट व लालची राजनेताओं और अधिकारियों के अपने निहित स्वार्थों एवं लाभों की वजह से एक ठोस नीति को अमल में लाना बहुत कठिन हो रहा है। किन्तु एक अच्छी व ठोस नीति के अभाव में चरागाहों के संरक्षण की बात करना कोई महत्त्व नहीं रखती। नीतिगत तथ्यों में निम्न बातें लाई जा सकती हैं :-

जन-चेतना: जब तक लोगों की अपनी सोच व समझ चरागाहों के संरक्षण के अनुकूल नहीं बनती, तब तक इनका संरक्षण बहुत कठिन ही नहीं असम्भव है। जन समुदाय के मस्तिष्क और उनके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये बिना चरागाह संरक्षण नहीं किया जा सकता। यह जनसम्पर्क और जन आन्दोलन का कार्य, गैर सरकारी संगठनों और प्रचार माध्यमों की मदद के बिना नहीं चलाया जा सकता। जन जागरण अभियान में शिक्षा और नैतिकता पर बल देना परम आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान में भारत की अधिकतर समस्याओं के मूल में ये दोनों तथ्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में कार्य करते हुए नजर आते हैं। चरागाह का महत्त्व, उनका ह्रास, संरक्षण के उपाय व ठोस नीति को लोगों को बताना और समझाना ही जन जागरण अभियान का उद्देश्य होना चाहिए।

लोगों के संगठनों को मजबूत करना : लोगों के मध्य गुटबन्दी होने के कारण भी सामलाती संसाधनों का ह्रास तीव्र गति से हो रहा है। लोगों में आपसी मेल और संगठन से चरागाह क्या सभी संसाधनों को न केवल संरक्षित किया जा सकता है बल्कि उनके सुधार और विकास की गति में भी तेजी लाई जा सकती है।

सरकारी नीतियों में बदलाव : जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि चरागाह संरक्षण और विकास के लिए एक ठोस और व्यावहारिक नीति का होना बहुत आवश्यक है। मगर सरकारी नीतियाँ तो इन संसाधनों के ह्रास और विनाश की प्रक्रिया को शुरू करने वाली तथा इन क्रियाओं की पोषक हैं। भूमि आवंटन एवं ग्राम पंचायतों के सम्बन्ध में अनावश्यक हस्तक्षेप, दलगत राजनीति आदि अनेक ऐसी बातें हैं; जिनमें बदलाव आये बिना सामलाती संसाधनों का संरक्षण नहीं हो सकता। संरक्षण के लिए बनाई जाने वाली योजनाओं को इस प्रकार से बनाना होगा कि पिछले 4-5 दशकों में चरागाह को होने वाले नुकसान की भरपाई हो सके।

चरागाहों पर पशुधन के दबाव को कम करना : चरागाहों की वर्तमान स्थिति और उस पर पड़ने वाले पशुधन दबाव, दोनों में बहुत असमानता है। चरागाहों के विकास हेतु उनकी उपजाऊ क्षमता को बढ़ाने के लिए, उन पर पशुधन के दबाव को कम करके चारे के अन्य वैकल्पिक साधन जुटाने होंगे। जब तक इन संसाधनों की स्थिति में आवश्यक सुधार न हो जाये, तब तक नियमपूर्वक इन भूमियों पर पशुओं के दबाव को कम रखना होगा, अन्यथा इनके संरक्षण और विकास की प्रक्रिया को तेज गति से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था की अच्छी बातों को अपनाना: वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था में अनेक कमियां होने की बात तो सर्वविदित है परन्तु इनकी परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था के पुनरावलोकन एवं पुनर्मूल्यांकन द्वारा कुछ तथ्यों एवं व्यावहारिक बिन्दुओं को आज के परिप्रेक्ष्य में थोड़े बदलाव के साथ अपनाये जाने से चरागाहों के संरक्षण में सहायता मिल सकती है। समानता पर आधारित कई बिन्दुओं को वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था में जोड़े बिना विकास की गति को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण एवं व्यावहारिक सुधार : चरागाहों से जुड़े लोगों, गैर-सरकारी एवं सरकारी संगठनों, वैज्ञानिकों एवं विचारकों सभी से चरागाह संरक्षण की व्यवस्था के नवीनीकरण या फिर नयी प्रबन्ध व्यवस्था हेतु विचार ग्रहण कर, एक सुधरी हुई स्पष्ट एवं व्यावहारिक प्रबन्ध व्यवस्था को विकसित किया जा सकता है, जो न केवल चरागाह प्रबन्ध करे अपितु इन संसाधनों के तीव्र विकास एवं इनके ह्रास की भरपाई के लिए भी कार्य करे। तभी संरक्षण के उचित लक्ष्य तक पहुँचना संभव है। प्रबन्ध व्यवस्था में गाँव के सभी वर्गों तथा समुदायों का प्रतिनिधित्व तो होना आवश्यक है ही साथ ही साथ क्षेत्र विशेष एवं परिस्थितियों के अनुसार व्यवस्था में लचीलापन भी लाना जरूरी है।

व्यावहारिक उपाय : चरागाह संरक्षण हेतु नीतिगत तथ्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य उपायों को करने पर ही इन संसाधनों के संरक्षण में सहायता मिलेगी, जो निम्नवत हैं:

बाड़ लगाना या चारदीवारी करना : गाँव वालों के श्रमदान एवं अन्य उपायों से चरागाहों के चारों तरफ बाड़ लगाकर अवैध चराई पर रोक लगाई जा सकती है। बाड़ लगाने का कार्य खाई, लकड़ी एवं तारों द्वारा, कच्ची (मिट्टी की) मेंड़ बनाकर, पक्की दीवार या पत्थरों का डंडा खींच कर अथवा वनस्पति की घनी बाड़ द्वारा किया जा सकता है। चरागाह की बाड़ बनाने से जहाँ इसमें अवैध चरान पर रोक लगेगी वहीं इसके विशेष हिस्सों को आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाने हेतु एक चराई चक्र बनाने में भी मदद मिलेगी तथा मिट्टी कटान भी रुकेगा। यह कार्य, क्षेत्र एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लोगों की सलाह पर ही किया जाना चाहिए।

घास सुरक्षा एवं चराई पर रोक : चरागाह भूमियों के उपजाऊपन को बढ़ाने हेतु एवं चरागाह से अधिक चारा प्राप्त करने के लिए इन क्षेत्रों में चराई चक्र लागू किया जाना अतिआवश्यक है। चरागाह के एक हिस्से में चराई पर रोक तब तक लगी रहनी चाहिए जब तक उस हिस्से की घास पूरी तरह विकसित नहीं हो जाती। इस प्रकार इस हिस्से को खोलकर दूसरे हिस्से पर रोक लगानी चाहिए। अत: चराई चक्र निश्चित करने से अधिक घास उपलब्ध हो सकेगी।

अच्छी व नई किस्म की घास लगाना : क्षेत्र एवं परिस्थितियों के अनुरूप चरागाह में गाँव वालों की सलाह एवं सहयोग से अधिक चारा देने वाली घास की प्रजातियों को विकसित किया जा सकता है। इससे चरागाहों के संरक्षण में तो मदद मिलेगी ही साथ ही अच्छा दुग्ध एवं घी उत्पन्न करने वाली घासें, चरागाहों में उपलब्ध होने से दुग्ध उत्पादन में भी वृद्धि होगी।

चारा-पत्ती वाले पेड़ लगाना : चरागाहों के अन्दर गाँव वालों की आवश्यकता, सहमति और इच्छा से चारा-पत्ती वाले अनेक पेड़-पौधों को उगाया जा सकता है। ये चरागाहों के किनारों पर, एक क्षेत्र विशेष में या लाइनों में आवश्यकतानुसार लगाये जा सकते हैं। इस प्रकार के पौधे लगाने से चरागाहों पर घास के दबाव में कमी आयेगी और दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होगी।

जल-प्रबन्ध : चरागाहों में सिंचाई तथा पशुओं हेतु जल प्रबन्ध होना अति आवश्यक है। यह सर्व सहमति से होना चाहिए। इस व्यवस्था के कारण एक ही चरागाह से बहुत अधिक चारा प्राप्त किया जा सकता है तथा जल व्यवस्था के निकट होने पर मवेशियों को भी पानी के लिए अधिक दूर नहीं जाना पड़ेगा। अत: यह व्यवस्था भी अधिक चारा व दुग्ध उत्पादन में सहायक होगी।

खरपतवार निकालना : अक्सर देखा जाता है कि चरागाहों में अनेक ऐसे पौधे पाये जाते हैं जो चारे के रूप में पशुओं द्वारा उपयोग में नहीं लाये जाते। इनको निकाल देने पर एवं इनके स्थान पर चारा योग्य घास व पौधों को लगाने से चारा उत्पादन में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप चरागाह संरक्षण में मदद मिलेगी।

खेती द्वारा चारा पैदा करना : कृषि योग्य भूमियों में जहाँ एक ओर ऐसी फसलों को उगाया जा सकता है जो अनाज के साथ-साथ अच्छा चारा भी देती हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ क्षेत्रों में चारे की अल्पकालिक फसलों को उगाकर, चरागाहों पर बढ़ते दबाव को भी कम किया जा सकता है। इन क्षेत्रों पर दबाव घटने से चारा वृद्धि के लिए अधिक समय इन भूमियों को मिल जायेगा जो इनके संरक्षण में सहायक होगा।

घास खरीदना एवं एकत्र करना : इन दोनों गतिविधियों से चरागाह पर चारे के वास्ते दबाव कम होगा। अत: अधिक चारा वृद्धि होगी। ये कार्य अनुकूल परिस्थितियों एवं क्षेत्रों को देखते हुए ही किये जा सकते हैं। चरागाहों में भी चारे को पकने के बाद ही काट कर इकट्ठा किया जाना चाहिए या साईलेज जैसी विधि को अपनाया जा सकता है।

कुट्टी काटकर खिलाना : एकत्र किये गये चारे को हमेशा कुट्टी (छोटे-छोटे टुकड़ों में करके) काटकर ही खिलाना चाहिए।

इस विधि में जहाँ एक ओर चारे के बेकार जाने की गुंजाइश नहीं होती, वहीं कुट्टी के रूप में चारे को एकत्र करने से वह कम जगह भी घेरता है। कुट्टी के साथ अन्य रातिब (पोषक भोजन यथा–खल, बिनौला, अनाज आदि) भी पशुओं को दिया जा सकता है, जिससे न केवल दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि पशु स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। कुट्टी के रूप में पशुओं को चारा देने से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में चरागाह संरक्षण में मदद मिलेगी।

ऊपर दिये गये विचारों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक ठोस और व्यावहारिक नीति और अन्य व्यावहारिक (क्रियान्वयन स्तर के) उपायों की मदद से चरागाह संरक्षण एवं विकास किया जा सकता है। जहाँ एक ओर संस्कारित शिक्षा और नैतिकता का लोगों में होना आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर परिस्थितियों एवं क्षेत्रों के अनुसार अन्य उपयोगी उपायों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। जन–आन्दोलन के आधार पर ही चरागाह संरक्षण पर बहस छेड़कर, एक ठोस नीति का प्रारूप तैयार किया जा सकता है। गैर सरकारी संगठनों की आवश्यकतानुसार मदद भी इस कार्य में ली जानी चाहिए। मगर यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन संसाधनों की प्रबन्ध व्यवस्था में (चाहे कैसी भी हो) गाँव के चरागाहों का शत–प्रतिशत लाभ गाँव के लोगों को ही मिलना चाहिए।

★★★

ऊर्जा स्रोत

परिचय :

ऊर्जा से कौन परिचित नहीं है। मानव ही नहीं जीव मात्र को ऊर्जा की आवश्यकता होती है। सभी भौतिक, रासायनिक तथा जीवनीय क्रियाओं के पूर्ण संचालन हेतु ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा वह ताकत है जो किसी भी कार्य के करने हेतु जरूरी है। अपने जीवन में हम जितनी भी क्रियाएँ सम्पूर्ण होती हुई देखते हैं, सभी में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। ऊर्जा की अनुपस्थिति में कोई भी कार्य सम्पादित नहीं हो सकता। ऊर्जा के सम्बन्ध में वैज्ञानिक आइंस्टीन का सिद्धान्त भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसके अनुसार 'ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती अपितु इसका रूप बदल जाता है।'

यहाँ पर हम ऊर्जा के वैज्ञानिक विवेचन में न उलझकर आम लोगों के जीवन में प्रयुक्त होने वाले ऊर्जा के रूप विशेषकर तापीय रूप जो खाना बनाने या आग जलाने से सीधा सम्बन्धित है, उस पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे, क्योंकि इसका जंगल बर्बादी या जंगल संरक्षण से सीधा सम्बन्ध है। वास्तव में देखा जाये तो जंगलों के नष्ट होने का एकमात्र कारण, लकड़ी का जलाऊ उपयोग ही नहीं है। जंगलों तथा वनों के नष्ट होने में हमारी आधुनिक प्रबन्धन व्यवस्था का प्रमुख हाथ रहा है। मगर यहाँ पर वनों की प्रबन्धन व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर विचार न करके केवल लकड़ी के जलाऊ उपयोग तथा उसके विभिन्न विकल्पों के बारे में ही सोचा जा रहा है।

ईंधन और ऊर्जा :

प्रत्येक जीवधारी अथवा मशीन की सभी गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने हेतु ईंधन की आवश्यकता होती है परन्तु यहाँ पर ईंधन से अभिप्राय उन पदार्थों से है, जो सीधा जलाने के बाद ताप व गर्मी के रूप में ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं। लोगों को ईंधन के रूप में ऊर्जा की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। खाना बनाने से लेकर सर्दी से बचाव तक सभी कार्यों में ईंधन का उपयोग लोगों द्वारा किया जाता है। गाँव में यह ईंधनीय ऊर्जा अधिकांशतया लकड़ी को जलाकर ही प्राप्त की जाती है (90 प्रतिशत ईंधनीय ऊर्जा की आपूर्ति गाँव वाले लकड़ी को जलाकर ही करते हैं)। गाँव ही नहीं कस्बों और शहरों के 30 प्रतिशत से अधिक लोग जलाऊ ईंधन के रूप में लकड़ी का ही उपयोग करते हैं। यह जलाऊ लकड़ी किसी न किसी तरीके से इन कस्बों व शहरों तक पहुंच जाती है। जलाऊ लकड़ी को प्राप्त करने के लिए पेड़ों को काटा जाता है, जिससे हमारे जंगल नष्ट होते चले जाते हैं। जिसके कारण पर्यावरणीय प्रदूषण व असंतुलन होता है और परिणाम अकाल, बाढ़ और सूखे के रूप में तो सामने आता ही है, रेगिस्तान के बढ़ने से लेकर अनेक महाविपत्तियाँ भी हमारे सामने आती हैं। परिणामस्वरूप मानव ही नहीं जीव मात्र के जीवन को खतरा हो गया है।

ईंधनीय ऊर्जा के विभिन्न विकल्प :

यदि लकड़ी का ही ईंधन के रूप में उपयोग होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब बड़े पेड़ देखने को भी नहीं मिलेंगे। वृक्षों के बिना इस सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि पेड़ों के अभाव में जीवन ही सम्भव नहीं है। पर्यावरणीय सन्तुलन का पेड़ों और जंगलों से सीधा सम्बन्ध है। मगर दुर्भाग्य की बात है कि धीरे-धीरे जंगल और वन, भारत के प्रत्येक हिस्से में घटते जा रहे हैं और वर्तमान में 30 प्रतिशत (मानक) से भी बहुत कम जमीन पर ही वन रह गये हैं जो कि सीधा विनाश और पर्यावरण असन्तुलन का सूचक है। दुःख की बात है कि यह प्रतिशत दिन-प्रतिदिन और कम होता जा रहा है। लकड़ी का ईंधन के रूप में प्रयोग होना, जंगलों के विनाश और ह्रास हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। यदि इसे रोका या नियंत्रित नहीं किया गया तो धीरे-धीरे इस पवित्र भारतीय भूमि से पूर्ण रूप से जंगलों का सफाया हो जाएगा। जंगलों एवं वनों के पूर्ण अभाव में, प्रकृति में आने वाले परिवर्तनों के विषय में सोचकर ही मन भयभीत हो उठता है। लकड़ी का ईंधन के रूप में उपयोग को रोकने या नियंत्रित करने हेतु यह आवश्यक व महत्त्वपूर्ण है कि ईंधन के अन्य विकल्पों पर विचार किया जाये और उन्हें अपनाया जाये। इन विभिन्न विकल्पों को अपनाने से एक ओर तो पर्यावरण प्रदूषण को भी कम किया सकता है और दूसरी तरफ जंगलों को संरक्षित और विकसित कर पर्यावरण असन्तुलन की समस्याओं को कम किया जा सकता है। यहाँ पर जलाऊ लकड़ी के विभिन्न विकल्पों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

1. सौर ऊर्जा :

ऊर्जा का मूलभूत स्रोत सूर्य ही है। पृथ्वी पर दिखाई देने वाली प्रत्येक वस्तु और जीव में विद्यमान ऊर्जा, सूर्य से ही आ रही है और ऊर्जा की सतत् आपूर्ति भी सूर्य से ही हो रही है। सूर्य के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज के वैज्ञानिक युग में अनेकों यंत्र, सूर्य की ऊर्जा को एकत्र कर ताप व गर्मी के रूप में

बदलने हेतु बनाये जा चुके हैं। इन यंत्रों का उत्पादन और उपयोग काफी हो रहा है। यद्यपि ये यंत्र महंगे हैं फिर भी इन्हें गाँव के कुछ लोग निजी या सामलाती रूप में अपना ही सकते हैं। पानी गर्म करने से लेकर खाना बनाने तक के सभी काम सौर ऊर्जा से किये जा सकते हैं। सौर ऊर्जा के उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण और असंतुलन जैसी भयानक समस्याओं की भी कोई सम्भावना नहीं है। आवश्यकता है लोगों में सौर ऊर्जा के प्रति चेतना तथा जागरूकता लाने की, जिससे कुछ प्रतिशत तक तो लकड़ी जलाने के उपयोग को रोका ही जा सकता है।

2. बिजली :

बिजली का उपयोग भी गाँव में प्रयुक्त होने वाले ईंधन के विकल्प के रूप में किया जा सकता है तथा लकड़ी को जलाने से बचाया जा सकता है। यह सही है कि बिजली उत्पादन में भी ईंधन की खपत होती है, परन्तु लकड़ी को सीधा जलाने के बजाय बिजली से भोजन बनाने आदि की व्यवस्था की जा सकती है।

बिजली उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ यथा-अणु शक्ति, कोयला व खनिज तेल या गैस के स्थान पर जल ऊर्जा या अन्य सम्भव ऊर्जाओं का उपयोग कर पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

3. गोबर गैस :

गाँव में प्रयोग होने वाले ईंधन के विकल्प के रूप में गोबर गैस का उपयोग बहुत महत्त्वपूर्ण, हितकारी और सरल है। गाँव में पशुपालन का कार्य बहुत अधिक होता है। पालतू पशुओं के गोबर को गोबर गैस संयंत्र में सड़ाकर, गोबर गैस को प्राप्त किया जा सकता है। इस संयंत्र में गोबर सड़ने से बनी खाद भी बहुत अच्छी और गुणकारी होती है, जिसके पूर्ण रूप से सड़ने के कारण खेतों में उपयोग के बाद दीमक आदि कीटों के लगने की सम्भावना भी नहीं रहती। यदि गोबर को खुले में सड़ाते हैं तो इसमें से निकली गैस वातावरण में चली जाती है। इस प्रकार पर्यावरण प्रदूषण तो होता ही है, खेतों हेतु उत्तम गोबर की खाद (गोबर के पूर्णतया न सड़ने के कारण) भी नहीं मिल पाती। आज, सरकार गोबर गैस प्लांट लगाने हेतु पैसा व तकनीक दोनों उपलब्ध करा रही है। निकट के खंड विकास अधिकारी से सम्पर्क कर इस प्रकार के संयंत्र, अपनी आवश्यकतानुसार लगवाये जा सकते हैं। यह व्यावहारिक होने के साथ-साथ सस्ता भी बहुत है। इसे प्रत्येक किसान व पशुपालक लगवा सकता है। इनका आकार भी लोगों की अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप रखा जा सकता है। संक्षेप में कहें तो गाँव में प्रयुक्त होने वाली ऊर्जा का सबसे अच्छा विकल्प गोबर गैस संयंत्र ही है।

4. खनिज गैस :

पेट्रोलियम पदार्थों के साथ निकलने वाली खनिज गैस भी आजकल ईंधन के रूप में बहुत अधिक उपयोग में ली जा रही है। इस जलाऊ गैस का प्रचलन कस्बों और शहरों में तो बहुत अधिक है, लेकिन गाँवों में इस गैस का प्रचलन बहुत कम है। इस गैस के उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण तो कम किया ही जा सकता है साथ ही ईंधन के रूप में लकड़ी के उपयोग को भी कम किया जा सकता है, परन्तु इसकी आपूर्ति भली-भाँति न हो पाने के कारण कई बार समस्याएँ आ जाती हैं। सरकार को खनिज गैस की आपूर्ति हेतु ठोस कदम उठाने चाहिए। गाँव के लोग भी सामूहिक रूप से इस गैस की आपूर्ति हेतु कोई निश्चित व ठोस कदम उठा सकते हैं।

5. केरोसीन (मिट्टी का तेल) :

केरोसीन का उपयोग भी जलाऊ लकड़ी के प्रयोग को कम करने में सहायक हो सकता है। शहरों व कस्बों के साथ-साथ गाँव में भी केरोसीन के उपयोग का प्रचलन काफी है। मगर खनिज गैस की तरह ही इस ईंधन की उपलब्धता और आपूर्ति में हमेशा कमी ही बनी रहती है। सरकार को तो केरोसीन की उपलब्धता पर विशेष ध्यान देना ही चाहिए साथ ही लोगों को भी इसके उपयोग पर यथासम्भव ध्यान देना चाहिए। केरोसीन के अधिकाधिक उपयोग से लकड़ी के जलने में कमी आयेगी तथा जंगलों को बचाने में मदद मिलेगी।

6. कोयला :

यहाँ हम लकड़ी के कोयले की बात न करके खनिज कोयले के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं। यह भी जलाऊ लकड़ी का बहुत उपयुक्त विकल्प है। इसका अधिकाधिक प्रयोग गाँव में होने से वर्तमान जंगलों को विकसित किया जा सकता है। एक धारणा के अनुसार खनिज कोयला, पृथ्वीय उथल-पुथल के कारण, विगत में जमीन के नीचे दबे जंगलों का ही वर्तमान रूप है। कोयले के भण्डार भी अन्य खनिज पदार्थों की ही तरह सीमित हैं। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों में कोयले का बहुत अधिक उपयोग हो रहा है। वहाँ पर इसे थोड़ा नियंत्रित कर, गाँवों में ईंधन के विकल्प के रूप में इसका प्रयोग बढ़ाने से, वर्तमान जंगलों को बचाने में काफी मदद मिल सकती है। इस तरफ सरकार और ग्रामीणों, दोनों को ध्यान देने की आवश्यकता है।

7. गोबर के कंडे (उपले) :

इसका प्रचलन गाँवों तथा शहरों में खूब है। वास्तव में देखा जाये तो भारत में पैदा होने वाली गोबर का 50 प्रतिशत से भी अधिक उपलों के रूप में जला कर, लकड़ी के विकल्प के रूप में काम लिया जाता है। यह सत्य है कि इस प्रकार लकड़ी को जलाने की निर्भरता को कुछ कम किया जाता है। मगर ऐसा करने से खेतों हेतु गोबर की

देशी खाद नहीं मिल पाती। परिणामत: उपजाऊ शक्ति की कमी के कारण पैदावार में भी कमी आती है। यदि गोबर को कंडों के रूप में सीधा जलाने के स्थान पर गोबर गैस संयंत्र में सड़ाकर, मिलने वाली गैस को जलाया जाये, तो ईंधन के साथ-साथ गोबर की पूर्णतया सड़ी हुई खाद भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो सकती है।

8. जल तथा वायु ऊर्जा :

इस प्रकार की ऊर्जाओं को भी ईंधन के विकल्प के रूप में देखा जा सकता है। मगर आम आदमी के प्रयोग की दृष्टि से इस प्रकार की ऊर्जाओं को व्यावहारिक नहीं माना जा सकता। फिर भी परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप जल या वायु ऊर्जा को सामूहिक रूप से विकसित कर, उपयोग में लाया जा सकता है। यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि जल ऊर्जा केवल उन्हीं विशिष्ट क्षेत्रों में उत्पन्न व प्रयुक्त हो सकती है जहाँ अनवरत रूप से पूरे वर्ष बहने वाली नदियाँ या नाले हों जैसे-उत्तर भारत के अनेक क्षेत्र। ठीक इसी प्रकार वायु ऊर्जा भी कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित है, जिन क्षेत्रों में तेज हवाएँ लम्बे समय तक चलती हों यथा-समुद्रतटीय तथा रेगिस्तानी क्षेत्र। सरकार को भी इस प्रकार की ऊर्जाओं के उत्पादन तथा वितरण हेतु अधिक ध्यान देना चाहिए। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुछ सीमित क्षेत्रों में ही सही, इस प्रकार की ऊर्जाओं के उत्पादन और उपयोग से लकड़ी के ईंधन के रूप में उपयोग को कुछ मात्रा तक कम किया जा सकता है।

उक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विभिन्न प्रकार के पदार्थों तथा ऊर्जाओं को ईंधनीय ऊर्जा के विकल्प के रूप में प्रयोग करने पर लकड़ी के ईंधनीय उपयोग को काफी मात्रा तक कम करके नियंत्रित किया जा सकता है। परम्परागत चूल्हों के स्थान पर परिष्कृत व आधुनिक चूल्हों के प्रयोग से भी जलाऊ लकड़ी के उपयोग को कम करने में मदद मिल सकती है। खेतों में पैदा होने वाली फसलों यथा-सरसों, अरहर आदि की लकड़ी व डंठलों, पेड़ों से गिरे पत्तों, बेकार भूसा व पेड़ों की मात्र सूखी लकड़ियों (टहनियों) को जलाने के उपयोग में लेने से भी हरे पेड़ों के काटने को कम करके जंगलों को बचाया जा सकता है।

इस प्रकार जंगलों की कटान पर रोक लगाकर उन्हें संरक्षित व संवर्धित किया जा सकता है जिससे पर्यावरण असंतुलन को रोकने में तो मदद मिलेगी ही, साथ में राष्ट्र की समृद्धता को बढ़ाने हेतु आधार भी प्राप्त हो सकेगा क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों की समृद्धता ही राष्ट्र की समृद्धता का प्रतीक मानी जाती है। उक्त वर्णित विकल्पों में गोबर के उपले और जल तथा वायु ऊर्जा को प्रत्यक्ष रूप में व्यावहारिक नहीं माना जा सकता, परन्तु फिर भी ये ऊर्जाएं, हमारे उद्देश्यों की पूर्ति हेतु काफी लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं। इस प्रकार खनिज गैस, केरोसीन तथा कोयले के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाधिक उपयोग व आपूर्ति पर सरकार द्वारा या सामूहिक रूप से लोगों द्वारा ध्यान देने पर, ये भी लकड़ी के जलाऊ उपयोग को काफी सीमा तक कम कर सकते हैं। गोबर गैस संयंत्र को उक्त उद्देश्यों हेतु सर्वोत्तम माना जाता है।

★★★

सामलाती कार्यों में लोगों की हिस्सेदारी को निश्चित करना

सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण, विकास और पुनरुद्धार आदि कार्यों में लोगों की रुचि और भागीदारी बहुत आवश्यक है। जब तक लोग इन कार्यक्रमों को अपना समझकर इसमें हिस्सेदार नहीं होंगे, तब तक न तो ऐसे क्रिया कलापों का कोई औचित्य है और न ही ऐसे कार्यक्रम सफल हो सकते हैं। सामलाती कार्यक्रमों की सफलता और निष्फलता, सीधे-सीधे लोगों की हिस्सेदारी से जुड़ी हुई है। अत: जल, जंगल व जमीन से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इन कार्यों को लोग किस दृष्टिकोण से देखते और समझते हैं। लोगों के सकारात्मक दृष्टिकोण और क्रियात्मक हिस्सेदारी के परिणामस्वरूप ही ऐसे कार्यों को सफल होते देखा गया है। ऐसे कार्यक्रमों में लोगों की अधिक से अधिक हिस्सेदारी को प्रोत्साहन देने हेतु तथा हिस्सेदारी की सफलता को निश्चित करने के लिए अनेकों क्रियाएँ व कारक हैं। कुछ पर यहाँ संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

स्वअभिक्रम जाग्रत करना: किसी भी कार्यक्रम की सफलता को निश्चित करने के लिए लोगों और उनके परिवारों को गतिमय करना बहुत जरूरी है। चेतना और जागृति अभियानों के माध्यम से इस प्रक्रिया को करके विभिन्न कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को निश्चित किया जा सकता है। लोगों के मध्य जाकर कार्यक्रमों की अच्छाइयों एवं प्राप्त होने वाले लाभों को बताकर, लोगों में स्वाभिक्रम जगाया जा सकता है। जब लोग कार्यक्रमों को अपना और अपने लिए समझ लेंगे तभी भागीदारी के लिए तैयार होंगे।

निर्णय प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना: जल, जंगल और जमीन आदि सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण, विकास और पुनरुद्धार सम्बन्धी सभी कार्यों में लोगों के साथ मिलकर निर्णयों को लेना और इन संयुक्त निर्णय के अनुरूप ही कार्यक्रमों को बनाने और लागू करने से लोगों में यह विश्वास बनता और सुदृढ़ होता है कि ये कार्यक्रम हमारे अपने हैं। इनमें हमारी भागीदारी है। इन्हें, हमको चलाना और बढ़ाना है आदि। अत: सामलाती कार्यों में ग्रामीणों की अधिक हिस्सेदारी को निश्चित करने के लिए किये गये निर्णयों में उनकी भागीदारी होना अत्यंत आवश्यक है।

श्रमदान या अंशदान का प्रभाव: किसी भी सार्वजनिक कार्य में स्थानीय लोगों का किसी भी अनुपात में अंशदान या श्रमदान होने पर ही संचालित किये जा रहे कार्यक्रमों में लोग अपनी भागीदारी मानते एवं महसूस करते हैं। कार्यक्रमों में अंशदान न होने के कारण, इन कार्यक्रमों को लोग अपना नहीं समझते। अंशदान या श्रमदान होने की स्थिति में लोग न केवल कार्यक्रमों को अपना समझते हैं, अपितु अंशदान या उनके संचालन, क्रियान्वयन और उनमें सफलता प्राप्त करने हेतु तन-मन-धन से जुड़कर सहयोग भी करते हैं। अत: सामलाती कार्यों में लोगों का अंशदान होने का प्रभाव यह होता है कि उनकी कार्यक्रमों में भागीदारी निश्चित हो जाती है।

पूँजी निर्माण की प्रक्रिया चलाना: ग्राम कोष जैसी योजनाओं की प्रक्रिया चलाकर न केवल गाँवों को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर किया जा सकता है, अपितु गाँवों की पूंजी निर्माण व्यवस्था से आत्म- विश्वास पैदा करके, गाँव वालों को जल, जंगल और जमीन सम्बन्धी अनेक सार्वजनिक कार्यों में अंशदान द्वारा सहभागी बनाकर उनकी हिस्सेदारी निश्चित की जा सकती है।

कार्यक्रमों का धार्मिक आस्थाओं से संयोजन: सार्वजनिक संसाधनों से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रमों को लोगों की धार्मिक भावनाओं से जोड़कर, कार्यक्रम के संचालन और क्रियान्वयन में लोगों की भागीदारी लेना ही इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है। मन्दिर एवं धर्मशाला आदि का निर्माण तथा जोहड़/बाँधों के किनारों, चरागाहों व जंगलों में पीपल, बरगद, बेल, आँवला आदि अनेक पूजनीय पेड़ों को लगाने के कार्यक्रम उदाहरण हेतु प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस प्रकार धार्मिक आस्थाओं से सामलाती कार्यक्रमों को जोड़कर लोगों की हिस्सेदारी को निश्चित किया जा सकता है।

पारम्परिक तन्त्र को पुनर्जीवित करना: गाँव के परम्परागत सामलाती संसाधनों के संरक्षण, विकास व पुन: निर्माण की प्रक्रिया द्वारा भी लोगों की हिस्सेदारी को निश्चित किया जा सकता है। पुराने जोहड़, कुएँ, बाँध, मन्दिर, जंगल आदि अनेक ऐसे पारम्परिक तंत्र हैं, जिनके पुनरुद्धार कार्यक्रमों में स्थानीय लोग न केवल सहभागी बनते हैं, बल्कि अपनी हिस्सेदारी निश्चित करने हेतु भी जी-जान से कोशिश करते हैं। अत: ऐसे कार्यक्रमों द्वारा लोगों की हिस्सेदारी को निश्चित कराना बहुत आसान है।

साधारण तकनीक अपनाना: जल, जंगल व जमीन आदि सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण और पुनरुद्धार सम्बन्धी सभी कार्यक्रमों में परम्परागत और गाँव की साधारण तकनीक अपनाने से

न केवल इन कार्यों में स्थानीय लोगों की रुचि बढ़ती है, बल्कि इन कार्यों के संचालन और क्रियान्वयन में लोग सहभागी बनकर सामर्थ्यानुसार सहयोग भी देते हैं। अत: कार्यक्रमों में परम्परागत और साधारण तकनीक का उपयोग करने से लोगों की सामलाती कार्यों में भागीदारी बढ़ती है।

प्रदर्शन का प्रभाव: पास के किसी गाँव में हुए सफल सार्वजनिक कार्यों को देखकर लोगों में अपने यहाँ भी ऐसे कार्यों के संचालन और क्रियान्वयन के लिए उत्साह बढ़ता है और वे अपने गाँव में भी ऐसे कार्यों को करने के लिए न केवल सहयोग देते हैं, अपितु अपनी भागीदारी को निश्चित करने हेतु भी सदैव तत्पर रहते हैं। अत: अच्छे व सफल सार्वजनिक कार्यों के प्रदर्शन का ऐसे कार्यों में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने में बड़ा योगदान होता है।

समूह-भेद को समाप्त करना: स्थानीय समुदायों के मध्य उपस्थित गुटबाजी या समूह भेद के कारण न केवल सार्वजनिक कार्यों के संचालन में कठिनाई आती है, अपितु इन कार्यक्रमों की सफलता की सम्भावनाएँ भी कम हो जाती हैं। सजातीय गाँवों में जहाँ लोगों के संगठन मजबूत हैं, सार्वजनिक कार्यों के संचालन और उनकी सफलता के अधिक अवसर विद्यमान होते हैं। ऐसे गाँवों में सामलाती कार्यों में लोग न केवल सहयोग करते हैं, अपितु पूर्ण रूप से हिस्सेदारी ग्रहण करते हैं। अत: गाँवों में सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण और विकास कार्यक्रम संचालन से पूर्व लोगों के संगठन बनाने से इन विकास कार्यों में लोगों की भागीदारी की निश्चितता अधिक बढ़ जाती है।

लाभों की समानता: सामलाती कार्यों से प्राप्त होने वाले लाभ का समानता के आधार पर वितरण होने की स्थिति से, ऐसे कार्यों में लोगों की भागीदारी निश्चित हो जाती है। व्यक्ति या परिवार स्तर पर बराबर लाभ पाने की सम्भावनाओं से न केवल लोग कार्यक्रमों में रुचिपूर्ण सहयोग करते हैं, बल्कि अपनी स्वयं की भागीदारी को निश्चित कराने हेतु तन, मन और धन से उत्साहपूर्वक कार्य भी करते हैं। अत: लाभों की समानता, लोगों की सामलाती कार्यों में अधिक हिस्सेदारी निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण कारक है।

स्वामित्व: सामलाती कार्यक्रमों के संचालन और क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व सरकार उठाये या अर्द्धसरकारी अथवा गैर सरकारी संगठन, परन्तु कार्यक्रमों की सफलता के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाली वस्तु या लाभ के स्वामी ग्रामीण लोग होने पर, इन कार्यक्रमों में गाँव वालों की भागीदारी और सहयोग की सम्भावनाएँ अधिक प्रबल हो जाती हैं। अत: सार्वजनिक संसाधनों का स्वामित्व गाँव वालों को सौंपने के कारण उनकी अधिक हिस्सेदारी सुनिश्चित की जा सकती है।

उक्त विचार-विमर्श से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सामलात देह के संरक्षण और पुनरुद्धार के लिए कार्यक्रमों के संचालन व क्रियान्वयन हेतु विभिन्न प्रभावी एवं उचित प्रक्रियाओं के करने से लोगों की हिस्सेदारी इन कार्यक्रमों में सुनिश्चित होती है जो कार्यों की सफलता के लिए आवश्यक है। किसी भी क्षेत्र में सामलाती कार्य करने से पूर्व उक्त वर्णित सभी आवश्यक एवं परिस्थिति अनुसार कुछ क्रियाओं को अपनाने से लोगों की हिस्सेदारी तो निश्चित होती ही है, साथ ही कार्यक्रमों की सफलता की सम्भावनाएँ भी शत-प्रतिशत हो जाती हैं।

★★★

सामलात देह संवर्धन हेतु ग्राम योजना निर्माण

सार्वजनिक संसाधनों के ह्रास और उनकी वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में पिछले अध्यायों में लिखा जा चुका है। इन संसाधनों की शोचनीय स्थिति और घटते आकार के निरन्तर जारी क्रम को देखते हुए, प्रत्येक विचारशील मस्तिष्क में इनके संरक्षण और विकास अर्थात् पुनर्संवर्धन का खयाल आना स्वाभाविक है। भारतीय गाँवों के स्वावलम्बन हेतु सामलात देह का संवर्धन नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। इस अध्याय में गाँव के सार्वजनिक संसाधनों के संवर्धन के लिए आवश्यक कार्यक्रमों के विभिन्न चरणों पर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है। इस प्रकार के कार्यक्रमों और परियोजनाओं को आवश्यकतानुसार मुख्यत: निम्न चरणों या हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है :

1. सामलात देह के सम्बन्ध में लोगों से सम्पर्क करना।
2. गाँव की सामलात देह के सन्दर्भ में वर्तमान आँकड़े एकत्र करना।
3. गाँव की सामलात देह से सम्बन्धित प्राचीन सूचनाएँ एकत्र करना।
4. गाँव का सर्वेक्षण करना।
5. गाँव के नक्शे बनाना।
6. गाँव की समस्याओं की पहचान तथा प्राथमिकता तय करना।
7. गाँव की योजना के लिए ग्रामीणों से विचार ग्रहण करना।
8. गाँव के सर्वेक्षण का विश्लेषण करना एवं तालिकाएँ बनाना।
9. ग्रामीणों के साथ मिलकर समस्याओं का निर्धारण करना।
10. गाँव की योजना में ग्रामीणों की हिस्सेदारी को सुनिश्चित करना।
11. गाँव की योजना की शुरुआत करना।
12. परियोजना की रूपरेखा एवं बजट आदि तैयार करना।
13. परियोजना के संचालन का तरीका निश्चित करना।
14. सभी प्रस्तावित कार्यों के लिए तकनीकी एवं इंजीनियरिंग प्रशिक्षण देना।
15. प्रस्तावित परियोजना का संचालन, मूल्यांकन एवं पर्यवेक्षण।
16. भौतिक कार्यों की शुरुआत करना।
17. प्रतिदिन के कार्यों की प्रगति का प्रलेखन।
18. गाँव की हिस्सेदारी की स्थिति, उनके विचारों एवं सभाओं का प्रलेखन।
19. सामलात देह संवर्धन हेतु किये जा रहे सभी प्रकार के कार्यों का नियमित मूल्यांकन करना।
20. सभी प्रकार के कार्यों का पुनरावलोकन शिविर।
21. निश्चित अन्तराल के बाद संवर्धन कार्यक्रम के परिणाम जानने हेतु विभिन्न आवश्यक आँकड़े एकत्र करना।
22. परियोजना को सांतत्यपूर्ण बनाये रखना।

उक्त वर्णित विभिन्न तथ्यों पर क्रमानुसार निम्नवत् संक्षिप्त विचार किया जा रहा है :

सामलात देह के विषय में गाँव वालों से सम्पर्क : यह किसी भी गाँव के सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण और विकास के रास्ते में आने वाला महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और सर्वप्रथम संचालित किया जाने वाला कदम है। विभिन्न सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि गाँव के अधिकतर नवयुवक वर्तमान समय में यह भी नहीं जानते और समझते कि उनके परम्परागत और आधुनिक सामलाती संसाधन कौन-कौन से हैं? ऐसी स्थिति में इन संसाधनों के संवर्धन की बात करना और उसके लिए परियोजनाएँ निर्मित करना महत्त्वहीन प्रतीत होता है। अत: इस दिशा में कार्य करने हेतु सर्वप्रथम गाँव के लोगों विशेषकर नवयुवकों को उनकी अपनी सामलात देह के बारे में बताना तथा समझाना होगा। इन संसाधनों की परम्परागत और वर्तमान स्थिति तथा प्रबन्ध व्यवस्था के विषय में सही सूचनाएँ देकर, इन संसाधनों के महत्त्व और गाँव स्वावलम्बन में सामलाती संसाधनों के योगदान के सभी पहलुओं को समझकर, ग्रामीणों की नकारात्मक दिशा में जा रही मानसिकता को बदलकर, उनके अपने सार्वजनिक संसाधनों के संवर्धन हेतु प्रेरित करके, इन संसाधनों के विषय में चेतना जाग्रत करनी आवश्यक है।

यह सम्पर्क और चेतना-अभियान, व्यक्तिगत स्तर पर सम्पर्क करके, जनसभाओं, बातचीत, खेलकूद, नाटक, कहानी, कविता, पोस्टर, वीडियो फिल्म, नक्शों एवं तालिकाओं आदि के माध्यम से किया जा सकता है। जब लोग अपनी सामलात देह और उसके महत्त्व को समझ जायेंगे तब वे स्वयं ही कार्यक्रमों को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे। इस प्रकार के कार्यक्रमों और परियोजनाओं की असफलता और सफलता पूर्णरूप से सम्पर्क एवं चेतना-जागृति अभियानों पर ही निर्भर हुआ करती है।

गाँव के सामलात देह सम्बन्धी वर्तमान आँकड़े एकत्र करना: सामलात देह संवर्धन हेतु कार्यक्रम निश्चित करने के लिए वर्तमान आँकड़ों की आवश्यकता होती है। इन आँकड़ों की आवश्यकता ग्रामीणों को अपने सामलाती संसाधनों के वर्तमान स्वरूप को समझाने व बताने के लिए तथा संवर्धन कार्यक्रम के बाद प्राप्त होने वाले नये आँकड़ों से तुलनात्मक अध्ययन हेतु भी होती है। कार्यक्रम को कितनी सफलता मिली तथा कार्यक्रम के बाद ग्रामीणों को इन संसाधनों से प्राप्त होने वाले तुलनात्मक लाभ का अन्दाजा भी इन्हीं आँकड़ों की मदद से लगाया जाता है। वैसे तो कार्यक्रम व परियोजनाएँ बनाने वाले गैर सरकारी, अर्द्धसरकारी एवं सरकारी

संगठनों के सक्रिय कार्यकर्ता इस प्रकार के आँकड़े एकत्र कर सकते हैं; लेकिन अगर यह कार्य ग्रामीण स्वयं करें तो सही व सत्य सूचनाएँ एकत्र होती हैं। कम समय में अधिक कार्य हो सकता है। इस प्रकार के कार्यों में संलग्न रहकर ग्रामीण संवर्धन कार्यों के प्रति लगन एवं मेहनत करके कम समय में सत्य एवं पूर्ण सूचनाएँ एकत्र करते पाये गये हैं।

गाँव की सामलात देह सम्बन्धी प्राचीन सूचनाएँ एकत्र करना: ये सभी सूचनाएँ भी सक्रिय ग्रामीणों द्वारा ही एकत्र की जायें तो अल्प समय में ही सत्य एवं पूर्ण सूचनाएँ एकत्र की जा सकती हैं। इन्हीं प्राचीन सूचनाओं के आधार पर गाँव वालों को न केवल उनकी परम्परागत सामलात देह के बारे में जानकारी मिलती है तथा सार्वजनिक संसाधनों से गाँव के लोगों को प्राप्त होने वाले लाभों के बारे में पता चलता है, अपितु इन सूचनाओं तथा वर्तमान आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर ही संवर्धन कार्यक्रमों व योजनाओं की रूपरेखा तथा बजट आदि तैयार किया जाता है। इन संसाधनों के ह्रास की प्रक्रिया, कारण और निदान को जानने व समझने के सन्दर्भों में सभी प्राचीन सूचनाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

गाँव का सर्वेक्षण करना : गाँव के सर्वेक्षण की प्रक्रिया तथा सर्वेक्षण प्रपत्र तैयार करना आदि विषयों पर पहले ही लिखा जा चुका है। इन बातों को दोबारा दोहराना विषय को अनावश्यक बढ़ाना ही है। हाँ यह बात ध्यान देने की है कि सर्वेक्षण का कार्य ग्रामीणों द्वारा किया जावे तो कई प्रकार से अच्छा रहता है। यह कार्य संलग्न संगठनों के सक्रिय एवं कुशल कार्यकर्ताओं द्वारा भी किया जा सकता है। सर्वेक्षण कार्य के आधार पर ही भावी परियोजनाओं का स्वरूप निर्भर करता है। इस कार्य में हुई त्रुटियाँ सम्पूर्ण परियोजनाओं को असफल कर सकती हैं। अत: इन कार्यों को बुद्धिमानी, लगन एवं श्रद्धा से किया जाना चाहिए।

गाँव के नक्शे बनाना: नक्शे एवं तालिकाओं के सन्दर्भ में भी पहले ही बताया जा चुका है। यह कार्य प्रशिक्षित कार्यकर्ता (चाहे वे सम्बन्धित गाँव के हों या संलग्न संगठन के) द्वारा ही सम्पन्न होना चाहिए। क्योंकि नक्शों और तालिकाओं में अंकित सूचनाओं के आधार पर ही संवर्धन परियोजनाओं को निर्मित तथा कार्यान्वित किया जाता है।

गाँव की समस्याओं की पहचान एवं प्राथमिकता तय करना: प्रत्येक गाँव में अनेक समस्याएँ होती हैं; सामलाती भी और व्यक्तिगत भी। यहाँ हम केवल सामलाती समस्याओं पर ही विचार कर रहे हैं। सामलाती समस्याएं अनेक हो सकती हैं। जब कोई कार्यकर्ता गाँव में जाकर लोगों की समस्याओं के बारे में जानना चाहता है तो स्वाभाविक रूप से गाँव वाले एक-एक करके अनेकों समस्याएँ सामने रखते हैं। तब प्रश्न उठता है कि किस समस्या के समाधान हेतु कदम उठाया जाये, योजनाएँ बनाई जाएँ? प्रथम तो योजना निर्माण कार्यरत संगठन की क्षमता व उसके पास मौजूद बजट आदि पर निर्भर करता है। दूसरे इस बात पर भी निर्भर करता है कि कौन-कौन सी समस्याएँ प्रमुख एवं तात्कालिक हैं तथा कौन सी गौण व थोड़े समय बाद हाथ में ली जा सकती हैं। अत: गाँव वालों की सभी समस्याओं की एक तालिका बनाकर यह देखा जाता है कि कौनसी समस्या से गाँव के लोग अधिक प्रभावित हैं। अनेकों समस्याओं में से मुख्य समस्याओं को छांटने के लिए गाँव वालों की प्राथमिकता, कार्यरत संगठन की क्षमता, प्रभावित लोगों की संख्या, आने वाला कुल खर्च एवं प्राप्त होने वाला कुल लाभ आदि सभी विषयों पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए। धन की व्यवस्था के अनुरूप एक, दो या अधिक समस्याओं को एक साथ भी लिया जा सकता है अथवा निश्चित अन्तरालों के बाद भी। गाँव के बहुमत के आधार पर समस्याओं की प्राथमिकता निश्चित करके ही हाथ में लेना श्रेयस्कर होता है। ऐसी समस्याओं के समाधान हेतु बनी परियोजनाएँ अधिकतर सफल होती देखी गई हैं तथा इनमें लोग श्रद्धा, लगन व उत्साह से कार्य करते हैं। अत: गाँव की समस्याओं को जानने और प्राथमिकता के आधार पर तय करने में उक्त बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

गाँव की योजनाओं के लिए ग्रामीणों से विचार ग्रहण करना: गाँव की सामलात देह संवर्धन की योजनाएँ चूंकि गाँव वालों के लिए होती हैं, अत: इन योजनाओं को गाँव वालों की अपनी योजना बनाने के लिए, इन योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में ग्रामीणों से विचार लेना और उन विचारों के अनुरूप ही योजनाएँ बनाना श्रेष्ठ होता है। परियोजना निर्माण में गाँव की सामलाती समस्याओं का गाँव वालों की मानसिकतानुसार समाधान प्रस्तुत करने पर ही गाँव के लोग न केवल रुचि लेते हैं, अपितु उनसे विचार ग्रहण करके बनाई गई योजनाओं के लिए तन-मन और धन से समर्पित होते हैं। उनकी सलाह और सहयोग से परियोजना निर्माण और क्रियान्वयन करने पर अधिकतर सफलता मिलती देखी गई है। उनकी सलाह और सहयोग के अभाव में ग्रामीण न केवल शत्रुवत् व्यवहार करते हैं, बल्कि अनेक व्यवधान डालने हेतु भी पर तत्पर रहते हैं। फलत: योजनाएँ असफल हो जाती हैं। अत: गाँव में चलाये जा रहे कार्यक्रमों की शत-प्रतिशत सफलता के लिए ग्रामीणों के विचार और आवश्यकतानुसार योजनाएँ बनाना और उनके सहयोग से क्रियान्वयन करना नितान्त जरूरी है।

गाँव के सर्वेक्षण का विश्लेषण करना और तालिकाएँ बनाना: सर्वेक्षण के विश्लेषण और तालिकाकरण का परियोजना निर्माण और क्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अत: यह कार्य किसी प्रशिक्षित और अनुभवी व्यक्ति या कार्यकर्ता द्वारा ही होना चाहिए। विश्लेषण और तालिकाकरण को पिछले अध्याय में समझाया गया है।

गाँव वालों के साथ मिलकर समस्याओं पर निर्णय करना: परियोजना निर्माण या कार्यक्रम निर्धारण करने के रास्ते में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है गाँव में विद्यमान अनेक समस्याओं में से सबसे अहम्, आवश्यक और महत्त्वपूर्ण समस्या की पहिचान कर, उसी के अनुरूप कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए। महत्त्वपूर्ण, तात्कालिक और भयंकर समस्याओं को पहिचानने में गाँव वालों के साथ मिलकर निर्णय किया जाना नितान्त आवश्यक है क्योंकि उनकी सोच व समझ के अनुरूप किये गये निर्णय ही संवर्धन प्रक्रिया में न केवल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, अपितु ऐसे निर्णयों द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति करने में भी सुगमता रहती है।

गाँव की योजना में ग्रामीणों की भागीदारी को सुनिश्चित करना: किसी भी कार्यक्रम की सफलता के लिए जहाँ गाँव वालों के विचार और निर्णय परियोजनाओं में समाहित करना महत्त्वपूर्ण है, वहीं उनकी सफल और सक्रिय भागीदारी भी नितान्त आवश्यक है। भागीदारी भले ही छोटी या थोड़ी हो, मगर उसकी उपस्थिति में लोग उस कार्यक्रम को अपना समझकर, उसकी सफलता के लिए हृदय से कार्य करते हुए पूर्ण रूप से समर्पित रहते हैं। भागीदारी न होने की स्थिति में न केवल लोग कार्य से कतराते रहते हैं, बल्कि कार्यक्रम के प्रति समर्पण और श्रद्धा की भावना भी मन में नहीं उपजा पाते। जब लोग कार्यक्रम को अपना और अपने लिए मान लेते हैं तभी कार्यों और योजनाओं की सफलता के लिए जी-जान से प्रयास करते हैं। कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी धन और श्रम दोनों रूपों में हो सकती है। यह हिस्सेदारी परियोजना की कुल लागत का 10 प्रतिशत से लेकर 50-60 प्रतिशत तक या उससे अधिक भी हो सकती है। ग्रामीणों और कार्यरत संगठनों दोनों की आवश्यकता और क्षमता के अनुरूप ही यह भागीदारी तय की जाती है। लोगों की अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने वाले अनेक कारकों पर संक्षिप्त विचार पहले ही किया जा चुका है। पहले वर्णित तरीकों को ध्यानपूर्वक क्रियान्वित करने पर न केवल लोगों की भागीदारी निश्चित होती है, बल्कि यह हिस्सेदारी बढ़ती भी है। इससे परियोजना की सफलता की सम्भावनाएँ बहुत अधिक बढ़ जाती हैं।

गाँव की योजना की शुरुआत करना : उक्त वर्णित सभी बातों या चरणों को सफलतापूर्वक पूरा करने पर ही गाँव में सामलात देह के संवर्धन हेतु योजना की शुरुआत की जाती है; क्योंकि इसके अभाव में आगे की अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। गाँव की परियोजना की शुरुआत करते समय प्राचीन और वर्तमान सूचनाओं तथा आँकड़ों का अपने पास एकत्र होना जहाँ आवश्यक है, वहीं परियोजना की सभी भावी दिशाएँ और सम्भावनाएँ भी मस्तिष्क में रखनी चाहिए। लोगों की सोच-समझ, विश्वास, सलाह, विचार, निर्णय, भागीदारी और कार्यक्रमों के प्रति लोगों में चेतना आदि का ध्यान रखना परम आवश्यक है।

परियोजना की रूपरेखा एवं बजट आदि तैयार करना: सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण और विकास के लिए परियोजना बनाने से पूर्व, उक्त वर्णित सभी बातों का पूर्ण रूप से अध्ययन और विश्लेषण करने के बाद ही परियोजना की रूपरेखा एवं बजट तैयार किया जाता है। यहाँ पर उदाहरण के लिए एक गाँव गुर्जरों की लोसल (तहसील-राजगढ़, जिला-अलवर, राज.) के सामलाती संसाधनों के संरक्षण और विकासार्थ संक्षिप्त परियोजना प्रस्तुत की जा रही है। यह बात ध्यान देने की है कि यहाँ प्रस्तुत परियोजना केवल उदाहरण के लिए (नमूने के तौर पर) दी गई है। विभिन्न गाँवों की परिस्थिति, जलवायु, आवश्यकता, उपलब्ध धन, ग्रामीणों का सहयोग और अंशदान तथा समस्याओं की प्राथमिकता आदि को ध्यान में रखते हुए ही परियोजना बनाई जानी चाहिए।

ग्राम लोसल गूजरान की सामलात देह संवर्धन हेतु परियोजना:

गाँव	:	लोसल गूजरान
पंचायत	:	तालाब
तहसील	:	राजगढ़
ब्लॉक-परगना	:	राजगढ़
जिला	:	अलवर
राज्य	:	राजस्थान (भारत)
कुल क्षेत्रफल	:	815 हैक्टेयर
जनसंख्या	:	687

परिचय: लोसल गाँव, सुपरिचित सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान की दक्षिणी सीमा पर अलवर शहर से 60 किलोमीटर की दूरी पर अर्द्धशुष्क क्षेत्र में स्थित है। अरावली पहाड़ियों की घाटी में बसे इस छोटे व सुन्दर गाँव का कुल क्षेत्रफल 815 हैक्टेयर है; जिसमें वन भूमि 98 हैक्टेयर, चरागाह 184 हैक्टेयर, सिंचित भूमि 41 हैक्टेयर, असिंचित भूमि 90 हैक्टेयर तथा कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि 404 हैक्टेयर है। यहाँ की कुल जनसंख्या 687 तथा परिवारों की संख्या 74 है। कुल जनसंख्या में से 335 महिलाएँ और 352 पुरुष हैं। इस गाँव का मुख्य व्यवसाय खेती व पशुपालन है। इस गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के पास औसतन 1 से 1.5 हैक्टेयर भूमि है। गाँव की पैदावार कम होने के कारण यहाँ जो कुछ पैदा होता है, सभी की खपत गाँव में ही हो जाती है।

यह गाँव 300-700 मिमी, वार्षिक वर्ष के क्षेत्र में स्थित है। यहाँ वार्षिक वर्षा का औसत 61.2 सेमी है, जिसमें से 90 प्रतिशत वर्षा मानसून के मौसम में ही हो जाती है। यहाँ का तापमान गर्मियों में 50 डिग्री सेल्सियस तक चला जाता है, लेकिन सर्दियों में यह 5 डिग्री तक गिर जाता है। यहाँ हवा की नमी 62 प्रतिशत है। कुछ बरसाती नालों को छोड़कर, यहाँ बारह महीने बहने वाली कोई नदी नहीं है। यहाँ की मिट्टी रेतीली-दोमट प्रकार की है।

यहाँ पानी की कमी के कारण न केवल मनुष्यों और पालतू पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है; अपितु वनस्पति भी इससे प्रभावित होने के कारण, फसलों की पैदावार भी कम होती है। मदिरा सेवन, मृत्युभोज (नुक्ता), पर्दा प्रथा आदि यहाँ के समाज के मुख्य शत्रु हैं, जबकि महाजन कर्ज व्यवस्था तथा लोगों के काम की तलाश में दूसरे स्थानों पर जाने के कारण शोषण व उत्पीड़न के लिए ग्रामीण मजबूर रहते हैं। अधिकांश कुओं में पानी शीघ्र सूख जाने के कारण अनाज व चारे की कमी से लोगों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। प्राचीन समय में समृद्ध सामलात देह के कारण यहाँ के लोग खुशहाल थे, लेकिन आज इस व्यवस्था की स्थिति बहुत खराब होने के कारण सामलाती सम्पत्ति और इसकी प्रबन्ध व्यवस्था निर्बाध गति से समाप्त होती जा रही है। इन संसाधनों के संरक्षण संवर्धन हेतु यह परियोजना बनाई जा रही है।

उद्देश्य : सामलात देह संवर्धन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

अ. लघु उद्देश्य

(1) जोहड़ एवं बाँध निर्माण।
(2) चरागाह (गोचर) विकास।
(3) कृषि योग्य भूमि का विकास।
(4) वृक्षारोपण और जल-संरक्षण।
(5) शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
(6) ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध करवाना।

ब. दीर्घकालीन उद्देश्य

(1) गाँव में ग्राम सभा को सक्रिय करके सामलात देह के प्रति लोगों में चेतना जागृत करना।
(2) सामलात देह को बचाने की प्राचीन संस्कृति, मान्यता और बदलते परिवेश के अनुरूप ढली प्रबन्ध व्यवस्था को पुनर्जीवित करना।
(3) ग्राम स्वावलम्बन हेतु सामलात देह को पुनः संवर्धित करना।
(4) पर्यावरण असंतुलन को रोकने हेतु जल, जंगल और जमीन की सुरक्षा करना।
(5) बाहरी लोगों द्वारा पेड़ कटान रोकने हेतु वन सुरक्षा समितियाँ गठित करना।
(6) गाँव के युवा वर्ग विशेषकर ग्वालों (पशु चराने वालों) की मानसिकता में पेड़ों के प्रति श्रद्धा एवं प्यार उत्पन्न करना।
(7) राजनेताओं, अधिकारियों एवं व्यापारियों द्वारा अपने धन व सत्ता के प्रभाव से सामलाती संसाधनों के अवैध शोषण के प्रति ग्रामीणों में जागृति पैदा करना।
(8) वाटर शैड (पणढाल) का पूर्ण प्रबन्ध करना।
(9) ग्रामीणों की आर्थिक दशा को सुधार कर पूर्ण स्वावलम्बी बनाना।
(10) अन्याय व शोषण के विरोध हेतु लोगों में जागृति उत्पन्न करके सत्याग्रह की तैयारी करना।

★★★

समयवद्ध कार्य–योजना के उदाहरण

	समयबद्ध कार्य–योजना : कालावधि जनवरी से जून तक वर्ष			
क्र.सं.	कार्यक्रम	अवधि (काल)		
		जनवरी से जून	जुलाई से दिसम्बर	जनवरी से जून
1.	परियोजना निर्माण तथा जन चेतना अभियान	+	–	–
2.	जोहड़ एवं बाँध निर्माण	+	+	+
3.	भूमि सुधार कार्य	+	+	+
4.	गोचर विकास	+	+	+
5.	वृक्षारोपण	–	+	–
6.	जंगल संरक्षण	+	+	+
7.	स्कूल स्थापना	–	+	–
8.	औषधालय स्थापना	–	+	–
9.	ग्रामीणों को रोजगार	+	+	+

कार्य नीति : गाँव लोसल गूजरान के दो प्रशिक्षित युवकों ने गाँव का सर्वेक्षण करके संसाधन मानचित्र बनाया है। तत्पश्चात् गाँव के साथ मिल कर विद्यमान समस्याओं का विश्लेषण करने के बाद संयुक्त रूप से यह योजना तैयार की गई है। यह योजना 18 महीने की है जिसे 6–6 महीनों के तीन चरणों में, ग्राम सभा जो कि पहले से ही गठित की जा चुकी है, की सक्रिय भागीदारी से क्रियान्वित की जायेगी। शिक्षा एवं स्वास्थ्य को छोड़कर ग्राम सभा का कुल बजट का 1/3 हिस्सा वहन करेगी। अध्यापक व चिकित्सक का ग्राम सभा स्वयं खर्च देगी।

नोट : योजना को 3–3 या 4 माह की अवधि के विभिन्न हिस्सों में भी बाँटा जा सकता है।

कार्यक्रम :

(1) जोहड़ व बाँध निर्माण–5
(2) भूमि सुधार – 20 हैक्टेयर
(3) गोचर विकास – 20 हैक्टेयर
(4) वृक्षारोपण एवं जंगल संरक्षण
(5) प्राइमरी स्कूल निर्माण
(6) आयुर्वेदिक चिकित्सालय निर्माण

कार्य विधि : प्रत्येक कार्य ग्राम सभा के निरीक्षण और भागीदारी में सम्पूर्ण होगा। अधिक अच्छी तरह क्रियान्वयन हेतु ग्रामसभा, प्रत्येक कार्य के लिए अलग–अलग समितियाँ गठित करेगी। ये नवगठित समितियाँ प्रत्येक कार्य के आर्थिक, क्रियान्वयन, गुणवत्ता और कार्य की मात्रा तथा स्वरूप आदि के लिए उत्तरदायी होंगी।

कार्ययोजना का खर्च : सम्बन्धित आकार व निर्माण का खर्च निम्न प्रकार है:

1. बीलून्डा वाला बाँध

कच्चा मिट्टी का कार्य

पाल की लम्बाई	=	50 फुट
पाल की ऊँचाई	=	10 फुट
पाल के आधार की चौड़ाई	=	45 फुट
पाल की ऊपर की चौड़ाई	=	5 फुट
प्रयोग की जाने वाली कुल मिट्टी का आयतन	=	50×10×(45+5)/2
	=	12,500.00 घन फुट
एक आदमी एक दिन में केवल 60 घन फुट मिट्टी निकालता है।		
अत: कुल मानव दिवस	=	12,500/60 फुट
	=	208.33 मानव दिवस

एक आदमी की एक दिन की मजदूरी	=	30 रुपये
अत: कच्चे कार्य का कुल खर्च	=	208.33×30=6250 रुपये
पक्का कार्य (राजगीरी का काम) :		
6300 मण पत्थर, दर 100 रु./100 मण	=	6300 रुपये
100 सीमेन्ट कट्टा, दर 110 रु. प्रति कट्टा	=	11000 रुपये
1000 मण बजरी, दर 300 रु. प्रति 100 मण	=	3000 रुपये
कारीगर की मजदूरी (अनुमानित)	=	3000 रुपये
बेलदारों की मजदूरी (अनुमानित)	=	3700 रुपये
कुल खर्च	=	27000 रुपये
कुल अनुमानित लागत	=	6250+27000 रुपये
अंकेन	=	33250 रुपये
	=	तैंतीस हजार दो सौ पचास रुपये मात्र।

2. बैठक वाला बाँध

मिट्टी का कार्य–

पाल की लम्बाई	=	500 फुट
पाल की ऊँचाई	=	15 फुट
पाल के आधार की चौड़ाई	=	72 फुट
पाल की चोटी की चौड़ाई	=	12 फुट
प्रयोग की जाने वाली कुल मिट्टी का आयतन	=	500×15×(72+12)/2
	=	3,15,000 घन फुट
एक आदमी एक दिन में केवल 60 घन फुट मिट्टी निकालता है।		
अत: कुल मानव दिवस	=	3,15,000/60 फुट
	=	5250 मानव दिवस
मजदूरी दर, प्रतिदिन	=	30 रुपये
कुल लागत	=	5250×30 रुपये
	=	1,57,500 रुपये
		(एक लाख सत्तावन हजार पाँच सौ रुपये मात्र)

3. नौरतन वाला जोहड़

मिट्टी का कार्य

पाल की लम्बाई	=	250 फुट
पाल की ऊँचाई	=	8 फुट
पाल के आधार की चौड़ाई	=	36 फुट
पाल की ऊपर की चौड़ाई	=	4 फुट
प्रयोग में आने वाली कुल मिट्टी का आयतन	=	250×8×(36+4)/2
	=	40,500 घन फुट

प्रतिदिन एक आदमी द्वारा निकाली गई मिट्टी	=	60 घन फुट
मजदूरी दर प्रतिदिन	=	30 रुपये
कुल लागत	=	40,000×30/60
	=	20,000 रुपये
अंकेन	=	बीस हजार रुपये मात्र।

4. बों का बाँध

पाल की लम्बाई	=	100 फुट
पाल की ऊँचाई	=	15 फुट
पाल के आधार की चौड़ाई	=	12 फुट
पाल की चोटी की चौड़ाई	=	4.5 फुट
कुल आयतन (औसत)	=	100×15×(12+4.5)/2
	=	12,375 घन फुट

इस रचना में सम्पूर्ण कार्य पक्का (राजगीरी का) है। अत: 9 रु. प्रति घन फुट की दर से

कुल लागत	=	12,375×9 रुपये
	=	1,11,375 रुपये
		(एक लाख ग्यारह हजार तीन सौ पिचहत्तर रुपये मात्र)

5. श्मशान वाला जोहड़

मिट्टी का कार्य

पाल की लम्बाई	=	200 फुट
पाल की ऊँचाई	=	10 फुट
पाल के आधार की चौड़ाई	=	48 फुट
पाल की चोटी की चौड़ाई	=	8 फुट
मिट्टी का कुल आयतन	=	200×10×(48+8)/2
	=	56000 घन फुट
प्रतिदिन एक व्यक्ति द्वारा निकाली जाने वाली मिट्टी	=	60 घन फुट
मजदूरी दर प्रतिदिन	=	30 रुपये
कुल लागत	=	(56000×30)/60 रुपये
	=	28,000 रुपये
	=	(अट्ठाईस हजार रुपये मात्र)

निजी भूमि का विकास :

इसके अन्तर्गत 20 हैक्टेयर निजी भूमि में मेड़बंदी, नालाबन्दी व जोहड़ बनाकर भूमि सुधार का कार्य किया जायेगा। गाँव वालों के अनुमानानुसार 7,000 रुपये प्रति हैक्टेयर की दर से अनुमानित खर्च

	=	7000×20
	=	1,40,000 रुपये

गोचर विकास :

इस कार्य में 20 हैक्टेयर गोचर का विकास कार्य बाड़ लगाकर, नालाबंदी तथा घास के बीजों की बुआई आदि से किया जायेगा। 3,000 रुपये प्रति हैक्टेयर की दर से अनुमानित लागत

= 20×3,000

= 60,000 रुपये

वृक्षारोपण :

इस वर्ष जुलाई से नवम्बर तक ग्राम सभा द्वारा देवबनी, कांकड़बनी, मन्दिर, गोचर आदि में 20,000 पत्ती–चारे वाले पौधे लगाने का लक्ष्य रखा गया है। वृक्षारोपण व बाद में पौधों के संरक्षण का उत्तरदायित्व ग्रामसभा पर होगा। रुपये 2 प्रति पौधे की दर से अनुमानित लागत

= 20,000×2

= 40,000 रुपये

स्कूल स्थापना :

शिक्षा की आवश्यकता को देखते हुए ग्राम सभा में 100 बच्चों हेतु एक प्राइमरी स्कूल की स्थापना का निर्णय लिया गया है। अध्यापक व अन्य सामान, स्टेशनरी, फर्नीचर आदि का खर्च ग्रामसभा स्वयं उठायेगी।

दो कमरों व बरामदों तथा नल आदि का अनुमानित खर्च = 80,000 रुपये

औषधालय स्थापना :

स्वास्थ्य सेवकों की कमी को देखते हुए ग्रामसभा ने एक आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना का निर्णय लिया है। चिकित्सक, दवाइयों व आने वाले अन्य खर्च की जिम्मेदारी ग्रामसभा उठायेगी।

चिकित्सालय के लिए कमरे व अन्य उपकरणों पर आने वाला कुल खर्च = 40,000 रुपये

बजट सार :

क्र.सं.	कार्यक्रम	कुल बजट	संस्था द्वारा देय राशि कुल बजट का 2/3 भाग	गाँव की श्रमदान राशि कुल बजट का 1/3 भाग
1.	जोहड़ व बाँध निर्माण	3,50,125	2,33,416.67	1,16,708.33
2.	भूमि सुधार	1,40,000	93,333.34	46,666.66
3.	गोचर विकास	60,000	40,000.00	20,000.00
4.	वृक्षारोपण व जंगल संरक्षण	40,000	26,666.67	13,333.33
5.	स्कूल निर्माण	80,000	80,000.00	–
6.	औषधालय निर्माण	40,000	40,000.00	–
	कुल योग (रुपयों में)	9,10,125	5,13,416.68	1,96,708.32

नोट:– उक्त उदाहरणों में मजदूरी की दर व पक्के काम की दर संस्था के प्रारम्भिक वर्षों में हुए कामों के अनुसार दर्शाई हुई है। इसे आज की दर में परिवर्तित कर के गणना करें।

परियोजना के संचालन का तरीका निश्चित करना : परियोजनाओं के संचालन का उत्तरदायित्व सदैव ग्रामीणों व ग्राम सभाओं पर ही रहना चाहिए। परियोजना में निहित अलग-अलग कार्यों के लिए, ग्राम सभा अलग-अलग समितियों का गठन कर सकती है, जिसमें उस कार्य से सम्बन्धित अनुभवी, परिश्रमी एवं कुशल सदस्य होने आवश्यक हैं। इन सदस्यों का चुनाव भी आम सहमति या बहुमत के आधार पर किया जाना चाहिए। नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण, कार्यों के प्रति श्रद्धावान एवं निष्ठावान व्यक्तियों को ही ग्रामसभा की सहमति से विभिन्न कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए। संलग्न संस्था या एजेन्सी अपने प्रबुद्ध एवं अनुभवी कार्यकर्ताओं को पर्यवेक्षक की तरह तथा ग्रामीणों को सलाह देने हेतु नियुक्त कर सकती है।

प्रस्तावित कार्यों के लिए तकनीकी एवं इंजीनियरिंग प्रशिक्षण : परियोजना में लिए गए सभी कार्यों को पूर्ण करने हेतु (परियोजना की सफलता के लिए) परियोजना के संचालन में लगे ग्रामीणों को आवश्यतानुसार तकनीकी एवं इंजीनियरिंग प्रशिक्षण मिलना नितान्त आवश्यक है। कौन से कार्य को किस रीति से करने पर कार्य पूर्ण और सफल होगा, यह जानना और समझना ग्रामीण कार्यकर्ताओं के लिए अति आवश्यक है। किस कार्य में कितना खर्च होगा? काम की मजबूती किस प्रकार होगी? परियोजना सस्ती से सस्ती किस प्रकार बनेगी अर्थात् कम लागत में अधिक लाभ कैसे प्राप्त होगा? यह सब जानना भी कार्यकर्त्ता के लिए बहुत जरूरी है। जोहड़, बाँध, कुएं, मेड़बंदी, वृक्षारोपण, गोचर विकास, जंगल संरक्षण आदि सभी संभव क्षेत्रों में तकनीकी प्रशिक्षण परियोजना को संचालित करने वालों की मूलभूत आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण अनुभवी व कुशल व्यक्तियों द्वारा ही दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण की तकनीक एवं इंजीनियरिंग परम्परागत भारतीय तकनीक ही होनी चाहिए, जिसमें गाँव वालों के ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का पूर्णरूपेण समावेश होना चाहिए। परम्परागत तकनीक के विषय में पहले ही लिखा जा चुका है।

प्रस्तावित परियोजना का संचालन, मूल्यांकन एवं पर्यवेक्षण : परियोजना के संचालन के संदर्भ में तो पहले ही कहा जा चुका है। हाँ, मूल्यांकन न केवल परियोजना का अपितु समय-समय पर किये जा रहे कार्यों का भी होना चाहिए। परियोजना निर्माण के उपरान्त संलग्न एजेन्सी, ग्राम सभा एवं प्रशिक्षित लोगों द्वारा परियोजना का मूल्यांकन एवं पर्यवेक्षण इस विहंगम दृष्टि से करना चाहिए कि जिन लक्ष्यों को लेकर परियोजना तैयार की गई है, उन लक्ष्यों की प्राप्ति होगी भी या नहीं, साथ ही समय-समय पर किये जा रहे कार्यों का मूल्यांकन भी होना आवश्यक है।

भौतिक कार्यों की शुरूआत करना : परियोजना के प्रस्तावित विभिन्न कार्यों के अन्तर्गत कई प्रकार के भौतिक कार्य किये जाते हैं। मिट्टी तथा पत्थर व सीमेन्ट का कार्य, गाद निकालना, बाड़ या डण्डा बनाना, तार लगाना, पेड़ लगाना, ब्रेकर व खुरे लगाना आदि इस प्रकार के उदाहरण गिनाये जा सकते हैं। यह सब कार्य मिस्त्री या ठेके के आधार पर करने से शीघ्र निपटाये जा सकते हैं। मगर ध्यान देने की बात यह है कि सरकारी कार्यों की तरह मध्य में कोई ठेकेदार नहीं होना चाहिए। ठेके के कार्य सीधे-सीधे ग्रामसभा या संचालक समिति व मजदूर और मिस्त्री (राज) के मध्य होना चाहिए। निश्चित अन्तराल के बाद मूल्यांकन एवं पर्यवेक्षण व्यवस्था से कार्य उचित प्रकार से चलते रहते हैं। इन भौतिक कार्यों को ग्रामीण अपने अंशदान के बदले भी करते देखे गये हैं। विभिन्न विश्लेषणों से यह बात सामने आई है कि अपनी भागीदारी या अंशदान के रूप में ग्रामीणों द्वारा किया गया कार्य मजबूत, अच्छा व टिकाऊ रहता है। साथ ही ग्रामीण धन के बदले श्रम देने से अधिक प्रसन्न रहते हैं।

प्रतिदिन के कार्यों की प्रगति का प्रलेखन : विभिन्न भौतिक व अन्य कार्यों का सुचारु रूप से चलाने हेतु यह एक आवश्यक कदम है। रोजाना किये जाने वाले कार्य, संचालन समिति द्वारा नियुक्त निरीक्षक द्वारा रजिस्टर में दर्ज किया जाना चाहिए। ऐसा करने से न केवल कार्यों के सुचारु रूप से संचालन में मदद मिलने से, होने वाली गड़बड़ियों को रोका जा सकता है, अपितु आवश्यकतानुसार ग्रामसभा द्वारा, संलग्न संस्था से आये व्यक्तियों या अन्य किसी भी व्यक्ति को दिये जा रहे कार्य का पूरा विवरण दिया जा सकता है। इससे कार्य करने के दौरान होने वाली विभिन्न अनियमितताओं पर रोक लगाने के अतिरिक्त कार्य की मात्रा और गुणवत्ता को सुधारा जा सकता है और यह सब रजिस्टर में लिखने वाले व्यक्ति की ईमानदारी, श्रद्धा व निष्ठा पर निर्भर करता है।

गाँव की हिस्सेदारी की स्थिति, इनके विचारों और सभाओं का प्रलेखन : सार्वजनिक संसाधनों के संवर्धन हेतु परियोजना निर्माण के समय तथा परियोजना क्रियान्वित किये जा रहे काल में,

आवश्यकतानुसार या फिर नियमपूर्वक एक निश्चित अन्तराल के बाद ग्रामीणों की परियोजना में भागीदारी की स्थिति, उनके विचार और सभाओं में उठाये जाने वाले मुद्दे, पारित प्रस्तावों, सामने आने वाली समस्याओं आदि को एक रजिस्टर में दर्ज किया जाना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार के प्रलेखन से न केवल मार्ग में आने वाली बाधाओं से सफलतापूर्वक निपटा जा सकता है, अपितु कार्य में लगे ग्रामीणों को यथास्थिति से अवगत कराकर उनमें नये उत्साह का संचार भी किया जा सकता है।

कार्यों का मूल्यांकन: समय-समय पर सभी ग्रामीणों के साथ मिलकर, सामलात देह संवर्धन हेतु किये जा रहे कार्यों का मूल्यांकन होना बहुत आवश्यक है। यह मूल्यांकन कार्य किसी बाह्य व्यक्ति या संस्था द्वारा किया जाना चाहिए। इसके द्वारा न केवल किये जा रहे कार्यों की प्रगति, अवरुद्धता, मार्ग की बाधाओं आदि को समझने का अवसर प्राप्त होता है, अपितु मूल्यांकन के विश्लेषण द्वारा गलतियों और कमियों को सुधार कर समस्याओं को निपटाने तथा काम की गति में तीव्रता प्रदान करने के उचित सूत्र भी हाथ में आते हैं। परिणामस्वरूप की जा रही गलतियों का आभास मिलने के साथ-साथ परियोजना की सफलता हेतु किये जाने लायक कार्यों व तथ्यों का पता चलता रहता है।

कार्यों का पुनरावलोकन शिविर : इस प्रकार के शिविरों के आयोजन से एक तरफ तो सार्वजनिक संसाधनों के संवर्धन हेतु किये जा रहे कार्यों की यथार्थता, प्रगति, मार्ग की समस्याओं आदि के बारे में जानकारी मिलती है, दूसरी तरफ ऐसे शिविरों में गाँव के लोगों को परियोजना चलाये जाने वाले पड़ोसी क्षेत्र या गाँव में हो रहे संवर्धन कार्य की पर्याप्त जानकारी मिलने के साथ-साथ इस प्रकार के कार्यों के उद्देश्य, लाभ, लागत, तरीका, बाहर से मिलने वाली मदद, गाँव की संगठनात्मक शक्ति और इच्छा आदि अनेक बातों को देखने व समझने का मौका भी मिलता है। फलत: वे पड़ोसी ग्रामीण भी अपनी सामलात देह के संवर्धन हेतु आगे आते हैं। शिविर प्रक्रिया, सामलात देह के संवर्धन हेतु एक उत्प्रेरक का कार्य करके दूसरे गाँव के लोगों में दृढ़ इच्छा शक्ति और उत्साह का संचार करके अपने यहाँ भी ऐसी परियोजना बनाने और क्रियान्वित करने को प्रेरित करती है।

परियोजना उपरान्त समय-समय पर गाँव से आँकड़े एकत्र करना : किसी गाँव में सामलात देह संवर्धन हेतु चलाई गई परियोजना की सफलतापूर्वक समाप्ति के बाद, प्रत्येक 6 माह या किसी भी निश्चित अन्तराल के बाद गाँव से सामलात देह सम्बन्धी विभिन्न आँकड़ों को एकत्र करके, विभिन्न विश्लेषकों द्वारा यह पता लगाना चाहिए कि परियोजना क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप सामलात देह तथा ग्रामीणों को कितना और किस-किस रूप में लाभ प्राप्त हुआ है। साथ ही पर्यावरण सुधार एवं संतुलन के सम्बन्ध में क्या कुछ प्राप्त हुआ है। हालांकि यह एक व्यावहारिक शोध का विषय है। मगर इस प्रकार यह बात समझी जा सकती है कि ऐसी परियोजनाएँ कितनी और कहाँ तक सफल होती हैं, साथ ही परियोजनाओं को क्या मोड़ व सुधार देकर लागू करने पर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

परियोजना को सातत्य पूर्ण (लगातार) बनाये रखना : गति जीवन का दूसरा स्वरूप है। यदि जीवन में गति न रहे तो जीवन मृत्यु प्राय: होकर नष्ट हो जाता है। परियोजना की समाप्ति पर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि गाँव की सामलात देह बच गई और अब सभी काम खत्म हो गये। ऐसी सोच इन सामलाती संसाधनों के ह्रास और विनाश की प्रक्रिया को दोबारा चालू कर देगी। अत: यह बात आवश्यक है कि परियोजना की समाप्ति पर भी सामलात देह के संरक्षण और संवर्धन की प्रक्रिया को निरन्तर गतिमय रखना चाहिए। आवश्यकतानुसार नई योजनाओं और कार्यक्रमों को चलाये रखना चाहिए। तभी संरक्षण और संवर्धन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

इस अध्याय में सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षण हेतु बनाई जाने वाली परियोजना और कार्यक्रमों पर संक्षिप्त विचार-विमर्श किया गया है। उक्त वर्णित विभिन्न तथ्यों को ध्यान में रखने और क्रियान्वित करने से परियोजनाओं की सफलता की सम्भावनाएं बढ़ती हैं। परियोजनाओं को क्षेत्र, परिस्थिति, आवश्यकता, उपलब्ध धन आदि के अनुसार रूप देकर ही बनाया जाना चाहिए।

★★★

पक्के कार्य में अपरा की लम्बाई निर्धारित करना

डिकेन्स सूत्र से

जल प्रवाह $Q = CA^{\frac{3}{4}}$ (जहाँ **Q** = जल प्रवाह घन मीटर/प्रति सैकण्ड में

C = एक स्थिरांक है, जो ढाल के साथ–साथ परिवर्तित हो जाता है। यह 6 से 11.5 तक हो सकता है। राजस्थान के पूर्वोत्तर भाग में यह 8 लेना सुरक्षित पाया गया है।

A = जलागम क्षेत्र वर्ग किलोमीटर में है।

अतः **C** का मान 8 लेने पर जल प्रवाह $Q = 8A^{\frac{3}{4}}$

वीयर सूत्र से

जल प्रवाह $Q = 1.7Lh^{\frac{3}{2}}$ (जहाँ **Q**, घन मीटर/प्रति सैकण्ड में जल प्रवाह है

1.7 = एक स्थिरांक (जल प्रवाह गुणांक) है,

L = अपरा की लम्बाई मीटर में तथा

h = अपरा पर बहने वाले पानी की अधिकतम ऊँचाई है।)

अपरा की लम्बाई हेतु उदाहरण :–

एक प्रस्तावित बाँध का जलागम क्षेत्र (कैचमेंट एरिया) 11 वर्ग कि.मी. है और अपरा पर से अधिकतम पानी 0.60 मी. चलाना है। इसे अधिकतम वर्षा में सुरक्षित रखने के लिए कम से कम कितनी लम्बाई की अपरा बनानी होगी ?

सूत्र से
जल प्रवाह $Q = 8A^{\frac{3}{4}} = 1.7Lh^{\frac{3}{2}}$

या $Q = 8 \times 11^{\frac{3}{4}} = 48.32$ (प्रश्नानुसार)

अतः अपरा की लम्बाई $L = \frac{Q}{1.7h^{\frac{3}{2}}} = \frac{48.32}{1.7 \times (0.60)^{\frac{3}{2}}} = \frac{48.32}{1.7 \times 0.465} = \frac{48.32}{0.79} = 61$ मीटर

अर्थात् सुरक्षित अपरा की लम्बाई = 61 मीटर

आधार व टॉप की चौड़ाई के लिए

हैड वाल की ऊपर की चौड़ाई $a = h - (0.8 \times h)$ (जहाँ **h** = भरे हुए पानी की अधिकतम ऊँचाई है। टॉप की चौड़ाई 0.50 मी. से कम नहीं होनी चाहिए।)

हैड वाल की नीचे की चौड़ाई $b = a + 0.8H$ (जहाँ **H** = भरे हुए पानी की अधिकतम ऊँचाई +अपरा पर से बहने वाले पानी की अधिकतम ऊँचाई है।)

स्थिरता हेतु आधार की चौड़ाई $b = \frac{H}{\sqrt{p-1}}$ जहाँ **H**= (उच्चतम बहाव का तल) – (जमीन का तल)

p = सीमेंट मसाले में पत्थर की चिनाई का घनत्व है, जिसका मान 2.2 टन/घन मीटर होता है।

पक्के कार्य का आयतन व लागत निकालना

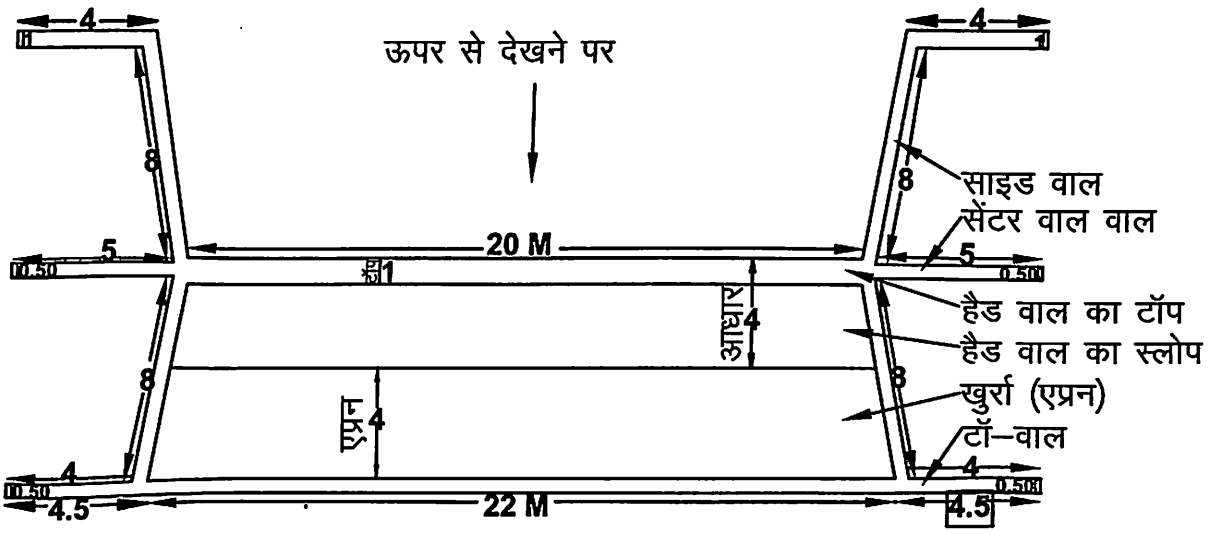

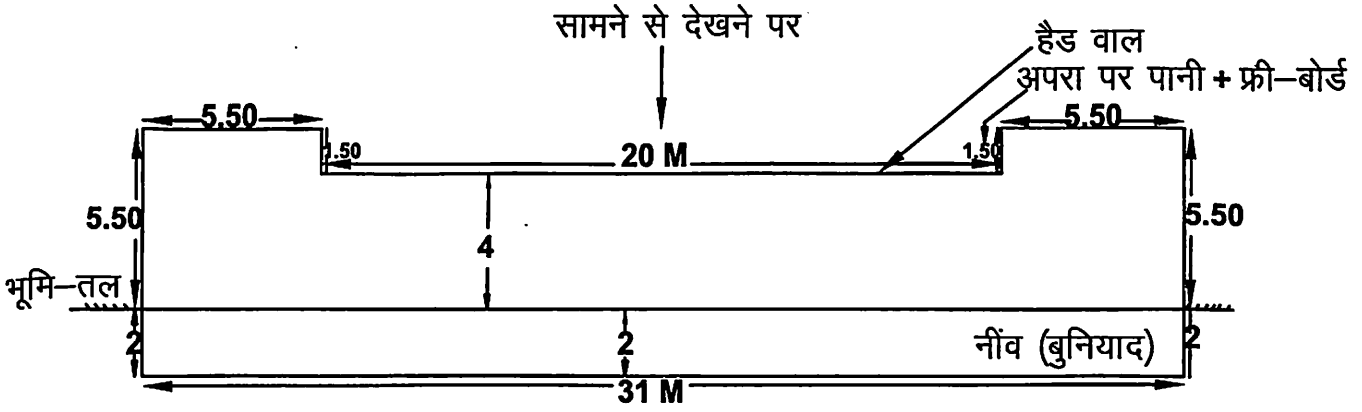

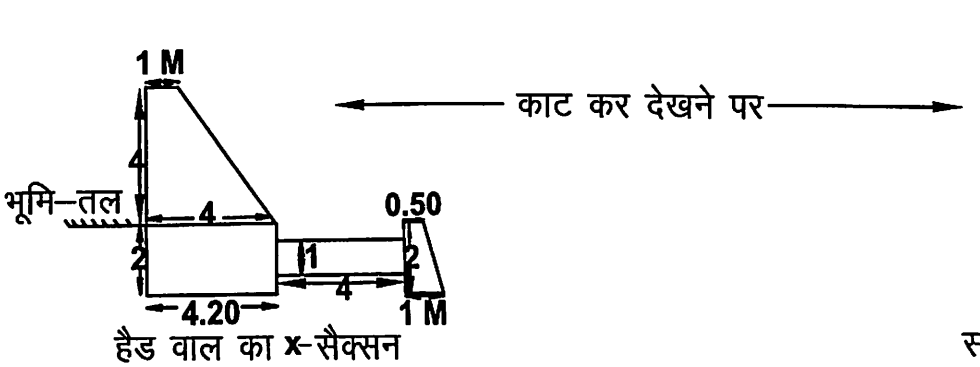

प्रति घन मीटर पक्की चिनाई में कुल लागत (एक उदाहरण)

यदि, 1 घन मी. चिनाई में पत्थर ट्रॉली —= 1.5 x 500(दर)— = 750 रुपये
1 „ „ बजरी ट्रॉली —= 0.25 x 1000(दर) = 250 „
1 „ „ सीमेंन्ट बैग . —= 2 x 300(दर)—= 600 „
1 „ „ मिस्त्री (कारीगर) = 0.50 x 600(दर)— = 300 „
1 „ „ श्रमिक (मज़दूर) = 1.50 x 300(दर)— = 450 „
1 „ „ भिश्ती (पानी हेतु) = 0.20 x 300(दर)— = 60 „
1 „ „ अन्य खर्च (उक्त लागत का 10 प्रतिशत) = 241 „

तो, कुल लागत ———— = 2651 रुपये
प्रति घनमीटर

पक्के कार्य का बजट

हैड वाल की नींव का आयतन = 20 x 4.20 x 2 ———— =168 मी.³
हैड वाल का आयतन = $20 \times \frac{4+1}{2} \times 4$ ———— =200 मी.³
दोनों साइड वालों का आयतन = $2 \times (24 \times \frac{1+0.50}{2} \times \frac{7.50+3}{2})$ =189 मी.³
दोनों सेंटर वालें का आयतन = $2 \times (5 \times \frac{1+0.50}{2} \times 7.50)$— = 56.25 मी.³
खेली (खुर्री) का आयतन = 22 x 4 x 1 =———— = 88 मी.³
टॉ–वाल का आयतन = $22 \times \frac{1+0.50}{2} \times 2$ ———— =33 मी.³

कुल आयतन = 734.25 घन मीटर
एनीकट की कुल लागत = 734.25 x 2651 = 19,46,497 रुपये
= उन्नीस लाख छियालीस हजार चार सौ सतानवे रुपये मात्र)

लम्बाई की विभिन्न इकाइयों में पारस्परिक सम्बन्ध

लम्बाई की मीटरी मापें

1 किलोमीटर = 10 हैक्टोमीटर =100 डेकामीटर = 1000 मीटर
1 मीटर = 10 डेसीमीटर = 100 सेंटीमीटर
1 सेंटीमीटर = 10 मिलीमीटर

लम्बाई की ब्रिटिश मापें

1 समुद्री मील = 1.15 मील = 1852 मीटर (एग्जैक्ट)
1 मील = 8 फर्लांग = 1760 गज़ = 5280 फुट
1 गज़ = 3 फुट = 36 इंच 432 लाइन
1 फुट = 12 इंच 144 लाइन
1 इंच = 12 लाइन = 72 बिन्दु (पाइंट)

मीटर व ब्रिटिश माप सम्बन्ध

1 मीटर = 3.28 फुट (3.28083989501 फुट)
= 39.37 इंच (39.37007874 इंच)

ब्रिटिश माप व मीटर में सम्बन्ध

1 इंच = 2.54 सेंटीमीटर (एग्जैक्ट)
1 फुट = 30.48 सेंटीमीटर = 304.8 मिलीमीटर
1 गज़ = 91.44 सेंटीमीटर = 914.4 मिलीमीटर
1 मील = 1.61 कि. मी. = 1609.344 मीटर

इमारती गज़ (इलाही गज़)

1 इमारती गज़ = 2.75 गज़ (सामान्य गज़)
1 इमारती गज़ = 24 तसू = 33 इंच
1 तसू = 8 सूत = 1.375 इंच = 3.4925 सेंटीमीटर

क्षेत्रफल की मीटरी मापें

1 वर्ग कि.मी. = 100 हैक्टेयर =1000 एयर
1 वर्ग कि.मी. = 1000 मीटर x 1000 मीटर = 1000000 वर्ग मीटर
1 हैक्टेयर = 100 एयर = 100 मीटर x 100 मीटर = 10000 वर्ग मीटर
1 एयर = 10 मीटर x 10 मीटर = 100 वर्ग मीटर

क्षेत्रफल की भारतीय मापें

1 बीघा = 20 बिश्वा = 165 फुट x 165 फुट = 27225 वर्ग फुट
1 बिश्वा = 20 बिश्वांशी = 165 फुट x 8.25 फुट = 1361.25 वर्ग फुट
1 बिश्वांशी = 20 कचवांशी = 8.25 x 8.25 फुट = 68.0625 वर्ग फुट
1 कचवांशी = 20 अनवांशी = 99 इंच x 4.95 इंच = 490.05 वर्ग इंच (3. 40 फुट^2)

विभिन्न क्षेत्रफलों में सम्बन्ध

1 हैक्टेयर =100 एयर
1 हैक्टेयर = 4 बीघा (3.953686 बीघा)
1 बीघा = 0.25 हैक्टेयर = 25 एयर = 0.625 एकड़
1 एकड़ = 32 बिश्वा (8/5 बीघा)
1 एकड़ = 220 फुट x 198 फुट = 43560 वर्ग फुट

विभिन्न इकाइयों में आयतन सम्बन्ध

100 घन फुट = 10 फुट x10 फुट x 1 फुट
= 3.048 x 3.048 x 0.3048 = 2.83 मी.^{2} (2.8316846592 वर्ग मीटर)
1 घन मीटर = 3.28 x 3.28 x 3.28 = 35.31 फुट
= (3.28083989501 x 3.28083989501 x 3.28083989501=35.314666721 घन फुट)
1 ट्रॉली = 2 घन मीटर (सामान्यतः)
= 70 घन फुट (सामान्यतः)

विभिन्न आकृतियों के क्षेत्रफल व आयतन के सूत्र

वर्ग व आयत का क्षेत्रफल = लम्बाई x चौड़ाई (L x B)

घन का आयतन = लम्बाई x चौड़ाई x ऊँचाई या गहराई (L x B x H)

समकोण त्रिभुज का क्षेत्रफल = $\frac{\text{आधार x ऊँचाई}}{2}$

विषमकोण त्रिभुज का क्षेत्रफल = $\sqrt{s(s-a)(s-b)(s-c)}$ .....(हीरो का सूत्र)
(जहाँ s त्रिभुज की अर्द्ध परिमाप है तथा a,b,c त्रिभुज की तीनों भुजाएँ हैं।

वृत्त का क्षेत्रफल = πr^2

बेलन का वक्र पृष्ठ का क्षेत्रफल = $2\pi rh$

बेलन का सम्पूर्ण का क्षेत्रफल = $2\pi r(h+r)$

बेलन का आयतन = $\pi r^2 h$

शंकु का वक्र पृष्ठ का क्षेत्रफल = πrl { जहाँ $l^2 = (h^2 + r^2)$ या $l = \sqrt{(h^2 + r^2)}$ }

शंकु का सम्पूर्ण क्षेत्रफल = $\pi r(l+r)$

शंकु का आयतन = $\frac{1}{3}\pi r^2 h$

गोले का सम्पूर्ण क्षेत्रफल = $4\pi r^2$

गोले का आयतन = $\frac{4}{3}\pi r^3$

1 अश्व शक्ति (हॉर्स पावर) = 33,000 फुट/पाउण्ड/प्रति मिनट
= 550फुट/पाउण्ड/प्रति सैकण्ड

(अर्थात् 550 पाउण्ड वजन को 1 सैकण्ड में 1 फुट ऊँचा उठाने में जितनी ताकत लगती है, उसे 1 अश्व शक्ति या 1 हॉर्स पावर कहते हैं।)

पाई (π) = $\frac{22}{7}$ = 3.14 = $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ (अर्थात् π = 3.14159265358979323846264338327950288419716939937510582097494459230781640628620899862803482534211706 79.....)

गोपाल सिंह
T. B. S.

जल जन जोड़ो अभियान पिछले कई वर्षों से जल सरंक्षण, जल उपयोग दक्षता संवर्धन एवं जल साक्षरता के विषय पर कार्य कर रहा है। कोई भी अभियान तभी सफल होता है, जब वह मुद्दे आधारित संवेदनशील नेतृत्व को रोपे , सींचे और पोषित करे। इससे संगठन के दर्शन और मुद्दों को विस्तार एवं रफ़्तार मिलती है। देश भर में नीर-नदी-नारी के मुद्दों पर संवेदना एवं जागरूकता फैलाने के लिए ''तरुण जल विद्यापीठ'' सतत् प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है, जिसमें देश भर से अलग-अलग क्षेत्रों से युवा भाग लेते हैं।

सामलात देह प्रबंधन हेतु यह प्रशिक्षण सामग्री, कई विद्वानों के अथक प्रयासों एवं सहयोग से बनी है। हम सौभाग्यशाली हैं कि इस पुस्तक को स्वयं ब्रह्मलीन डॉ गुरुदास अग्रवाल (स्वामी ज्ञान स्वरूप सानंद जी) ने अपने कर कमलों द्वारा सम्पादित किया है। इस अति महत्त्वपूर्ण, ज्ञानवान एवं मूल्यवान प्रशिक्षण ग्रन्थ का उपयोग युवाओं को जल संसाधन संवर्धन, भू-जल संरक्षण, बाढ़-सुखाड़ प्रबंधन एवं जल शासन से जुड़े विषय के लिए होगा। हम जल पुरुष राजेंद्र सिंह जी एवं श्री संजय सिंह जी परमार्थ को पुस्तक मुद्रण हेतु सहमति के लिए आभार प्रकट करते हुए, इस पुस्तक- मुद्रण के लिए आर्थिक सहयोगकर्ताओं को धन्यवाद प्रेषित करते हैं।

मौलिक सिसोदिया

निदेशक, तरुण जल विद्यापीठ

जल जन जोड़ो अभियान

लक्ष्य:

सभी को पेयजल सुरक्षा व जरूरत पूरी करना, जलवायु परिवर्तन की मार से बचाने वाले प्राकृतिक संसाधनों का संवर्द्धन कर समता मूलक, शोषण, प्रदूषण, अतिक्रमण मुक्त समाज निर्माण की तरफ अग्रसर होने वाली परिवर्तन प्रक्रिया शुरू करना।

उद्देदश्य:

1. जीविकोपार्जन से जूझने वालों के परंपरागत जल स्रोतों पर अधिकार दिलाने तथा ताल-पाल झीलों को पुनर्जीवित करने वाली जुम्बिश पैदा करना।
2. भारत के सभी राज्यों में एक आदर्श सामुदायिक जल स्रोतों की स्थानीय सामुदायिक विकेन्द्रित प्रबंधन प्रक्रिया इकाई निर्माण करना।
3. जल साक्षरता, जलाधिकार, सामुदायिक जल प्रबंधन की वकालत करने वाली नीति और नियम निर्माण की सरकारी प्रक्रिया आरम्भ करने वाले प्रत्येक राज्य में जल संदर्भ केन्द्र निर्माण करना।

कार्यनीति:

1. परंपरागत जल संरक्षण संरचनाओं के प्रति समुदाय में जागरूकता पैदा करने के लिए विभिन्न माध्यमों का उपयोग किया जायेगा। जैसे- संदर्भ सामग्री निर्माण, रोलप्ले नाटक, स्लाइड शो, मीटिंग, सम्मेलन, संगोष्ठी कार्यशालाओं एवं प्रशिक्षण एवं अध्ययन भ्रमण कार्यक्रमों का आयोजन किया जायेगा।
2. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को लागू करवाना एवं ड्रेनेज एक्ट के प्रावधानों को लागू करना। जन पैरवी के विभिन्न माध्यमों का उपयोग करना। जैसे- पीआईएल, जन सुनवाई, आपसी संवाद की कार्यशाला, विधायिका के साथ कानून में संशोधन कराना।
3. स्थानीय समुदाय को संगठित करना। जनसहयोग से संरचनाओं को संरक्षित करने के लिए श्रमदान, सरकारी योजनाओं को लागू कराने के लिए कार्ययोजना का निर्माण। संरक्षण के लिए शासकीय योजनाओं का पारदर्शी ढंग से क्रियान्वयन सुनिश्चित करना। स्थानीय स्तर पर संगठन का निर्माण करना एवं आजीविका के अवसर बढ़ाना।
4. प्राकृतिक जल संरक्षण संरचनाओं के ह्रास के कारणों को जानना। जिसके लिए समुदाय और विषय विशेषज्ञों की राय जुटाना। पुराने शोध और साहित्य का अध्ययन। इन संरचनाओं से उत्पन्न होने वाले आर्थिक और सामाजिक एवं जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को जानना। इन सबके कारणों से आजीविका के संसाधनों के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों को समझना।
5. समान विचारधारा और एक ही मुद्दे पर काम करने वाले लोगों का सामूहिक गठजोड़ तैयार करना। योग्यता और अनुभव के आधार पर जवाबदेहियों का निर्धारण करना। सामूहिक रुप से काम करने की प्रवृत्ति विकसित करना।
6. देश में पानी के संसाधनों पर निर्धनतम समाज की पहुँच और नियंत्रण स्थापित करने के लिए कानून और जानकारी के माध्यम से सशक्त बनाने के लिए जागरूकता एवं जन पैरवी का आयोजन किया जायेगा ।

तरुण जल विद्यापीठ में सामलात–देह प्रबन्धन का प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए देश भर के युवा

प्रथम संस्करण: 1994
द्वितीय संस्करण (उन्नत): 2018
प्रकाशक: परमार्थ समाज सेवी संस्थान , झाँसी, उत्तर प्रदेश
वितरक: जल जन जोड़ो अभियान के अंतर्गत तरुण जल विद्यापीठ
मुद्रण आर्थिक सहयोगकर्ता: वेल्ट हंगर हिल्फे एवं यूरोपियन यूनियन

तरुण जल विद्यापीठ
TARUN JAL VIDYAPHITH

Facilitate Empowering Process
PARMARTH

welt hunger hilfe

EUROPEAN UNION

Designed & Printed at Classified Printers, Jaipur